ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड बनारस ४

प्रथम संस्करण २०००
मार्च १९५२
मूल्य तीन रुपये

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

क्रोपाटकिन

सोफी क्रोपाटकिन [धर्मपत्नी]

क्रान्तिकारी क्रोपाटकिन

और

उनके कुटुम्ब

को

श्रद्धापूर्वक समर्पित

विषय-सूची

१	महाप्राण माइकेल बाकूनिन .	१–१५
२	प्रिन्स क्रोपाटकिन	१६–२७
३	अराजकवादी मैलटेस्टा .	२८–४०
४	लुई माइकेल	४१–५५
५	ऐमा गोल्डमेन	५६–७०
६	एमर्सन—१ .	७१–८८
७	एमर्सन—२	८९–१००
८	उपन्यासकार तुर्गनेव	१०१–११८
९	रोमाँ रोलाँ .	११९–१३३
१०	स्टीफन ज्विग	१३४–१४८
११	पतिव्रता जयिनी .	१४९–१६३
१२	समाज-सेवी कागावा	१६४–१८३
१३	सपादकाचार्य सी पी स्कॉट	१८४–२०३
१४	एच. डब्ल्यू. नेविनसन	२०४–२२२
१५	आचार्यवर गीडीज	२२३–२३५
१६	फक्कड थोरो .	२३६–२५०
१७	अमर कलाकार 'ए० ई०' .	२५१–२६०

"Work to understand the great artists, the moralists, the powerful spirits and the heroes of ancient Europeon Society Devote yourself to the mission of uniting Orient and Occident. We must create Universal Soul. It is not yet existing but it will exist.

[*Romain Rolland in a letter to Parmanand Pandeya of Lashkar, Gwalior*]

चार शब्द

"दीन क्या है, किसी कामिलकी इबादत करना।"

महाकवि चकवस्तकी इस पक्तिमे धर्मकी जो परिभाषा की गई है, वह हमे अपने क्षुद्र साहित्यिक जीवनके लिए सर्वोत्तम जँचती है। समय-समयपर हमने अपनी श्रद्धाके पुष्प जिन विभूतियोके चरणोमे अर्पित किये है, उनकी सख्या काफी अधिक है। इस पुस्तकमे केवल सोलह व्यक्तियो-का चित्रण आ सका है। शेषका वृत्तान्त हमारे अन्य दो-तीन सग्रहोमे जो शीघ्र ही प्रकाशित हो रहे है, दे दिया गया है। उनके अतिरिक्त जो रेखाचित्र हमने खीचे है वे 'हमारे साथी' तथा 'प्रकृतिके प्राङ्गण'नामक दो किताबोमे शामिल कर दिये गए है। इन सब पुस्तकोके पढनेपर ही उस विस्तृत पटका अनुमान किया जा सकता है, जिसपर अपनी तूलिका चलानेका हमने प्रयत्न किया है। यद्यपि हम जानते है कि ए० जी० गार्डिनरकी तरहके रेखाचित्र तैयार करनेके लिये हमे अभी बीसियों वर्ष तक साधना करनी पडेगी, तथापि हमारे आदर्श वही रहे हैं।

'हमारे आराध्य' को देखकर एक सज्जनने आश्चर्यचकित होकर कहा, "अरे, ये तो सब-के-सब विदेशी है!" उनको हमने यही उत्तर दिया कि अपने श्रद्धेयोका गुणगान करते समय देश-विदेशकी कोई विभाजक सीमा माननेके लिए हम तैयार नही। अपने जीवनमे हम जिनके सबसे अधिक ऋणी रहे हैं, वे एक अग्रेज थे—दीनबन्धु सी० ऐफ० ऐण्ड्रूज, और राजनैतिक तथा सामाजिक दृष्टिकोणसे हमारे हृदयका सर्वोच्च आसन जिनके लिए समर्पित रहा है—वे थे एक रूसी, अर्थात् प्रिंस

क्रोपाटकिन। अपनी उषाकालीन चायके साथ जिनके ग्रथोका स्वाध्याय हम बीस-पच्चीस वर्षसे करते रहे है, उनमे दो अमरीकन है—ऐमर्सन तथा थोरो और तीसरे अग्रेज—ऐडवर्ड कारपेण्टर। किसी भी सजीव साहित्यिकके लिए देशी-विदेशीका सवाल ही नही उठ सकता। वह तो गैरीसनके शब्दोमे यही कहेगा—

"Our country is the world, our countrymen are all mankind. We love the land of our nativity only as we love all other lands."

अर्थात्—"समस्त ससार ही हमारा स्वदेश है और सम्पूर्ण मानव-समाज हमारा देशबन्धु। हमारे हृदयमे जितना प्रेम अपनी जन्मभूमिके प्रति है, उतना ही दूसरे देशोके प्रति भी।"

इसके सिवाय प्रकाशका, जहाँ कहीसे भी वह आवे, हमे स्वागत ही करना चाहिए। स्वय ऐमर्सन और थोरो भारतीय विचारधारासे काफी प्रभावित थे और उन्हे 'परमात्माकी भौगोलिक भूल' कहा जाता था। अपनी भावनाओमे वे बहुत कुछ भारतीय थे।

और इन सबसे ऊपर बात यह है कि दूसरोमे जो कुछ सर्वोत्तम है, उसके दुभाषिया बनना हमारे जीवनका एक उद्देश्य है। उस स्मरणीय गिलहरीकी तरह, जिसने भगवान् रामचन्द्रको सेतुबन्धके समय रेतीका कण अर्पितकर उनके महान यज्ञमे सहायता दी थी, हम भी अपनी तुच्छ शक्तिका सदुपयोग हार्दिक मिलनके कल्याणकारी कार्यमे करना चाहते है। रोमाँ रोलाँने अपने एक पत्रमे लश्करके एक विद्यार्थी श्री परमानन्द पाण्डेको लिखा था—

प्रिय पी० पाण्डे,

तुम्हारे पत्रने मेरे हृदयको बहुत गहराईसे स्पर्श किया है। मेरे भारतीय भाई, तुमने अपना जो हाथ मेरी ओर बढाया है, उसे मै स्नेहके

साथ ग्रहण करता हूँ। तुम्हे मालूम ही है कि तुम्हारे देशके ऋषियोंके प्रति मै अपनेको कितना सम्बद्ध अनुभव करता हूँ। तुम भी यूरोपके महान कलाकारो, विचारको और महान आत्माओंको समझनेका प्रयत्न करो। पूर्व और पश्चिमको एक-दूसरेके निकट लानेके कार्यको अपने जीवनका एक आदर्श बना लो। हमे एक विश्वात्माका निर्माण करना है। आज वह विद्यमान नही, पर एक-न-एक दिन अवश्य होगी।

सप्रेम तुम्हारा
रोमाँ रोलाँ

पूर्व और पश्चिमको निकट लानेके पुण्यकार्यमे हमारे-जैसे सहस्त्रो लेखकोंके जीवन खप सकते है। प्रारम्भके पाँचो व्यक्ति अराजकवादी है। प्रिंस क्रोपाटकिनके भक्त हम सन् १९१८से है, जब हमने पहले-पहल उनका आत्म-चरित Memoirs of a Revolutionist (एक क्रान्तिकारीके संस्मरण) पढा था। महत्त्वमें वह महात्माजीके आत्मचरितसे किसी प्रकार घटकर नही। बाकूनिन क्रोपाटकिनके पथप्रदर्शक माने जा सकते है और शेष तीनो—मैलटेस्टा, लुई और ऐमा उनके अनुगामी।

तुर्गनेवकी रचनाओसे हमारा प्रथम परिचय शान्तिनिकेतनमे सन् १९२०में हुआ और प्रथम दृष्टिमे ही हम उनके प्रेममे ऐसे फँसे कि आज-तक उनके बन्धनसे छुटकारा नही मिला। जिस प्रकार हम चेखवको संसारका सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखक मानते है, उसी प्रकार तुर्गनेवको सर्वोत्तम उपन्यासकार।

जिन सम्पादक-सप्तर्षि मण्डलकी हम आराधना करते रहे है, उनमे सी० पी० स्कॉट और रामानन्द चट्टोपाध्याय अग्रगण्य है। महावीर-प्रसाद द्विवेदी, सी० वाई० चिन्तामणि और गणेशशंकर विद्यार्थी भारतीय है, नैविनसन अंग्रेज और होरेस ग्रीली अमरीकन।

इस पुस्तकमे वर्णित अपने आराध्योमे केवल दोके साक्षात् दर्शन

करनेका सौभाग्य हमे प्राप्त हुआ था—आचार्यवर गीडीज और समाज-सेवी कागावा। हाँ, रोमाँ रोलाँसे कुछ पत्रव्यवहार अवश्य हुआ था और उनके हस्तलिखित तीन पत्र हमारे सग्रहालयकी अमूल्य निधि है। ए० ई० की प्रशसा हमने दीनबन्धु ऐण्ड्रूजसे सुनी थी और उनकी पुस्तक 'राष्ट्रकी आत्मा' (National Being) वर्षोंसे हमारा स्वाध्याय-ग्रन्थ रही है।

स्टीफन ज्विगने हमे गिरफ्तार किया सन् १९३५मे और तवसे हम उनके प्रचारक ही वन गये है। क्या ही अच्छा हो यदि हमारे देशमे एक गोर्की-रोलाँ-ज्विग परिषद स्थापित कर दी जाय, जो इस त्रिमूर्तिकी अमर रचनाओको जनसाधारण तक पहुँचावे।

यूरोपके महान साहित्यकार और आलोचक जार्ज ब्राण्डीज़ने अपनी पुस्तक 'उन्नीसवी शताब्दीके कलाकार' (Creative spirits of nineteenth Century) की भूमिकामे लिखा है—

"जव हम जीवनके भिन्न-भिन्न समयोपर अपने अनेक दिनोके परिश्रमसे लिखे गए लेखोका सग्रह करने बैठते है तो उन्हे देखकर खेदपूर्वक हमे पता लगता है कि समयकी तराजूपर हमारी ये रचनाएँ कितनी हल्की उतरी है! दूसरे व्यक्तियोका अध्ययन अथवा चित्रण करते समय हम वस्तुत अपनी प्रकृतिका ही चित्रण करते है—मानो हम अपने ही जीवनचरितके कुछ पृष्ठ जनताके सम्मुख उपस्थित कर रहे हो, अपने ही अस्तित्वके कुछ अशोको प्रदर्शित कर रहे हो। अन्य महानुभावोका परिचय देनेके वहाने हम दरअसल आत्मपरिचय ही देते है—अपने कार्यका, अपनी आराधनाका, अपनी रुचिका, अपनी मैत्रीका और अपने यौवनका—थोडा-थोडा इन सवका। समय-सागरकी सतहपर क्षणभरके लिए हमारा यह आत्मपरिचय दृष्टिगोचर होता है और तत्पश्चात् वह रसातलमे विलीन हो जाता है—स्वप्नकी छायाकी भाँति।"

इस पुस्तकको जनताके सम्मुख उपस्थित करते समय हमारे मनमे कुछ इसी प्रकारके भाव उत्पन्न हो रहे है। चित्रकार वस्तुत अपना ही

चित्रण करता है। इन रेखाचित्रोंमें यदि लेखककी सुप्त आकांक्षाएँ, अपूर्ण अभिलाषाएँ और भावी आशाएँ आंशिक रूपसे चित्रित हो गई हो तो इसमे आश्चर्यकी कोई बात नही। पुस्तककी पृष्ठभूमिको समझानेके लिए हमे धृष्ठतापूर्वक जो निजी बाते लिखनी पडी है, उनके लिए हम क्षमा-प्रार्थी है।

यद्यपि इस ग्रन्थमें जिनके चित्र खीचे गये है, वे सब महानकी कोटिमें आते है, तथापि इसका यह अभिप्राय कदापि नही कि हम केवल महत्त्वके ही उपासक है। तथाकथित क्षुद्रोका भी हमने चित्रण किया है और उनमे महत्त्वके दर्शन किये हैं। हम ऐसी तूलिकाकी तलाशमें है, जो सम्राटसे लेकर भिखारी तकका और महलसे लेकर झोपड़ी तकका चित्रण कर सके। इस जन्ममे न सही, किसी अगले जन्ममें वैसी तूलिका हमें प्राप्त हो जायगी, और जन्म-जन्मान्तरो तक हमें साधना करनी पड़ेगी ऐसा हृदय प्राप्त करनेके लिए, जो भूकम्प-मापक यत्र—सीसमोग्राफ—की तरह दूरस्थ दुर्घटनाओसे स्पन्दित हो सके। और तब हम स्त्री-पुरुषोंके साथ पशु, पक्षी, वृक्ष, सरोवर, सरिता इत्यादिका भी विधिवत् चित्रण कर सकेंगे।

अपनी रचनाओकी उपेक्षा हम प्रारम्भसे ही करते रहे है और इस प्रमादपर हमे पछतावा है। यह पुस्तक अभी वर्षो तक योही पडी रहती, यदि बन्धुवर भानुकुमार जैन, श्रद्धेय नाथूरामजी प्रेमी, भाई अयोध्याप्रसादजी गोयलीय, श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैन और यशपालजीका विशेष प्रयत्न तथा आग्रह न होता। इनमे प्रथम सज्जनने आजसे कई वर्ष पहले हमारे लेखोकी सहस्रो प्रतियाँ घाटा सहकर अल्प मूल्यमें वितरित की थी। प्रेमीजीका कई वर्षोसे इन्हे पुस्तकाकार प्रकाशित करनेका अनुरोध रहा है। पर इस कार्यको पूर्ण किया है श्री गोयलीयजी तथा लक्ष्मीचन्द्रजीने, और अन्तिम प्रूफ देखनेका भार 'यथापूर्व' हमारे दाहिने हाथ यशपालजी पर ही पडा है। इन सबके हम हृदयसे कृतज्ञ है।

पुस्तक प्रिंस क्रोपाटकिन तथा उनकी पत्नी और उनके अग्रज एलैग-जैण्डरकी पवित्र स्मृतिमें समर्पित की गई है। वह दिन हमे कभी नही भूलनेका, जब हमने सजल नेत्रोसे एलैगजैण्डरके आत्मघात की बात उनके अनुज क्रोपाटकिनके आत्मचरितमे पढी थी। रूसी जारने उन्हे साइबेरियाको निर्वासित कर दिया था, जबकि वे बिल्कुल निरपराध थे। जारशाहीका खातमा कभीका हो चुका, जबकि क्रोपाटकिनका क्रान्तिकारी कुटुम्ब अमर है।

भावी सतयुगको लानेमे निस्सन्देह क्रोपाटकिन तथा गान्धीजीके सिद्धान्तोका उतना ही हाथ रहेगा, जितना कार्लमार्क्स और लैनिनके विचारोका। गान्धीजी क्रोपाटकिनके उतने ही निकट है, जितने लैनिन मार्क्सके और पतिव्रता जयिनीकी वन्दना करके हमने मार्क्सके उत्तमाशको ही श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है।

सम्भव है, किसी पाठकको इन आराध्योमे अपने किसी वन्दनीयके दर्शन हो जायँ और कोई भूला-भटका व्यक्ति इस पुस्तकसे अपने पथको यत्किंचित प्रकाशित पावे। तब यह विनम्र लेखक अपने परिश्रमको सफल समझेगा।

कुण्डेश्वर, टीकमगढ
१ जनवरी १९५२

—बनारसीदास चतुर्वेदी

हमारे आराध्य

: १ :

महाप्राण माइकेल बाकूनिन

"Know Madame, that so long as your son lives, he can never be free."*

—Tsar Alexander II.

"श्रीमतीजी, एक बात आप अच्छी तरह समझ लें कि जबतक आपका लड़का जिन्दा है तबतक वह कभी जेलखानेसे नहीं छूट सकता।"

—(रूसी ज़ार) अलेक्ज़ेंडर द्वितीय

बात सन् १८५५की है। रूसके जार निकोलसकी मृत्यु हो चुकी थी और उनकी गद्दीपर अलेक्ज़ेंडर द्वितीय बैठे थे। इस उत्सवकी खुशीमें कितने ही राजनैतिक अपराधी छोड़े जानेवाले थे। जब इन कैदियोंकी सूची रूसी ज़ारके सामने लाई गई तो उसमें बाकूनिनका भी नाम था। ज़ारने सूचीको हाथमें लेकर उसमेंसे बाकूनिनका, नाम अपने हाथोंसे काट दिया। जब बाकूनिनकी पूज्य माताको यह दुःखद समाचार ज्ञात हुआ कि उनका लडका नही छूटेगा तो उन्होंने ज़ारसे मिलनेकी प्रार्थना की। बडी मुश्किलसे यह आज्ञा मिली। ज़ारके पास जाकर बाकूनिनकी माने बहुत मिन्नत-आरज़ू की तब उनके उत्तरमें ज़ारने उपर्युक्त शब्द कहे थे।

---

* देखिये—Bertrand Russell की 'Proposed Roads to Freedom,' पृष्ठ ४३; Blue Ribbon Series, New York.

अराजकवादियोके आचार्य माइकेल बाकूनिनका जीवन-चरित किसी उपन्याससे कम मनोरंजक नही है। यदि ससारके उन महापुरुषोकी सूची तैयार की जाय, जिनका प्रभाव भविष्यमें बहुत वर्षों तक रहेगा, तो उसमें माइकेल बाकूनिन तथा उनके शिष्य प्रिंस क्रोपाटकिनके नाम मार्क्स तथा लेनिन और महात्मा गाधीके नामके साथ ही लिये जावेंगे। भावी संसारके निर्माणमें इन सबके विचारोका काफी हाथ रहेगा।

माइकेल बाकूनिनका जन्म सन् १८१४ ईस्वीमें रूसके एक धनी परिवारमे हुआ था। उनके पिता राजनीति-विभागमें सरकारी नौकर थे; पर जिस समय बाकूनिनका जन्म हुआ था, उस समय वे अपनी नौकरीसे रिटायर हो चुके थे और टारजक नामक स्थानमे रह रहे थे। पन्द्रह वर्षकी उम्रमे बाकूनिन पीटर्सबर्गके फौजी विद्यालयमें भर्ती हुए और वहाँपर तोप चलानेका काम सीखा। १८ वर्षकी उम्रमे वे एक रेजीमेंटके साथ मिंस्क नामक स्थानको भेज दिये गए। सन् १८३०में रूसी जार-शाहीने पोलैण्डके निवासियोके विद्रोहका जिस क्रूरताके साथ दमन किया था, उससे पोलैण्ड-निवासी अत्यन्त त्रस्त हो गये थे। उनकी इस दुर्दशाका नवयुवक बाकूनिनके हृदयपर अत्यन्त प्रभाव पड़ा और तानाशाहीके प्रति उनके हृदयमें घोर घृणा उत्पन्न हो गई। सन् १८३४में यानी दो वर्ष फ़ौजी नौकरी करके उन्होने इस्तीफा दे दिया और मास्को चले आये। छ. वर्ष तक वहाँपर वे दर्शनशास्त्रका अध्यनन करते रहे। सन् १८४०मे वे बर्लिन गये। उनका विचार था कि बर्लिनमे दर्शनशास्त्रकी उच्च-से-उच्च शिक्षा पाकर वे अपने देशको लौट आवेगें और वहाँ किसी विद्यालयमें प्रोफेसर बनकर अपनी ज़िन्दगी आरामसे व्यतीत करेंगे, पर उनके भाग्यमें प्रोफेसरीकी आरामकुर्सीके बजाय कुछ और ही लिखा था! उस वक़्त कौन कह सकता था कि दर्शनशास्त्रका यह विद्यार्थी आगे चलकर कुछ ऐसा क्रान्तिकारी सिद्धान्त उपस्थित करेगा, जिससे ससारकी अनेक सरकारें थर-थर कांपने लगेंगी और अपना सबसे बडा शत्रु समझकर उसे

अधिक-से-अधिक दड देनेमे अपना सौभाग्य समझेंगी ! बर्ट्रेंड रसेलने अपनी पुस्तकमें बाकूनिनका जीवन-चरित लिखते हुए ये शब्द कहे हैं—

"Now began a long period of imprisonment in many prisons and various countries. Bakunin was sentenced to death on the 14th of January 1850, but his sentence was commuted after five months and he was delivered over to Austria, which claimed the privilege of punishing him. The Austrians, in their turn, condemned him to death in May, 1851 and again his sentence was commuted to imprisonment for life. In the Austrian prisons he had fetters on hands and feet and in one of them he was even chained to the wall by the belt! There seems to have been some peculiar pleasure to be derived from the punishment of Bakunin, for the Russian Government in its turn demanded him of the Austrians, who delivered him up. In Russia he was confined first in the Peter and Paul fortress and then in Schluesselburg."

अर्थात्—"इसके बाद बाकूनिनके जीवनमें एक ऐसे युगका प्रारम्भ हुआ, जिसमें उन्हे विभिन्न देशोंके कितने ही जेलखानोमे लम्बे-लम्बे समय तक रहना पड़ा। १४ जनवरी सन् १८५०को जर्मन सरकारने उन्हे फाँसीका हुक्म दिया था, पर पाँच महीने बाद यह सजा काट दी गई और जर्मन सरकारने बाकूनिनको आस्ट्रियन सरकारके सुपुर्द कर दिया। आस्ट्रियन सरकार बाकूनिनको दड देनेके लिए पहलेसे ही तुली बैठी थी और उसने मई सन् १८५१मे बाकूनिनको फाँसीका हुक्म दिया। पीछे यह सजा आजीवन जेलखानेके रूपमे बदल दी गई। आस्ट्रियन जेलखानोमें

वाकूनिनके हाथ तथा पाँवोमे वेड़ियाँ वँधी रहती थी, और एक जेलखानेमे तो उनकी पीठमें साँकल डालकर वे दीवारसे वाँव दिये गए थे ! ऐसा प्रतीत होता है कि भिन्न-भिन्न सरकारोको वाकूनिनको दंड देनेमें कुछ विचित्र मजा आता था। अवकी वार रूसी सरकारने आस्ट्रियन सरकारसे वाकूनिनको माँग लिया और पहले पीटर तथा पालके वदनाम किलेमें और फिर स्लूसलवर्गके जेलखानेमे वन्द रखा।"

सन् १८४९से १८६१ तक वाकूनिनको जेलमें ही रहना पडा और इन वारह वर्षोमें उन्होने जो यातनाएँ सही, उनका वृत्तान्त पढकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। दूसरा कोई होता तो उसके प्राण पखेरू कभीके उड़ गये होते। यह महाप्राण वाकूनिनका ही काम था कि वे इस अग्नि-परीक्षा-में पूर्णतया उत्तीर्ण हुए। प्रिन्स क्रोपाटकिनने अपने आत्म-चरितमें एक जगह लिखा है—"जव मै पीटर और पालके किलेमे वन्द किया गया तव मुझे उन तमाम शहीदोकी याद आ गई, जिन्होने इस किलेमें अपने दिन विताये थे। कितने ही मर गये, कितने ही पागल हो गये। उनकी छाया मेरी कल्पनाके सामने मानो नाच रही थी; पर मुझे खास तौरसे खयाल आता था वाकूनिनका। दो वर्ष तक वे पीठके वल आस्ट्रियन जेलमे वँवे रहे थे और फिर रूसी सरकारने उन्हे छः वर्ष तक इसी जेल-खानेमें वन्द रखा। जव जारकी मृत्युके वाद वे इस जेलके अन्दरसे निकाले गये तो उनका स्वास्थ्य अपने उन साथी-संगियोंसे, जो वाहर स्वतन्त्र रहे, कहीं अच्छा था ! उनमें अपने साथियोकी अपेक्षा अधिक शक्ति थी, ज्यादा ताजगी थी। मैंने अपने मनमें सोचा—जव वाकूनिन इस यातनाको सह गये तो मैं भी सहूँगा। मै यहाँ हर्गिज मरूँगा नही।"

जैसा कि हम ऊपर लिख चुके है, दर्शनशास्त्रके प्रोफेसर वननेकी आकाक्षा रखनेवाले युवक वाकूनिनको १८४० ईस्वीमे यह स्वप्नमें भी खयाल नही था कि आगे चलकर उनका जीवन-पथ कंकटाकीर्ण होगा। सन् १८४२में वे वर्लिनसे ड्रेसडन नामक स्थानमे पहुँचे। इस वीच

उनके विचार क्रान्तिकारी हो चुके थे। ड्रेसडनमे सरकारकी उनपर कुदृष्टि पडी, इसलिए उन्हे स्विटज़रलैण्ड जाना पडा। स्विटज़रलैण्ड सरकारके पास रूसी सरकारकी माँग आई कि बाकूनिनको पकडकर हमारे यहाँ भेज दो, इसलिए बाकूनिनको वहाँसे भी भागकर पेरिस आना पडा और यहाँ वे १८४३ से १८४७ तक रहे। रूसी सरकारने उनकी जायदाद ज़ब्त कर ली। १८४७मे फ्रांसकी सरकारने भी उन्हे देशनिकालेका दड दे दिया, इसलिए वे ब्रुसेल्स चले गये। मई सन् १८४९में वे फिर ड्रेसडन आये। क्रान्तिकारियोके साथ उन्होने प्रशियाकी सरकारी फौजका मुकाबला किया, पकडे गये और जर्मन सरकारने, जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, १४ जनवरी सन् १८५०को उन्हे फाँसीका दड सुनाया।

१८६१में बाकूनिन साइबेरियासे भागकर जापान पहुँचे और वहाँसे अमेरिका होते हुए लन्दन आ गये।

१८६१से १८७३ तक बाकूनिन अपने सिद्धान्तोका प्रचार करते रहे और इसके लिए उन्हे साम्यवादके प्रवर्तक कार्ल मार्क्सका घोर विरोध करना पडा। मार्क्सके तथा बाकूनिनके सिद्धान्तोमें ज़बरदस्त भेद यह था कि मार्क्स किसी-न-किसी प्रकारकी सरकारमे विश्वास रखते थे और बाकूनिन पूर्ण अराजकवादी थे। किसी भी प्रकारके शासनमें उनका विश्वास ही न था।

बाकूनिन और मार्क्समे इन दोनो में सिद्धान्तोका मतभेद तो था ही, स्वभाव भी दोनोका परस्पर-विरोधी था। बाकूनिन उदार तबीयतके आदमी थे और असयत भावुकता उनमे कूट-कूटकर भरी थी; लेकिन मार्क्सने अपने भावोपर काफी काबू कर लिया था। बाकूनिनके व्यक्तित्वमे अद्भुत आकर्षण था। जो कोई आदमी उनके ससर्गमे आता, वह उनके व्यक्तित्वसे प्रभावित हुए बिना न रहता, पर मार्क्स बिलकुल ज़ाहिदे खुश्क थे और एक बार उनसे मिलनेके बाद दूसरी बार किसी सहृदय आदमीके मनमें उनके पुनर्दर्शनकी अभिलाषा न रहती थी।

सन् १८७१ मे वाकूनिनने मार्क्सके विषयमे लिखा था—

"हम लोग एक दूसरेसे प्राय. मिला करते थे। मेरे हृदयमे मार्क्सके प्रति उनकी विद्वत्ताके कारण और साधारण जनताकी सेवाके लिए उनके हृदयमे जो गम्भीर और उत्साहपूर्ण भावना थी, उसकी वजहसे बडी श्रद्धा थी; लेकिन मार्क्सके सेवा-भावमे सदा अहभावका सम्मिश्रण हुआ करता था। मार्क्ससे बातचीत करनेके लिए मेरे मनमें बडी उत्कठा रहा करती थी और उनकी बातचीत सदा शिक्षाप्रद तथा चातुर्यपूर्ण होती थी, सिर्फ उन अवसरोको छोडकर, जब उसमें क्षुद्र घृणा या विद्वेषकी प्रेरणा होती थी और दुर्भाग्यवश उनकी बातचीत अक्सर क्षुद्र विद्वेषसे प्रेरित होती थी। हम लोग दिल खोलकर कभी नही मिले। हम लोगोके स्वभाव इतने अधिक परस्पर-विरोधी थे कि हार्दिक मिलन सम्भव नही था। मार्क्स मेरे विषयमें कहते थे—'तुम भावुकतापूर्ण आदर्शवादी हो', और उनका कहना ठीक था, और मै उनसे कहता था—'तुम अहकारी, विश्वासघाती और चालाक आदमी हो', और मेरा कहना भी ठीक था।"*

सन् १८४७ मे वाकूनिनने मार्क्स और ऐंजिल्सके विषयमे लिखा था—

"यदि सक्षेपमें इन लोगोकी कार्यपद्धतिका वर्णन किया जाय, तो मै कहूँगा, मूर्खता और झूठ, झूठ और मूर्खता। इन लोगोके साथ रहते हुए स्वाधीनतापूर्वक साँस लेना असम्भव है। मै इन लोगोसे अलग रहता हूँ। मैने उन्हे निश्चयपूर्वक कह दिया है कि आपलोगोके समाजवादी कारीगरोके समूहसे बिलकुल अलग रहूँगा और मै उससे कोई ताल्लुक नही रखना चाहता।"

सन् १८६४ में वाकूनिनने इटलीमें एलाइस ऑव सोशलिस्ट

---

* He (Marx) called me a sentimental idealist, and he was right, I called him a vain man, perfidious and crafty, and I also was right

रिवोल्यूशनरीज ('Alliance of Socialist Revolutionaries') नामक सस्थाकी स्थापना की। इसमें अनेक देशोके प्रतिनिधि थे; पर जर्मनीका कोई प्रतिनिधि नही था। सन् १८६७ मे स्विटजरलैण्ड पहुँचकर बाकूनिनने इटरनेशनल एलाइस ऑव सोशलिस्ट डिमाक्रेसी ('International Alliance of Socialist Democracy') नामक सस्थाकी स्थापना की। इसके पूर्व सन् १८६४ में लन्दनमे इटरनेशनल वर्किग मेन्स एसोसियेशन ('Internatioal Working men's Association') की स्थापना हो चुकी थी और इसके विधान तथा नियमोकी रचना मार्क्सने की थी। थोडे दिनोमें ही इस सस्थाने बड़ी उन्नति की। भिन्न-भिन्न देशोमे इसकी शाखाएँ फैल गईं और साम्यवादी विचारोंके प्रचारके लिए एक अच्छा साधन बन गईं। सन् १८६९ मे बाकूनिन अपनी सस्थाको तोडकर इस सस्थामे सम्मिलित हो गये।

जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, इन दोनो व्यक्तियोंके स्वभावोमे बड़ा अन्तर था और विचार-पद्धति भी दोनोकी परस्पर-विरोधी थी। प्रिंस क्रोपाटकिनने अपने जीवन-चरितमें लिखा है—

"मार्क्सके अनुयायियो और बाकूनिनके अनुगामियोमें जो लडाई थी, वह कोई व्यक्तिगत कारणोसे नही थी। बाकूनिनके अनुयायी सघके सिद्धान्तोके पक्षपाती थे और मार्क्सके अनुयायी सारी शक्तिको एक सस्थामें केन्द्रित करनेके पक्षमे थे। बाकूनिन कहते थे कि सघ स्वतन्त्र रहने चाहिएँ और मार्क्स (State) राष्ट्रके पैतृक शासनमे विश्वा . रखते थे। बाकूनिनका विचार था कि साधारण जनता सर्वथा स्वतन्त्रता-पूर्वक अपना सुधार करे और मार्क्स कानूनो द्वारा पूंजीवादमे सुधार कराना चाहते थे। इन दोनोमे अन्तर था लैटिन भावना तथा जर्मन मनोवृत्तिका। जर्मनीने जबसे फ्रान्सको युद्ध-क्षेत्रमें हराया था तबसे वह विज्ञान, राजनीति और दर्शनशास्त्रमें अपनेको सबसे ऊँचा समझने लगा था। यही नही, जर्मन लोग साम्यवादमें भी इसी भावनासे काम लेते थे और अपने 'साम्यवाद'

को वैज्ञानिक कहते थे और दूसरोके साम्यवादको 'काल्पनिक'— 'हवाई' (utopian) ।"

मार्क्सके अनुयायी इस कठोर शब्दके प्रयोगके लिए हमे क्षमा करें, पर यदि वे शान्तिपूर्वक उन कारंवाइयोपर विचार करेंगे, जो मार्क्सने वाकूनिनके विरुद्ध की तो उन्हें इसी परिणामपर पहुँचना होगा कि दर-असल मार्क्सने ईमानदारीको बता बता दी थी। पहली अक्लमन्दी जो मार्क्सने की थी कि अपने पत्र 'Neue Rhenische Zeitung' में यह सोलहआने असत्य अफवाह छाप दी कि वाकूनिन रूसी सरकारकी खुफिया पुलिसका एक आदमी है। यद्यपि पीछे जब इसका खण्डन किया गया, तो मार्क्सने वह भी छाप दिया था, पर इस भयकर निराधार अफवाहसे वाकूनिनकी कीर्तिको बडा धक्का लगा था। इसके बाद मार्क्सने अपने जर्मन मित्रोको एक गुप्त चिट्ठी भेजी, जिसमे लिखा था कि वाकूनिन पैन-स्लेविस्ट लोगोका एजेण्ट है और उन लोगोसे वाकूनिनको २५ हज़ार फ्रैंक प्रतिवर्ष मिलते है।

वाकूनिनको इण्टरनेशनलसे निकालनेके लिए मार्क्सने जिस चालाकीका आश्रय लिया था, वह तो वास्तवमें सर्वथा निन्दनीय थी। उस घटनाको सुन लीजिए। बात सन् १८६८–७० की है। वाकूनिन उन दिनो लोकार्नो-में रहते थे। आर्थिक सकटके मारे बिचारे तग थे। उन दिनो एक रूसी पुस्तक-प्रकाशकको उन्होने यह वचन दिया कि हम तुम्हारे लिए 'केपीटल' (Capital) नामक पुस्तकका अनुवाद रूसी भाषामें कर देंगे और इसके लिए ३०० रूबल (करीब ४५० रु०) पेशगी ले लिये। क्रान्तिकारी कार्योमे फँसे रहनेके कारण वाकूनिन अनुवाद-कार्यको हाथमें न ले सके। प्रकाशकने तकाज़ा करना शुरू किया। वाकूनिन बडे तग थे। वाकूनिनकी इस मनोव्यथाको देखकर उनके एक क्रान्तकारी साथीने, जिसका नाम नैचेव (Netchayeff) था, प्रकाशकके एजेण्ट लुबेविनको धमकीकी एक चिट्ठी भेजी कि या तो तुम वाकूनिनको तग करना छोड़ दो, वरना तुम्हारी

खैर नही। चूंकि नैचेव महाशय रूसमे एक आदमीका खून करके फरार हो चुके थे, इसलिए उनकी धमकी कारगर हो गई। इस धमकीपूर्ण पत्रकी खबर स्विटजरलैण्डके प्रवासी रूसी समाजके कानो तक पहुँच चुकी थी और मार्क्सने भी इसे सुन रखा था। मार्क्सने इस चिट्ठीका उपयोग करनेकी ठान ली। आपने सन् १८७२मे सोचा कि यदि कही यह चिट्ठी हमारे हाथ आ जाय, तो काम बन जाय। फिर हम हेगकी इण्टरनेशनलमें लोगोसे कह सकेंगे कि देखो, बाकूनिन कैसा बेईमान आदमी है कि पेशगी रुपये लेकर फिर धमकीकी चिट्ठी भिजवाता है। इस उद्देश्यसे मार्क्सने एक चिट्ठी एक रूसी विद्यार्थीको, जिसका नाम डेनियलसन था और जो मार्क्सका प्रशसक था, लिख भेजी कि किसी प्रकार उस चिट्ठीको मेरे पास भेज दो तो काम बने। चिट्ठी निम्नलिखित है—

"It would be of the highest utility for me, *if this letter was sent me* immediately. As this is a mere *commercial* affair and as in the use to be made of the letter no names will be used, I hope you will procure me that letter. But no time is to be lost. If it is sent, it ought to be sent at once, as I shall leave London for the Haag Congress at the end of this month."

अर्थात्—"यदि यह चिट्ठी फौरन मुझे भेज दी जाय तो वह मेरे लिए अत्यधिक उपयोगी हो सकती है। चूंकि यह खालिस व्यापारकी बात है, और चूंकि चिट्ठीका इस्तेमाल करते समय किसीके नामका उल्लेख न किया जायगा, इसलिए मुझे आशा है कि आप मेरे लिए यह पत्र प्राप्त कर देंगे; लेकिन इसमें रत्तीभर देर न होनी चाहिए। अगर वह भेजा जाय तो फौरन भेजा जाय, क्योकि इस मासके अन्तमे मै हेग-काग्रेसके लिए लन्दनसे रवाना हो जाऊँगा।"

यह बात ध्यान देने योग्य है कि मार्क्सने यह चिट्ठी ए० विलियम्स नामसे लिखी थी। रूसी सरकारकी दृष्टिसे बचनेके लिए कार्लमार्क्स डेनियलसनके साथ इसी नामसे पत्र-व्यवहार किया करते थे।

प्रकाशकके एजेण्ट लुबेविनने तुरन्त ही यह चिट्ठी मार्क्सको भेज दी। साथ ही लुबेविनने यह भी लिखा—"पहले तो मेरा खयाल था कि अवश्य ही इस धमकीकी चिट्ठीके भिजवानेमे वाकूनिनका हाथ रहा होगा; लेकिन अब शान्तिपूर्वक विचार करनेपर मैं इस परिणामपर पहुँचा हूँ कि इस चिट्ठीसे वाकूनिनके विरुद्ध कुछ भी सिद्ध नही होता, क्योकि सम्भव है कि नैचेवने यह चिट्ठी वाकूनिनके विना जाने लिखी हो।"

इस चिट्ठीके द्वारा मार्क्सने हेगकी काग्रेसमे वाकूनिनको वेईमान सिद्ध करनेका निन्दनीय प्रयत्न किया! मार्क्सके जीवन-चरित-लेखक Franz Mehring ने भी मार्क्सकी इस कारंवाईको, वाकूनिनके सिर निराधार अपकीर्ति मढनेके प्रयत्नको, अक्षम्य बतलाया है। उन्होने लिखा है—

"यद्यपि वाकूनिन बरावर यह वात स्वीकार करते रहे कि मैने कितावके अनुवादके लिए ३०० रूबल पेशगी लिये थे और साथ ही वे वरावर यह वचन भी देते रहे कि जैसे होगा वैसे इस रुपयेको मै वापस कर दूंगा; पर आर्थिक कठिनाइयोंकी वजहसे वे कभी इस रुपयेको लौटा नही सके। हमारे प्रसिद्ध-से-प्रसिद्ध ग्रन्थकारोमे कितने ऐसे न निकलेगे, जिन्होने प्रकाशकसे पेशगी रुपये ले लिये, जो खर्च हो गये और फिर जिस कितावके लिखनेका वचन उन्होने दिया था, वह किताव वे न लिख सके! निस्सन्देह यह कोई प्रशसनीय वात नही है कि पेशगी रुपये ले लेना और फिर किताव न लिख सकना; लेकिन इस अपराधके लिए अपराधीका खातमा करनेका प्रस्ताव वास्तवमें अत्युक्तिपूर्ण है।"

मार्क्सके एक अन्य जीवन-चरित-लेखकने लिखा है—

"Marx must bear most of the responsibility for a

report, which was not merely stupid, but fundamentally dishonest."

अर्थात्—"इस रिपोर्टकी जिम्मेवरी अधिकाशमे मार्क्सपर पडनी चाहिए, क्योकि यह रिपोर्ट बिलकुल मूर्खतापूर्ण ही नही थी, वल्कि दर-असल इसके मूलमे वेईमानी थी।"

वाकूनिनने अपनी एक चिट्ठीमें लिखा था—"ये लोग (मार्क्स प्रभृति) वुर्जुआ शब्दका इतना अधिक प्रयोग करते है कि नाको दम आ जाता है। वुर्जुआ शब्द इनका तकियाकलाम हो गया है, गोकि ये लोग खुद सिरसे पैर तक प्रान्तीय वुर्जुआ है।"

आज भी मार्क्सके कितने ही अनुयायी 'वुर्जुआ' शब्दका प्रयोग वेतरह करते है। हमारे एक साम्यवादी मित्र कहा करते है—"अराजकवादी तो वुर्जुआ लोग है, सिर नीचे, पैर ऊपर!"

मार्क्स तथा उनके साथियोने वाकूनिनका पीछा नही छोडा। इन लोगोने बाकूनिनके खिलाफ एक पाम्फ्लट निकाला, जिसमें कितनी ही ऐसी बाते लिख दी, जो विलकुल वेसिर-पैरकी और सोलहआने झूठ थी—वाकूनिन खुफिया पुलिसका आदमी है, रूसी सरकारका एजेण्ट है, रिश्वत लेता है, पूंजीपतियोका सेवक है, इत्यादि-इत्यादि। बाकूनिन उन दिनो हृद्रोगसे बीमार थे और निर्धनताकी दशामें अपने दिन काट रहे थे। उन्हें इस पाम्फ्लटको पढकर वड़ा दुःख हुआ। उसका खडन करते हुए उन्होने लिखा था—

"मै तो अब साठ वर्षका हो चुका और दिलकी बीमारीकी वजहसे मेरे लिए सार्वजनिक जीवनमें भाग लेना दिनो-दिन कठिन होता जाता है। जो नवयुवक है, उनसे मै कहूँगा कि वे आगे वढे। जहाँ तक मेरी बात है, सो न तो मुझमे अब इतनी शक्ति रह गई है और न इतना आत्मविश्वास कि चारो ओरकी प्रतिक्रियाको रोकनेके लिए निरन्तर उद्योग करता रहूँ। यह प्रतिगामीपन या अवनति सब तरफ विजयी प्रतीत

होती है। मैं तो इस युद्धसे विश्राम लेता हूँ और अपने सुयोग्य समकालीन कार्यकर्ताओंको अन्तिम प्रणाम करता हूँ। मैं अपने सहयोगियोंसे सिर्फ़ एक बात चाहता हूँ कि वे मुझे भूल जाएँ। अबसे मैं किसीको तग न करूँगा, न कोई मुझे तग करे।"

यह बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि बाकूनिन मार्क्सकी इस नीतिके घोर विरोधी थे कि उन्होंने इण्टरनेशनलपर कब्जा करके उसे अपना बदला निकालनेका साधन बना लिया था, तथापि बाकूनिनने उक्त सस्थाकी स्थापनाके लिए मार्क्सकी सदा प्रशसा ही की थी। जब बाकूनिनने अपने स्वास्थ्यके गिर जानेके कारण रिटायर होनेकी बात लिखी थी तो कितने ही लोगोने इसका भी मजाक उडाया था। पर दरअसल उनका स्वास्थ्य गिर गया था। बाकूनिनके अन्तिम दिन बडे आर्थिक सकटमें और अत्यन्त कष्टमय परिस्थितिमे कटे। पहली जुलाई सन् १८७६ को बर्नमें उनका देहान्त हो गया।

बाकूनिनके आखिरी दिनोंकी स्थितिपर विचार करते हुए बार-बार मनमे यह खयाल आता है कि क्या राजनीतिका अर्थ यही है कि अपने विरोधी को येनकेन-प्रकारेण नीचा दिखाया जाय? क्या ईमानदारीका राजनीतिमें सचमुच कोई स्थान नही है? जिस महापुरुषने अपने जीवनके तीस वर्ष ससारके गरीबोंकी सेवामे लगा दिये और जिसने अत्यन्त भयंकर पथपर अनन्त यातनाएँ सही, दो बार जिसे फाँसीका हुक्म हुआ, बारह वर्ष जो जेलमें रहा और जिसे जीवन-भर इधर-से-उधर मारे-मारे फिरना पड़ा, क्या उसको अन्तमें यह पुरस्कार मिलना चाहिए था?

प्रिंस क्रोपाटकिनने अपने जीवन-चरितमें एक जगह एक स्मरणीय घटनाका वृत्तान्त लिखा है—

"एक बार एक मीटिंगमे कुछ नवयुवक ऐसी बातचीत कर रहे थे, जो स्त्रियोंके प्रति शिष्टतापूर्ण नही थी। उस मीटिंगमे कई स्त्रियाँ भी उपस्थित थी। उनमेसे एक स्त्रीने कहा—'Pity that

Michel is not here. He would put you in your place.' 'दु खकी बात है कि आज यहाँ माइकेल बाकूनिन मौजूद नही है, नही तो वे तुम्हे बतला देते कि तुम्हारा स्थान कहाँ है।' इस घटनाका मुझपर इतना प्रभाव पडा कि मुझे अब भी उस जगहका जहाँपर और जिस परिस्थितिमे यह घटना घटी थी, पूरा-पूरा स्मरण है। उस पर्वतकाय महान् क्रान्तिकारी का उज्ज्वल आदर्श, जिसने क्रान्तिके लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया था और जिसकी क्रान्तिकी भावनाएँ सर्वोच्च तथा पवित्रतम थी, अराजकवादियोको बराबर उत्साहित किया करता था।"

बाकूनिनका जीवन इतना अधिक क्रान्तिमय रहा कि उन्हे अपने अराजकवाद-सम्बन्धी सिद्धान्तोको ठीक तौर पर जनताके सम्मुख रखनेका अवकाश ही नही मिला। यह कार्य उनके सुयोग्य शिष्य प्रिंस क्रोपाटकिनने किया। 'गुरु गुर ही रहे, चेला शक्कर हो गये'—यह दृष्टान्त बाकूनिन और प्रिंस क्रोपाटकिनपर चरितार्थ होता है। भविष्यके लिए मानव-समाजके कल्याणार्थ कौन-सी व्यवस्था ठीक होगी, इसका ज़िक्र करते हुए श्री बर्टेण्ड रसेलने अपनी पुस्तकमे लिखा है—

"From the point of liberty I have no doubt that the best system would be not far removed from that advocated by Kropotkin but rendered more practicable by the adoption of the main principles of Guild Socialism"

अर्थात्—"स्वाधीनताके खयालसे मेरी समझमे सर्वोत्तम व्यवस्था वह होगी, जिसका प्रतिपादन प्रिंस क्रोपाटकिनने किया है, पर उसे अधिक व्यावहारिक रूप देनेके लिए 'गिल्ड सोशलिज्म' के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तोको ग्रहण करना पडेगा।"

बाकूनिन तथा प्रिंस क्रोपाटकिनके अराजकवाद-सम्बन्धी विचारोका ज़िक्र करते हुए महात्माजीका नाम लेना आश्चर्यजनक भले ही मालूम पड़े;

पर वह है सर्वथा प्रासगिक। दरअसल महात्माजीके विचार प्रिंस क्रोपाटकिनके जितने निकट हैं, उतने कार्ल मार्क्सके नही। जहाँ तक नैतिकताका सम्बन्ध है, महात्माजी तथा प्रिंस क्रोपाटकिन करीब-करीब एक ही धरातलपर है। महात्माजी अपनेको अराजकवादी कहते भी है। महात्माजीके सत्याग्रह तथा अहिंसाको सिद्धान्तमे ससारके लिए जो महान् हितकारी शक्ति छिपी हुई है, उसका मूल्य हम लोगोको अभी पूर्णतया नही मालूम हो सकता। बाकूनिन और प्रिंस क्रोपाटकिन, मार्क्स और लेनिन हिंसाके द्वारा क्रान्ति लाना चाहते है; पर महात्माजी अहिंसा द्वारा। इस सिलसिलेमें हमे एक घटना याद आती है।

सुप्रसिद्ध अमेरिकन दार्शनिक एमर्सन अपनी द्वितीय इग्लैण्ड यात्रापर गये हुए थे। एक दिन वे अग्रेज मित्रोके साथ बातचीत कर रहे थे। उन मित्रोने कहा—"क्या आपके यहाँ अमेरिकामें कोई ऐसे भी आदमी है, जिनके विचार अमेरिकाके शासनके विषयमें निजी हो, मौलिक हो ?"

एमर्सनने उत्तर दिया—"है तो अवश्य; पर जिन लोगोके मौलिक विचार है, वे ऐसे स्वप्नदर्शी है कि यदि मै उनके विचारोका जिक्र करने लगूं, तो वे आपके अगरेज-कानोको बिलकुल ऊटपटाँग जँचेंगे, लेकिन उनका स्वप्न ही वास्तविक है।" इसके बाद एमर्सनने कहा—"हमारे यहाँ ऐसे पवित्र विचारवाले पुरुष हैं, जो No-government and non-resistance अराजकवाद तथा अहिंसामे विश्वास रखते हैं।" इसके बाद एमर्सनने निम्नलिखित शब्द कहे—

"It is true that I have never seen in my country a man of sufficient valour to stand for this truth, and yet is it plain to me, that no less valour than this can command my respect. I can easily see the bankruptcy of the vulgar musket-worship—though great men be musket-worshippers—and 'tis certain as God liveth,

the gun that does not need another gun, the law of love and justice alone can affect a clean revolution."

अर्थात्--ये शब्द ध्यान देने योग्य है कि यदि स्वच्छ क्रांति ससारमें हो सकती है तो 'प्रेम' और 'न्याय' के सिद्धान्तसे ही। यदि एमर्सन आज जीवित होते, तो अवश्य वे महात्माजीमे उस व्यक्तित्वको पाते, जिसके लिए उनकी आँखे सन् १८४७ में भटक रही थी। पर जैसा कि हम पहले लिख चुके है, ससारका उद्धार किसी एक व्यक्तिके सिद्धान्तोसे नही होगा। दो अरब आदमियोसे बने हुए इस मानव-समूहके रोगोकी रामवाण औषधि किसी एक वैद्यके पास नही है। कठमुल्ले है वे, जो समझते है कि वस हमारा ही पथ ठीक है और सब रास्ते गलत है। मार्क्सके जो अनुयायी महात्मा गाधीजीको 'साम्राज्यवादके दोस्त' और 'प्रतिक्रियावादी' बतलाते है अथवा अराजकवादके सिद्धान्तकी खिल्ली उड़ाते हुए अराजकवादियोको 'बुर्जुआ' और 'स्वप्नदर्शी' कहते है, वे अपनी अल्पज्ञताका ही परिचय देते है।

संसारके सामने अभी अनेक युग आनेवाले है। मार्क्सवादका युग ही अन्तिम युग नही है, और उन भावी युगोके लानेका श्रेय जिन व्यक्तियोको होगा, उनमें महाप्राण माइकेल बाकूनिनका नाम अग्रगण्य है।

: २ :

प्रिन्स क्रोपाटकिन

"Kropotkin lived what Tolstoy only advocated."
—Romain Rolland

अर्थात्—"क्रोपाटकिनने अपने जीवनमें उन सिद्धान्तोंको उतारा, जिनकी टाल्सटायने केवल शिक्षा ही दी थी।"—रोम्यां रोलां

अभी उस दिन एक बौद्ध सज्जनसे बातचीत हो रही थी। इन पक्तियोके लेखकने कहा कि भगवान् गौतम बुद्धने यह कहकर कि जो मास खास तौरपर तुम्हारे लिए तैयार न किया हो, उसके भक्षण करनेमे कोई पाप नही है, अपने अहिंसाके सिद्धातपर समझौता कर लिया, और आज चीन, जापान इत्यादिमें जितना मांस-भक्षण होता है, उतना शायद ही किसी देशमे होता हो। इस दृष्टिसे भगवान् महावीरकी पोजीशन कही अधिक तर्कयुक्त थी। इसमे सन्देह नही कि अहिंसाके सिद्धान्तपर अत्यन्त दृढ रहनेके कारण और आदर्शोके विषयमे समझौता न करनेके कारण महावीरका धर्म अधिक नही फैला।

उक्त बौद्ध सज्जनने अपना पक्ष युक्तियो द्वारा समझानेका बहुत प्रयत्न किया, पर वह निर्बल था और कोई भी तर्क उसे प्रबल नही बना सकता था। जब हम मार्क्स अथवा लेनिन और प्रिंस क्रोपाटकिनके सिद्धान्तोकी तुलना करते है, तो हमे गौतम बुद्ध और महावीरके दृष्टान्तोकी याद आ जाती है। महावीरके सिद्धान्तोका बीज दो हजार वर्ष तक इस भूमिमे यो ही पडा रहा, फिर बम्बईके एक जैन राजचन्द्रके द्वारा वह प्रस्फुटित हुआ और उसका लहलहाता हुआ छोटा-सा पौधा उनके शिष्य

महात्मा गान्धीके आन्दोलनके रूपमे आज दीख पड रहा है। कौन कह सकता है कि वह कभी विशाल वट-वृक्षका रूप धारण न कर लेगा? इसी प्रकार आजकल मार्क्सके सिद्धान्त ससारमे विजयकी ओर अग्रसर होते हुए प्रतीत हो रहे है और ऐसा दीख पडता है कि अराजकवाद बहुत पीछे पड गया है, पर यह स्थिति चिरकाल तक स्थायी नही रह सकती। लोग भले ही प्रिंस क्रोपाटकिनको 'स्वप्नदर्शी' कहे; पर इसमे सन्देह नही कि अन्तिम विजय उन्हीके सिद्धान्तोकी होगी।

प्रिंस क्रोपाटकिन किसी भी प्रकारकी सरकारके घोर विरोधी थे और जीवनके अन्ततक वे अपने सिद्धान्तोके लिए लडते रहे। उसपर उन्होने समझौता नही किया। जहाँ तक आदर्श-रक्षाका प्रश्न है, यह बात निस्सन्देह कही जा सकती है कि ससारके इतिहासमे प्रिंस क्रोपाटकिन-जैसे दृष्टान्त दो-चार भी मुश्किलसे मिलेगे।

लाखोकी धन-सम्पत्तिपर लात मारकर जिसने अत्यन्त गरीबीकी हालत मे बढईगीरी तथा जिल्दबन्दी करके अपनी गुज़र करना उचित समझा, ज़ारके पार्श्वद और गवर्नर-जेनरलके सेक्रेटरी होनेके बजाय जिसने किसानो तथा मजदूरोका सखा होना अधिक गौरवयुक्त माना, ससारके वैज्ञानिकोमे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान होनेपर भी जिसने वैज्ञानिक अनुसन्धानोके कार्यको भारतवर्षके एकान्तवासी मोक्षाभिलाषी सन्यासियोकी तरह स्वार्थ-भावनाके समान समझकर तिलाजलि देदी और अराजकवादके प्रचारके लिए जिसने अपने जीवनको बीसियो बार खतरेमे डाल दिया, जिसने न केवल अपने देश रूसकी स्वाधीनताके लिए, वरन् फ्रान्स और इगलैण्ड आदि देशोके मजदूरोके सगठनके लिए भी अपनी शक्ति अर्पित कर दी, जो ४२ वर्ष तक अपने देशसे निर्वासित रहा और जिसने न ज़ारकी सरकारसे समझौता किया और न लेनिनकी गवर्मेण्टसे और मरनेपर भी जिसके सगे-सम्बन्धियो तथा बन्धुओने सरकारकी ओरसे अन्त्येष्टि-क्रिया (State funeral) को सर्वथा अस्वीकार कर दिया,

उन प्रिंस क्रोपाटकिनका जीवन-चरित्र प्रत्येक नवयुवकके लिए पठ-नीय है।

कहा जाता है कि सोवियट सरकारने क्रोपाटकिनसे कहा था कि वे अपनी पुस्तक 'फ्रान्सकी राज्य-क्रान्ति' का अधिकार बहुत-सा रुपया लेकर सरकारको दे दें, क्योंकि सोवियट सरकार उसे अपने स्कूलोंमें पाठ्यपुस्तककी भाँति नियत करना चाहती है; पर उन्होंने इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया, क्योंकि वह एक सरकारकी ओरसे आया था। केम्ब्रिज-यूनिवर्सिटी ने उन्हे भूगोल-शास्त्रकी अध्यापकीका काम करनेके लिए निमन्त्रण दिया, पर साथ-ही यह भी कह दिया था कि हमारे यहाँ अध्यापक होनेके बाद आपको अपने अराजकवादी सिद्धान्तोका प्रचार बन्द कर देना पडेगा। आपने इस नौकरीको भी धता बता दी। जिन सिद्धान्तोका उन्होंने प्रतिपादन किया था, जिन्दगी-भर उन्हीपर वे दृढ रहे। अराजकवादके प्रचारार्थ उन्होंने जो कार्य किया था, उसके बदलेमे एक पैसा भी उन्होंने किसीसे नही लिया। जब वे अत्यन्त गरीबीकी हालतमें इग-लैण्डमे रहते थे, उन दिनो लोगोंने उन्हे दान देना चाहा, किसी-किसीने उन्हे रुपया उधार देना चाहा; पर आपने उसे भी नामजूर कर दिया। घोर आर्थिक सकटके समयमे भी जो लोग उनके पास आते थे, उन्हे वे जो कुछ उनके पास होता था, उसमेसे दे देते थे।

रूसमे क्रान्ति हो जानेके बाद जब लेनिनका शासन प्रारम्भ हुआ, उन दिनो क्रोपाटकिन मास्कोके निकट डिमिट्रोव नामक ग्राममे रहते थे। गोकि उनका स्वास्थ्य खराब था—वे ७५ वर्षके हो चुके थे—तथापि उन्हे उतना ही भोजन सोवियट सरकारकी शाखाकी ओरसे दिया जाता था, जितना बूढे आदमियोके लिए नियत था। उन्होंने एक गाय रख छोडी थी और अपनी स्त्री तथा पुत्रीके साथ वे इस कठिन परिस्थितिमें रहा करते थे। यार लोगोने उनके गाय रखनेपर भी आक्षेप किया! जरा कल्पना कीजिए, जिसने अपने देशकी स्वाधीनताके लिए

५० वर्ष तक कार्य किया, उसके लिए बुढापेमें बीमारीकी हालतमें एक गाय रखना भी आक्षेपका विषय समझा जाता है !

क्रोपाटकिन तो सरकारी शासन-प्रणालीके खिलाफ थे, इसलिए सरकारसे शिकायत करना उनके सिद्धान्तके विरुद्ध था, और शिकायत उन्होने की भी नही, पर क्रोपाटकिनके मित्रोको यह बात बहुत अखरी, और उन्होंने स्थानीय सोवियटके अधिकारियोसे शिकायत कर ही दी; पर उसका परिणाम कुछ न निकला। आखिरकार यह खबर लेनिनके कानोतक पहुँचाई गई। लेनिन क्रोपाटकिनके प्रशसक थे। उन्होंने तुरन्त स्थानीय सोवियटको हुक्म लिख भेजा कि क्रोपाटकिनके भोजनकी मात्रा बढा दी जाय और उन्हे गाय रखने दी जाय। क्रोपाटकिनकी पुत्री के पास लेनिनके हाथका लिखा हुआ यह पर्चा अब भी मौजूद है।

यह कहनेकी आवश्यकता नही कि लेनिन और प्रिंस क्रोपाटकिनके सिद्धान्तोमे जबरदस्त मतभेद था। लेनिनने एक बार प्रिंस क्रोपाटकिनसे मुलाकात भी की थी, पर उसका नतीजा कुछ भी नही निकला। एक लेखकने लिखा है—

"यद्यपि क्रोपाटकिन बोल्शेविक लोगोके द्वारा क्रान्तिका जो विकास हो रहा था, उसमे व्यावहारिक रूपसे कोई भाग नही ले सकते थे, तथापि उन्हे इस बातकी चिन्ता अवश्य थी कि बोल्शेविक लोग दमनकी जिस नीतिका आश्रय ले रहे थे, वह स्वय क्रान्तिके लिए हानिकारक थी और मनुष्यताकी दृष्टिसे भी वह अनुचित थी। लेनिनने अपने एक मित्रके द्वारा, जो प्रिंस क्रोपाटकिनके भी मित्र थे, क्रोपाटकिनके पास यह सन्देश भेजा कि मै आपसे मिलनेके लिए उत्सुक हूँ और आपसे बातचीत करनेके लिए आपके ग्राम डिमिट्रोव आ भी सकता हूँ। क्रोपाटकिन राजी हो गये और दोनोकी बातचीत हुई। यद्यपि लेनिन सहृदयतापूर्वक मिले और उन्होने क्रोपाटकिनके विचारोको सहानुभूतिके साथ सुना भी, पर इस बातचीतका परिणाम कुछ भी नही निकला।"

साम्यवादी (हमारा अभिप्राय मार्क्सवादीसे है) और अराजकवादीके दृष्टिकोणमे ज़बरदस्त मतभेद है। साम्यवादीके लिए मनुष्य शतरंजके एक निर्जीव पैदलकी तरह है, जिसे आप खेलते समय इधर-से-उधर रख सकते है, मनुष्यकी व्यक्तिगत स्वाधीनताका उसके लिए विशेष मूल्य नही, खास तौरपर ऐसे मौकेपर जब कि देश या अपनी पार्टीके हितका प्रश्न उप-स्थित हो, पर अराजकवादी व्यक्तिकी स्वाधीनताका सबसे प्रबल समर्थक है। प्रिंस क्रोपाटकिनने अपने निबन्धमे 'अराजकवादी नीति' मे एक जगह लिखा है—

"हम व्यक्तिकी पूर्ण स्वाधीनताको मानते है; हम उसके लिए जीवनकी प्रचुरता तथा उसकी समस्त प्रतिभाओंका स्वतन्त्र विकास चाहते है। हम उसके ऊपर लादना कुछ भी नही चाहते। इस प्रकार हम उस सिद्धान्त-पर पहुँचते है, जिस सिद्धान्तको फोरियर(Fourier)ने धार्मिक नीतिज्ञानके विरोधमें रखते हुए कहा था—'मनुष्यको बिलकुल स्वतन्त्र छोड़ दो। उसे अंगहीन मत बनाओ, क्योकि धर्म उनको बहुत कुछ अपंग—ज़रूरतसे ज्यादा अपंग—बना चुका है। उनके मनोविकारोंसे भी मत डरो। स्वतन्त्र समाजमे ये खतरनाक नही होते।'

"यदि आप स्वयं अपनी स्वाधीनताका परित्याग न करे, यदि आप स्वयं अपने-आपको दूसरो द्वारा गुलाम न बनने दे और यदि आप किसी व्यक्तिके प्रचंड और समाज-विरोधी मनोविकारका समान रूपमे अपने प्रचंड—समाजके लिए उपयोगी—जोश द्वारा विरोध करे, तो आपके लिए स्वतन्त्रतासे डरनेकी कोई बात नही रह जायगी।

"हम किसी भी आदर्शके नामपर व्यक्तिको अंगहीन करनेकी भावना-का परित्याग करते है। हम अपने लिए सिर्फ इतना ही सुरक्षित रखना चाहते है कि हमे जो कुछ अच्छा या बुरा मालूम हो, उसके प्रति हम स्पष्ट रूपमे अपनी सहानुभूति अथवा विरक्ति प्रकट करें। एक मनुष्य अपने मित्रोंको धोखा देता है। उसकी प्रवृत्ति ही ऐसी है, ऐसा करना उसका

स्वभाव है। अच्छा, तो यह हमारा भी स्वभाव है—हमारी यह प्रवृत्ति है कि हम झूठ बोलनेवालोसे घृणा करे। चूंकि यह हमारा स्वभाव है, इसलिए हमे स्पष्ट रूपसे ऐसा करना चाहिए। हम दौडकर उसे न छातीसे लगावे और न उससे हाथ मिलावे, जैसा कि आजकल कभी-कभी किया जाता है। हमे अपने सक्रिय मनोविकारके द्वारा उसके मनोविकारका प्रचड रूपमे विरोध करना चाहिए।

"हमे सिर्फ इतना ही करनेका अधिकार है, समाजमे समानताके सिद्धान्तको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिए हमें केवल इसी कर्तव्यका पालन करना है। आचरण द्वारा समानताके सिद्धान्तको इसी प्रकार चरितार्थ किया जा सकता है।"

साम्यवादी और अराजकवादीका अन्तर सुप्रसिद्ध अगरेज़ पत्रकार ए० जी० गार्डनरने बडे सुन्दर ढगपर बतलाया है। वे अपनी पुस्तक (Pillars of Society) 'समाजके स्तम्भ' मे लिखते है—

"साम्यवादी मनुष्यको साकार न देखकर मनमें उसकी भावनामात्र करता है और समाजको वह कानून द्वारा परिचालित एक शरीरकी भाँति देखता है। इस कल्पनासे उसके मस्तिष्क पर तो असर पडता है, पर उसकी मनुष्यता बिलकुल प्रभावित नही होती। अराजकवादी, जो दर-असल व्यक्तित्ववादीकी चरमसीमा है, मनुष्यको साकार देखता है, और उसका हृदय मानो मनुष्यके लिए उमड पडता है—ऐसे मनुष्यके लिए, जिसे वह देख सकता, छू सकता और उसकी बात सुन सकता है। अराजकवादीको एक मनुष्यकी चिन्ता है और साम्यवादीको एक प्रणालीकी।"

प्रिंस क्रोपाटकिनका जीवन प्रारम्भसे अन्त तक एक अत्यन्त उच्च-कोटिके सन्त पुरुषका जीवन है, जिसने अपने सर्वस्व—धन-सम्पत्ति, समय, आराम और जीवन—को मानव-जातिके लिए अर्पित कर दिया। उनकी गणना संसारके सर्वोत्तम वैज्ञानिकोमे की जाती थी;

पर उन्होने वैज्ञानिक अनुसन्धानके आनन्दका अकेले ही उपयोग करना उचित न समझा। अपने आत्म-चरितमे एक जगह वे लिखते है—

"जिस किसीने अपने जीवनमे एक बार भी उस आनन्दका जो वैज्ञानिक अनुसन्धानके बाद प्राप्त होता है, अनुभव किया है, वह उस आनन्दको कदापि भूल नही सकता और वह निरन्तर इस बातकी इच्छा करेगा कि यह आनन्द मुझे जीवनमे अनेक बार मिले। पर एक बातसे उसे दुःख होगा, वह यह कि इस तरहका आनन्द कितने अल्पसख्यक आदमियोके भाग्यमे बदा है। यदि सर्वसाधारणको अवकाश मिलता और विज्ञानकी बाते उन्हे समझा दी जाती तो थोडे-बहुत अंशमे वे भी इस आनन्दका अनुभव कर लेते, पर दुर्भाग्यवश यह ज्ञान और अवकाश केवल मुट्ठीभर आदमियोतक ही परिमित रहता है।"

प्रिंस क्रोपाटकिन फिनलैण्डमे भौगोलिक अनुसन्धान करनेके लिए भेजे गये थे। वहाँ जाकर उन्होने देशके दीनहीन किसानोकी हालत देखी, उससे उनका हृदय द्रवित हो गया। आत्म-चरितमे वे लिखते है—"ये बेचारे मेहनत करते-करते मरे जाते है और फिर भी इन्हे पेटभर भोजन नही मिलता! अपने वैज्ञानिक अनुसन्धान करके मै उन्हे यह बतलाऊँ भी कि तुम अमुक जमीनमे अमुक प्रकारका खाद दो और फलाँ कार्यके लिए फलाँ अमेरिकन मशीन मँगाओ, तो उससे फायदा क्या होगा? सरकारी टैक्स बराबर बढता जाता है और टैक्स देनेके बाद पेट-पूर्तिके लिए काफी अन्न नही बचता। शरीर ढकनेके लिए कपडे भी उनके पास नही। भला वह मेरे वैज्ञानिक अनुसन्धानोको और सलाहोको लेकर क्या चाटेगा? इस किसानको मेरी वैज्ञानिक सलाहकी जरूरत नही, उसे जरूरत है मेरी। यदि मै उसके पास रहूँ और अपनी जमीनका मालिक बननेमें उसकी मदद करूँ, जब उसको भरपेट खाना मिलेगा, तब वह मेरी किताब भी पढ लेगा और उससे कुछ लाभ भी उठा लेगा, अभी नही।

विज्ञान बडी अच्छी चीज़ है। मैंने वैज्ञानिक अनुसन्धानोके आनन्दका अनुभव किया है और उसका मूल्य मै भलीभाँति जानता हूँ, पर मुझे क्या अधिकार है कि मै अकेले ही उन सर्वोच्च आनन्दोका मजा लूटूँ, जब मेरे चारो ओर एक-एक रोटीके टुकडेके लिए भयकर जीवन-सग्राम चल रहा है ? जो लोग गेहूँ उगाकर भी इतना नही बचा सकते कि खुद उनके बच्चे गेहूँकी रोटी खा सके, तो मुझे क्या अधिकार है कि मै उनके मुँहकी रोटीके टुकडे छीनकर स्वय उच्च भावनाओके ससारमे विचरण करूँ ? मनुष्य-जाति जो कुछ उत्पन्न करती है, उसकी मिकदार अभी बहुत थोडी है, इसलिए यदि मैं मजेमे रहता हुआ वैज्ञानिक अनुसन्धानोमे मस्त रहूँ तो इसका खर्च भी तो किसी गरीबके मुँहकी रोटी छीनकर ही आवेगा। ज्ञान बडी भारी चीज है। मैं भी यह मानता हूँ। इससे इन्कार कौन करता है ? मनुष्यको ज्ञान बढाना चाहिए, बहुत ठीक। पर सवाल तो यह है कि जितना ज्ञान प्राप्त हो गया है, जितने वैज्ञानिक अनुसन्धान हो चुके है क्या वे सर्वसाधारण तक पहुँच गये ? क्या आम लोग उन्हे जान गये ? मेरी समझमे जितने ज्ञानका पता लग चुका है, वह बहुत काफी है। यदि यही ज्ञान सर्वसाधारणकी सम्पत्ति बन जाय तो फिर विज्ञानकी कितनी ज़बरदस्त उन्नति हो ? तब उत्पत्ति, आविष्कार और सामाजिक कार्योकी गति इतनी तीव्र हो जायगी कि अभी हम उसका अन्दाज़ भी नही लगा सकते। साधारण जनता ज्ञान प्राप्त करना चाहती है। उसकी हार्दिक इच्छा है कि उसे ज्ञान मिले। उसमे ज्ञान प्राप्त करने की सामर्थ्य भी है, पर उसे ज्ञान देता कौन है ? उसके पास इतना अवकाश है कहाँ ?"

क्रान्तिकारी मार्गका अनुसरण करनेसे क्रोपाटकिनको जीवनमे जो-जो कष्ट उठाने पडे, उनका वर्णन करनेके लिए यहाँ स्थान नही है। किस प्रकार किसानो और मजदूरोको उन्होने क्रान्तिकारी सन्देश सुनाया, किस प्रकार वे पकडकर जेलमे डाल दिये गए और किस प्रकार वे वहाँसे निकल

भागे, इन घटनाओंका वृत्तान्त किसी उपन्याससे कम आश्चर्योत्पादक तथा रोचक नही है।

क्रोपाटकिनने अपने जीवनके बयालीस वर्ष स्वदेशसे, बाहर व्यतीत किये। फ्रासमें रूसी सरकारके दबावके कारण वे जेलमे ठेल दिये गए। उनको मरवा डालने अथवा पकडकर रूसको ले जानेके लिए रूसी सरकारने अनेक षडयन्त्र किये, जो विफल ही हुए।

विदेशोमे रहते हुए प्रिंस क्रोपाटकिनने कितने ही ग्रन्थोकी रचना की थी। उनमें मुख्यके नाम ये हैं

(1) Memoirs, (2) Conquest of Bread, (3) Mutual Aid, (4) Pamphlets, (5) Fields, Factories and Workshop, (6) The Great French Revolution, (7) Modern Science and Anarchism, (8) Ideals and Realities in Russian Literature, (9) In Russian and French Prisons and (10) Ethics.

इनमें प्रथम ग्रन्थका भावानुवाद 'प्रताप' कार्यालयसे 'क्रान्तिकारी राजकुमार' के नामसे प्रकाशित हुआ है और द्वितीय तथा तृतीय पुस्तकके अनुवाद 'सस्तासाहित्य-मडल' नई दिल्लीसे 'रोटीका सवाल' और 'सघर्ष या सहयोग ?' के नामसे प्रकाशित हुए है। उनके पाम्फ्लटोमेंसे कईके अनुवाद छप चुके है।

क्रोपाटकिन बीस भाषाएँ जानते थे। सात भाषाओमें तो बडी खूबीके साथ बातचीत कर सकते थे और अपने ग्रन्थ उन्होंने तीन भाषाओ-में लिखे थे—रशियन, फ्रेंच तथा अग्रेज़ी। गणितज्ञ थे, भूगर्भ-विद्याके ज्ञाता थे, दार्शनिक थे, गान-विद्यामे अच्छी गति रखते थे और महान भूगोल-वेत्ताकी दृष्टिसे तीस वर्षकी उम्रमे ही उनकी कीर्ति रूस-भरमे फैल गई थी। इतने विद्वान् होते हुए भी प्रिंस क्रोपाटकिनको अभिमान छू भी नही गया था।

लेनिन, प्रिंस क्रोपाटकिन और महात्मा गाधी इन तीनोके—आधुनिक जगतके इन ब्रह्मा, विष्णु, महेशके—चरितोका तुलनात्मक अध्ययन वास्तवमे अत्यन्त मनोरजक होगा। लेनिन प्रिंस क्रोपाटकिनके व्यक्तित्वकी बडी इज्जत करता था और महात्मा गान्धी भी उनके ग्रन्थोके प्रशसक रहे है। हिंसा और अहिंसाके प्रश्नपर निस्सन्देह महात्माजीकी पोजीशन मानव-समाजके अन्तिम हितको ध्यानमे रखते हुए सबसे ऊँची है। लेनिन स्वय हिंसाको दिलसे बहुत नापसन्द करता था। मैक्सिम गोर्कीको उसने एक पत्रमें लिखा था—

"Appasionata नामक गानको सुनकर मेरी तो तबियत फड़क जाती है। मनमे आता है कि हर रोज उसे सुनूं। यह गान आश्चर्यजनक है, स्वर्गीय है। जब कभी मै उसे सुनता हूँ तो मै अभिमानपूर्वक और शायद बच्चो-जैसी भोली-भाली सादगीके साथ कहने लगता हूँ कि मनुष्य कैसी बढिया चीजोका निर्माण कर सकता है, पर मै गाने अक्सर नही सुन सकता, क्योकि उनसे मेरे स्नायुओपर असर पडता है। इन गानोको सुनकर मेरे मनमे यह विचार आता है कि इस गन्दे नर्कमे रहते हुए भी जो महानुभाव ऐसी सुन्दर चीजोकी सृष्टि कर सकते है, उन्हे मै बधाई दूँ, उनके मनको लुभानेवाली बाते कहूँ और उनके सिरको सहलाऊँ। पर आज तो लोगोके सिर सहलानेका वक्त नही है, आज तो मेरे हाथ लोगोकी खोपड़ी तोडनेके लिए, उनके टूक-टूक कर देनेके लिए, आगे बढते है, यद्यपि सब प्रकारकी हिंसाका विरोध हमारा अन्तिम ध्येय है—यह हिंसाकार्य वास्तवमे नारकीय तथा अत्यन्त कठोर है।"

प्रिंस क्रोपाटकिन भी हिंसाको नापसन्द करते थे। किसीकी जान लेना तो दूर रहा, उन्होने जिन्दगी-भरमे किसीको पीटा भी हो, इसमे सन्देह है, पर राजनैतिक हिंसाओका उन्होने समर्थन ही किया था। महात्मा गाधी ही अकेले ऐसे व्यक्ति है, जिन्होने हिंसाका स्थान प्रेमको दिया है। एमर्सनने अपने निबन्ध पालीटिक्स (Politics) मे लिखा था—

"The Power of the love as the basis of a State has never been tried. अर्थात्—"शासनकी नीवको प्रेमके आधारपर रखनेका प्रयोग कभी नही किया गया।" यदि एमर्सन जीवित रहते तो अवश्य ही वे महात्माजीका समर्थन करते।

जिस प्रकार मार्क्सके मतानुयायियोकी दृष्टिमे प्रिंस क्रोपाटकिनके सिद्धान्त 'स्वप्नदर्शी' के ख्वाब है, उसी प्रकार प्रिंस क्रोपाटकिनके अनुयायियोकी दृष्टिमे महात्माजीके सिद्धान्त 'स्वप्नदर्शी' के सपने हो सकते हैं।

अन्तमे हमे क्रोपाटकिनके जीवनके आखिरी दिनोकी दो बातें और कहनी है। जिस जारशाहीके नाशके लिए क्रोपाटकिनने जीवनके ५० वर्ष तक प्रयत्न किया था, वह सन् १९१७ मे नष्ट हो गई और रूसमे बोल्शेविक लोगोका शासन हो गया। जैसा कि हम पहले कह चुके है, प्रिंस क्रोपाटकिन शासनके सर्वथा विरोधी थे और अपने सिद्धान्तोके लिए समझौता करनेके लिए बिलकुल तैयार न थे। पाठक पूछ सकते हैं कि फिर उन्हे अपने अन्तिम दिन कैसे व्यतीत करने पडे ? ७५ वर्षकी उम्रमे वे अपनी 'नीतिशास्त्र' (Ethics) नामक अन्तिम पुस्तक लिख रहे थे। किताबोके खरीदनेके लिए उनके पास पैसा नही था। जब कभी मित्र लोग थोड़ा-सा पैसा भेज देते तो एक-आध आवश्यक पुस्तक वे खरीद लेते। पैसेकी कमीके कारण ही वे कोई क्लर्क या टाइपिस्ट नही रख सकते थे। इसलिए अपने ग्रन्थकी पाण्डुलिपि बनानेका और चीजोके नकल करनेका काम उन्हे खुद ही करना पडता था। भोजन भी उन्हे पुष्टिकर नही मिल पाता था, जिससे उनकी कमजोरी बढती जाती थी और एक धुंधले दीपककी रोशनीमे उन्हे अपने ग्रन्थकी रचना करनी पडती थी।"*

---

*प्रिंस क्रोपाटकिनके मित्र एन. लेबेडर (N. Lebedar) ने उनकी पुस्तक 'नीतिशास्त्र'की भूमिकामें ये बातें लिखी हैं।

जिस ऋपिके सिद्धान्त कभी ससारके मानव-समाजके कल्याणका कारण बनेंगे उसे स्वदेशमें किस प्रकार अपने अन्तिम दिन व्यतीत करने पड़े !

क्रोपाटकिनके अनन्य साथी एन० लेवेडरने 'नीतिशास्त्र' नामक पुस्तककी भूमिकामे लिखा है—

"In his 'Ethics,' Kropotkin, like the poet, gives to mankind his last message—

'Dear friend, do not with weary soul aspire
Away from the gray earth—your sad abode
No! throb with the earth, let earth your body tire—
So help your brothers bear the common load.'"

—"कविकी निम्नलिखित कविता ही क्रोपाटकिनके जीवनका अन्तिम सन्देश है—

'प्रिय मित्र ! अपनी थकी हुई आत्मासे यह आकाक्षा मत करो कि हमें कही इस दु खमय पृथिवीसे दूर कोई विश्राम-स्थल (स्वर्ग इत्यादि) मिले। हर्गिज़ नही, बल्कि इस पृथिवीकी साँसके साथ तुम भी सास लो, पृथिवीकी सेवा ही तुम्हारे शरीरको थकावे और अपने भाइयोपर जो दु खका भार है उसको बँटाने और उठानेमे मदद दो।' "

या यो कहिये—

"न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्ति नाशनम् ॥"

अप्रैल १९३६]

: ३ :

अराजकवादी मैलटेस्टा

भूमध्यसागरके एक क्षुद्र द्वीप लम्पेडूसाके आसपास भयकर तूफान आ रहा है। चार निर्वासित आदमी उस द्वीपमे कैद है और उनपर कड़ा पहरा रखा जाता है। उधर तूफानके कारण सन्तरी लोगोने घरके भीतर जाकर शरण ली और इधर ये चारो कैदी भाग निकले! एक छोटी-सी नाव लेकर उन्होने समुद्रमे डाल ही तो दी और लगे उसे खेने! उस समुद्र-मे तूफानके समय नौका डालनेका अर्थ था मृत्युका आलिगन और सन्तरी इसीलिए बिलकुल निश्चिंत होकर विश्राम कर रहे थे, पर आजादीके मस्ताने उन कैदियोने इसकी कोई चिन्ता न की। पाठक पूछेगे कि ये दुस्साहसी कैदी कौन थे? ये थे सुप्रसिद्ध इटेलियन अराजकवादी मैल-टेस्टा और उसके तीन साथी।

मैलटेस्टाका जीवन प्रारम्भसे लेकर अभी तक अत्यन्त साहसिक जीवन रहा है। ऐरिको मैलटेस्टाका जन्म आजसे ८१ वर्ष पहले सन् १८५३ मे इटलीके दक्षिण भागके एक नगरमे हुआ था। सन् १८७० मे मैलटेस्टा नेपिल्सके विश्वविद्यालयमे डाक्टरीकी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उस समय इटलीमे विद्यार्थियोकी हडताले खूब हो रही थी। मैलटेस्टाने उन हडतालोमे भाग लिया, वे पकडे गये और कालेजसे निकाल दिये गए। उस समय उन्होने बिजलीके मिस्त्रीका काम सीख लिया और उसीके द्वारा वे जब-जब उन्हे जरूरत पडी है, अपनी जीविका निर्वाह करते रहे है।

मैलटेस्टाके जीवनके पिछले ६०–६२ वर्ष अराजकवादके सिद्धान्तोके

प्रचारमे वीते है। यदि वे चाहते तो आज वे इटलीमे मुसोलिनीकी जगहपर होते, पर अराजकवादियोका यह दृढ सिद्धान्त रहा है कि वे किसी प्रकारके राज्यमे विश्वास नही रखते और इसी सिद्धान्तके अनुसार क्रान्तिकारी मैलटेस्टा इटलीका शासक होनेके वजाय आज रोममे अपनी पत्नी और लडकीके साथ विजलीके मिस्त्रीका काम करते हुए जिन्दगी वसर कर रहे है। खुफिया पुलिसके तीन आदमी उनकी निगरानी किया करते है! जव इटलीके दम्भी नट मुसोलिनीका जन्म भी नही हुआ था, उस समयसे मैलटेस्टाको एक ही धुन रही है और वह है अराजकवादी समाजवादका प्रचार। अराजकवादियोके आचार्य माइकेल वाकूनिन उन दिनो अपने देश रूससे निर्वासित होकर साइवेरिया भेज दिये गए थे। वहाँसे भागकर वे इटलीके फ्लोरेन्स नगरमे और फिर नेपिल्समे आकर रहे थे। उनके असाधारण त्याग तथा अद्भुत व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर कितने ही इटेलियन युवक उनकी शिष्य-मडलीमे सम्मिलित हो गये थे। मैलटेस्टाने भी वाकूनिनके ही दलमे सम्मिलित होनेका निश्चय कर लिया और १९ वर्षकी उम्रमे शामिल हो गये। इसके थोडे दिनो वाद वे स्विट्ज़रलैण्ड जाकर वाकूनिनसे मिले भी और उनके व्यक्तित्वसे अत्यन्त प्रभावित हो गये। वाकूनिनने उनका नाम वैजमिन रख दिया।

उन दिनो इटलीके कुछ अनुभवहीन नवयुवकोने किसानोमें क्रान्ति करनेकी सोची और कुछ लोगोको भडकाया भी, पर वे पकड लिये गए और कुछ परिणाम नही निकला। मैलटेस्टाको सालभर जेलमें रखा गया। फिर मुकदमा चला, जिसमे ये लोग छोड दिये गए। जूरीने कहा कि ये नातजुर्वेकार छोकरे खेल कर रहे थे!

सन् १८७५मे मैलटेस्टाने दो वर्ष इटलीके वाहर विताये—कुछ दिन स्पेनमे और कुछ अन्यत्र। उन दिनो तुर्कोंने वालकनके किसानो-को अत्याचारोसे पीडित कर रखा था। मैलटेस्टाके शरीरमे जवानीका खून जोश मार रहा था। उस समय उनकी उम्र कुल २३ वर्षकी

थी । वे किसानोका पक्ष लेकर तुर्कोसे लडनेके लिए चल पड़े, पर आस्ट्रिया हगरी प्रदेशकी सीमापर वे पकड लिये गए और वहाँसे इटलीको वापस भेज दिये गए ।

सन् १८७७मे मैलटेस्टा और उसके साथियोने फिर किसानो द्वारा विद्रोह करानेकी ठानी । नेपिल्सके निकट बैनवेन्टो नामक स्थान इसके लिए चुना गया । कई सौ किसान विद्रोह करनेके लिए तैयार भी हो गए, पर इस षड्यन्त्रका भंडा फूट गया और विद्रोहकी तिथिके पहले ही तीन सौ किसान पकड लिये गए । मैलटेस्टा भी अपने २६ साथियोके साथ गिरफ्तार हुए और १६ महीने तक हिरासतमे रखे गए । इसके वाद उनपर मुकदमा चला; पर जूरीने उन्हे छोड दिया ।

सन् १८७८मे मैलटेस्टाने इटली छोडकर दूसरे देशोमे भ्रमण करनेकी ठानी । उन्होने अपने नगरको लौटकर सबसे पहला काम यह किया कि अपनी तमाम जायदाद—मकान इत्यादि—किरायेदारोको दे डाली और खुद विलकुल निर्धन हो गये । उस समय मैलटेस्टाके आचार्य वाकूनिनकी मृत्यु हो चुकी थी । अब उनके अराजकवादके सन्देशको देश-देशान्तरोमे फैलाना उन्होने अपने जीवनका उद्देश्य बना लिया । इटली, स्पेन, फ्रान्स और इग्लैण्ड जहाँ-जहाँ वे रहे है, जीवन-भर यही काम करते रहे है ।

मैलटेस्टाके जीवनकी अन्य घटनाओका वर्णन करनेसे पहले हम उनके व्यक्तित्वके विषयमे प्रिन्स क्रोपाटकिनकी सम्मति उद्धृत कर देना आवश्यक समझते हैं । प्रिन्स क्रोपाटकिनने अपने जीवन-चरितमे लिखा है—

"मैलटेस्टा जोश और जवानीसे परिपूर्ण है और उन्होने कभी इस वातका खयाल भी नही किया कि दिन-भर काम करनेके वाद रातको उन्हे कही रोटी भी खानेको मिलेगी या नही और वे सोवेगे कहाँ ? लन्दनमे उनके पास रहनेको कोई कमरा नही, जीविका-निर्वाहके लिए दिनभर वे

वहाँकी गलियोमें शर्बत बेचते और रातके वक्त इटेलियन पत्रोके लिए महत्वपूर्ण लेख लिखते। आज फ्रासमे वे कैद है, कल छूटते है और देश-निकालनेका उन्हे दड दिया जाता है, फिर इटलीमें पकड लिये जाते है, एक द्वीपमे उन्हे नजरबन्द किया जाता है, वहांसे भाग निकलते है और दूसरे वेशमे फिर इटलीमें प्रवेश करते है, गरज यह कि जहाँ कही भी भीषण युद्ध हो, इटलीमें या कही और, आप मैलटेस्टाको वही उपस्थित पावेगे। इस तरह उन्होने लगातार तीस वर्ष बिताये है और जब कभी आप उनसे मिले—चाहे वे किसी द्वीपसे भागकर आये हो या जेलसे छूटकर, उन्हे आप ज्यो-का-त्यो पावेगे, फिर उसी उत्साहके साथ अपने सग्राममें जुटे हुए। उनके हृदयमे मानव-समाजके लिए वही उत्कट प्रेम है, अपने शत्रुओको तथा जेल-भेजनेवालोके प्रति भी वही विद्वेषका सर्वथा अभाव है, मित्रोके लिए उनके चेहरेपर वही सहृदयतायुक्त मुस्कराहट है और बच्चोके लिए वही प्रेमयुक्त पुचकार।"

सन् १८८३ मे मैलटेस्टा इटलीमें फिर आये, लेकिन पकड लिये गए और तीन वर्षकी जेल कर दी गई। उनपर अपराध यह लगाया गया था कि वे 'जरायमपेशा गिरोह' के है। उन दिनो गवर्मेन्ट अराजकवादियो-पर यही अपराध लगा-लगाकर जेलमे ठेल देती थी। इनमे न तो लम्बे मुकदमेकी जरूरत पडती थी और न गवाहोकी। सरकारी वकील कह देता था—"व्यक्तिगत रूपसे हमें इनके विरुद्ध कुछ नही कहना। वैसे ये लोग बिलकुल भलेमानस है, चरित्र भी इनका अच्छा है; पर है ये 'जरायमपेशा गिरोहके।" इस मुकदमेकी अपील की गई और तबतक वे एक मकानमें नज़रबन्द कर दिये गए। पुलिस उनके विषयमें अत्यन्त सावधान थी, पर फिर भी वे भाग निकले। एक सन्दूकमें वे बन्द किये गए और सीनेकी मशीनके बहाने अमेरिका जानेवाले एक जहाज़पर लाद दिये गए! वे अर्जेन्टाइना पहुँचे। वहाँ रहकर उन्होने सोनेकी खानके लिए ज़मीन लेकर खुदाई करानेका विचार किया, जिससे वे अराजकवादियोके लिए

एक कोष स्थापित कर सके। जमीन मिल तो गई; पर अर्जेन्टाइना-गवर्मेन्ट-को उनके इस विचारका पता लग गया और उसने मैलटेस्टा तथा उनके साथियोकी जमीन छीन ली!

सन् १८८९ मे मैलटेस्टा लन्दनमे वापस आ गये और सन् १८९७ तक वे वही रहे। इन दिनो उन्होने बहुतसे पाम्फ्लेट निकाले। ये पुस्तिकाएँ इतनी लोकप्रिय हुई कि यूरोपकी भिन्न-भिन्न भाषाओमे इनके अनुवाद प्रकाशित हुए। मैलटेस्टाके जीवनके ये वर्ष उनके पूर्ण यौवनके थे और इन दिनो ही उन्होने अपने अराजकवादी विचारोके प्रचारके लिए बहुत कुछ कार्य किया। मैलटेस्टा बहुरूपियेकी कलामें पारगत थे। बेलजियम, फ्रान्स, स्विट्जरलैण्ड और इटलीकी कितनी ही यात्राएँ उन्होने इस बीच वेश बदलकर की थी, क्योकि इन देशोमे उनका प्रवेश निषिद्ध था। उन दिनो इन देशोमे कितनी ही हत्याएँ हुई थी और कितने ही लोगोका यह विश्वास था कि इन हत्याओके जडमें मैलटेस्टाका हाथ है। चाहे इन हत्याओमेंसे किसीकी पूर्व सूचना भले ही मैलटेस्टाको रही हो, पर उन्होने किसीको हत्याके लिए उकसाया हो, इसपर विश्वास नही किया जा सकता, क्योकि वे व्यक्तिगत हत्याओके सदा विरुद्ध ही रहे हैं। इन दिनोमे मैलटेस्टाको बहुत काम करना पडा। उनका पहला काम तो था पूँजीपतियोके विरुद्ध सग्राम, दूसरा था कार्ल-मार्क्सके अनुयायियोका विरोध और तीसरा था स्वय अपने दलवालोको गृह-कलहसे बचाना। पर उन दिनो जवानीके जोशमे ये काम करना उनके लिए कुछ कठिन न था।

सन् १८९६ में दूसरा वेश धारण करके मैलटेस्टाने इटलीकी यात्रा की और अकोना नामक स्थानसे उन्होने एक पत्र प्रकाशित करना शुरू किया। उनके लेखोका जबरदस्त प्रभाव पड़ने लगा। पुलिसवाले हैरान थे कि आखिर वह कहाँ छिपा हुआ है। मैलटेस्टाके लेखोका फैक्टरियोके मजदूरोपर इतना अधिक असर पडा कि उन्होने शराब पीना छोड़ दिया,

आपसमें लडना वन्द कर दिया और वहाँ खून-खरावियाँ वन्द हो गईं। पुलिस और कचहरीवाले हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहते थे। पुलिसने वडे ज़ोर-शोरके साथ मैलटेस्टाकी खोज करनी शुरू की और अतमें उन्हे पकड ही लिया। उनपर मुकदमा चला और छ. महीनेकी कैद हो गई। सरकारी वकीलने वडे भोलेपनके साथ कहा था—

"मैलटेस्टाकी वजहसे जुर्म ही वन्द हो गये है। इसमें मैलटेस्टाका वुरा उद्देश्य स्पष्ट प्रतीत होता है, क्योंकि इस तरह वह सरकारी कचहरियोको ही विलकुल निकम्मी वना देना चाहता है।"

जिन दिनो मैलटेस्टा छ. महीनेकी कैद भुगत रहे थे, उन्ही दिनो इटलीके दक्षिण भागमे विद्रोह हुआ। सरकारने विना कुछ समझे-बूझे मैलटेस्टाको पाँच वर्षके लिए निर्वासनका दड दे दिया और उन्हे भूमध्य सागरके लम्पेडूसा नामक निर्जन द्वीपमें रहनेके लिए भेज दिया। जैसा कि हमने इस लेखके प्रारम्भमे लिखा है, तूफानके समय, जवकि सन्तरी लोग विलकुल निश्चित होकर घरके भीतर विश्राम कर रहे थें, मैलटेस्टा अपने तीन साथियोके सग भाग निकले और उन्होने अपनी नौका समुद्रमें डाल दी। खैरियत यह हुई कि उस समय एक जहाज़ वहाँसे कुछ दूरीपर जा रहा था। उसने इस नौकाके आदमियोको वचा लिया और उन्हे माल्टामे ले जाकर उतारा। वहाँसे मैलटेस्टा लन्दनको भाग आये।

लन्दनमे कुछ महीने रहनेके वाद मैलटेस्टा सयुक्त-राज्य अमेरिकाको गये और वहाँसे उन्होने इटेलियन भाषामे एक पत्र निकाला। उन दिनो अराजकवादियोमें एक मतभेद उपस्थित हो गया था, वह यह कि अराजक-वादियोको सस्था स्थापित करनी चाहिए या नही। इस विषयमे उनके विरोधी थे जी० सियानकै विल्ला, जो सस्था स्थापित करनेके विपक्षमे थे। जव इन विल्ला महाशयने देखा कि वहुमत मैलटेस्टाके पक्षमे होता जा रहा है तो उन्होने आव न देखा ताव, तुरन्त अपनी पिस्तौल मैलटेस्टापर दाग दी और खुद भाग गये। बेचारे मैलटेस्टा पकडे गये, क्योंकि घायल

होनेके कारण वे वही पड़े हुए थे। पुलिसने बहुत कोशिश की कि वे अपराधीका नाम बतलावे; पर मैलटेस्टाने नाम बतलानेसे इन्कार कर दिया! पुलिस उन्हे कुछ देरके लिए जहाँ-का-तहाँ पड़ा छोड़ गई, इस उम्मीदमे कि बिना मरहम-पट्टीके पड़े रहनेके भयसे ही वे अपने शत्रुका नाम बतला देंगे, पर उन्होने तब भी नाम नही बतलाया। थोड़े दिनमे घाव भर जानेपर मैलटेस्टा भले-चगे हो गये और कुछ दिनों बाद फिर लन्दन लौट आये।

सन् १९०० मे मैलटेस्टा लन्दन आ पहुँचे और वहाँ उन्होने एक छोटीसी दूकान लेकर मिस्त्रीका काम करना शुरू किया। जीविका-निर्वाहके बाद जो समय बचता था, उसे वे अपने विचारोके प्रचारमे लगाते थे। सन् १९११-१२ मे उन्हे लन्दनकी जेलकी हवा खानी पड़ी। बात यह हुई थी कि सन् १९११-१२ में इटलीने जब ट्रिपोली पर आक्रमण किया था तो इस विषयपर लन्दन-निवासी इटेलियन क्रान्तिकारियोमे मतभेद हो गया—कोई आक्रमणके पक्षमे था तो कोई विपक्षमे। वाद-विवादमे मैलेटेस्टाने अपने विरोधीसे कह दिया—"तुम सरकारी जासूस हो।" उसने अदालतमे मानिहानिका दावा कर दिया। मैलटेस्टाको उस आदमीके विषयमे इटलीसे प्राइवेट तौरपर बहुत-सी बातोंका पता चल गया था और उन्हीके बल-बूतेपर उन्होने उस आदमीको जासूस बतलाया था। मुकदमा हुआ। ब्रिटिश न्यायालयोके नियमानुसार अदालतमे मैलटेस्टाकी उन प्राइवेट बातोको कहनेसे मना कर दिया गया। नतीजा यह हुआ कि उन्हे तीन महीनेकी जेल हो गई! न्यायाधीशने तो यहाँ तक लिख दिया था कि उन्हे देशसे निकाल बाहर किया जाय; पर प्रभावशाली मित्रोके जोर डालनेपर यह दड उनको नही दिया गया।

जून सन् १९१४ मे मैलटेस्टा फिर इटली चले गये। वहाँ जाकर उन्होने एक अराजकवादी पत्रका सम्पादन करना प्रारम्भ कर दिया।

थोड़े ही दिनोमे उनके पत्रका कार्यालय क्रान्तिकारियोका अड्डा बन गया। उन्ही दिनो इटलीमे बडी जबरदस्त हडताल हुई। मैलटेस्टा और उनके साथियोको आशा थी कि यह हडताल क्रान्तिकारी रूप धारण कर लेगी; पर मजदूर-दलके नेताओको बीचमे ही छोडकर भागना पडा। सरकारने उन्हे पकडनेके लिए बहुत कोशिश की, पर वे भाग निकले और लन्दनमें आ पहुँचे।

महायुद्धके दिनोमे मैलटेस्टाको अपने साथियोसे फिर प्रबल मतभेद प्रकट करना पडा। उस समय कितने ही अराजकवादियोने जर्मनीके विरुद्ध लडनेकी घोषणा की थी; पर मैलटेस्टाने अपनी राय इन लोगोके खिलाफ जाहिर की। युद्धके दिनोमे मैलटेस्टाने इटली लौटनेके लिए बहुत प्रयत्न किया, पर वहाँकी सरकारने अनुमति नही दी। इटेलियन सरकारका कहना था—"इटलीके लिए मैलटेस्टा भयकर रूपसे खतरनाक है, चाहे वह स्वतत्र हो या जेलमे।"

युद्ध समाप्त होनेपर मैलटेस्टाने इटली वापस जानेके लिए फिर प्रयत्न किया, पर वहाँकी सरकारने फिर साफ इन्कार कर दिया। ब्रिटिश सरकारने भी यह आज्ञा निकाल दी कि कोई भी जहाज किसी ब्रिटिश बन्दरगाहसे मैलटेस्टाको न चढ़ावे। फ्रेंच सरकारने यह आज्ञा निकाली कि मैलटेस्टा फ्रान्समे होकर न जाने पावे। पर इन तीनो सरकारोको चकमा देकर वे इटली पहुँच ही गये! एक इटेलियन जहाज जेनोवा जा रहा था। उसके कप्तानसे जोड़-तोड लगाकर वे उस जहाजपर चढ गये और जेनोवामें उतरे।

इटलीकी साधारण जनताने मैलटेस्टाका दिल खोलकर स्वागत किया। उन दिनो मुसोलिनी एक पत्र निकालते थे। उस पत्रमे उन्होने भी मैलटेस्टाका अभिनन्दन ही किया। मुसोलिनीने उस समय लिखा था— "यद्यपि मैलटेस्टासे हमारा मतभेद है, क्योकि न तो हम किसी इलहाम (दैववाणी) मे विश्वास करते है और न किसी स्वर्गमे, फिर भी हम किसी

भी ऐसे आदमीकी, जो निस्वार्थ भावसे अपने उद्देश्यमे निरन्तर लगा हुआ हो, प्रशसा करना अपना कर्तव्य समझते है और इस दृष्टिसे हम मैलटेस्टाका हार्दिक अभिनन्दन करते है ।"

मैलटेस्टाने फिर एक अराजकवादी पत्रका सम्पादन करना प्रारम्भ किया। उस समय उनका प्रभाव जनतापर बहुत काफी था। उनकी पचास वर्षकी देश-सेवाके कारण उनके प्रति लोगोके हृदयमे अत्यन्त श्रद्धा थी। यद्यपि वे कोई अच्छे व्याख्यानदाता नही है, फिर भी उनके भाषणो मे हजारो आदमियोकी भीड़ होती थी। कभी-कभी तो यहाँ तक हुआ कि सरकारी पुलिसके आदमी भी, जो उनकी मीटिंग देखनेके लिए भेजे गये थे, उनके व्यक्तित्वसे प्रभावित हो गये और अपनी नौकरी खो बैठे।

इटलीमे एक बार फिर भयकर हड़ताल हुई। उस समय मैलटेस्टाको यह आशा हुई कि क्रान्ति निकट ही है और पूँजीपतियोके हाथसे इस समय शक्ति छीनी जा सकती है, पर यह आशा भी निराशामे परिणत हो गई, क्योकि थोडे दिनो बाद ही हडतालियोने कुछ थोथे वायदोपर ही हडताल तोड दी। जब हडताल चल रही थी और जब कुछ मजदूरोने फैक्टरियो-पर कब्जा कर लिया था, उस समय ६७ वर्षका यह युवक-क्रान्तिकारी बराबर मजदूरोके पास जा-जाकर उन्हे उत्साहित करता था। हडतालके टूटनेपर सरकारने मैलटेस्टाको और उनके साथियोको पकड लिया। छ महीने तक उनपर कोई मुकदमा नही चलाया गया। इससे तग आकर मैलटेस्टा और उनके अन्य साथियोने भूख-हडताल कर दी। इस भूख-हडतालका सरकारपर काफी असर पडा रहा था कि इतनेमे कुछ नाममात्र-के अराजकवादियोने अपनी बेवकूफीसे सारा गुड-गोबर कर दिया। २३ मार्च सन् १९२१ को उन्होने एक थियेटरमे, एक बिजली घरमे और एक होटलमें, बम रख दिये, जिससे २१ निरपराध आदमियोके प्राण चले गये और कितने ही अपाहिज बन गये। इस मूर्खतापूर्ण कार्रवाईका नतीजा यह हुआ कि मैलटेस्टा और उनके साथियोको अपनी भूख-हडताल तोड

देनी पडी, क्योंकि उस समय जनता इस पागलपनके सर्वथा विरुद्ध हो गई थी। मैलटेस्टाके लिए—भूख-हडताल तोडना तो ज़हरका कडवा घूंट पीना था ही, पर उससे भी अधिक कठोर काम उन्हे दूसरा करना पडा। उन्होने जनताके लिए एक बयान प्रकाशित किया, जिसमें इस आततायी कार्यकी घोर निन्दा की। उन्होंने साफ-साफ कहा कि जिन लोगोने ये हत्याएँ की हैं, वे या तो पागल है, अथवा हमारे घोर शत्रुओके उकसानेके कारण उन्होने यह कार्रवाई की है।

जैसा कि आगे चलकर साबित भी हुआ, इन हत्याकारियोके दो मुख्य नेताओमेंसे एक फौजी आदमी था, जो पागलपनकी वजहसे फौजमेंसे निकाल दिया गया था और दूसरा एक कट्टर अराजकवादी था, जो घोर निराशाके कारण इस जघन्य कार्यमे शामिल हो गया था।

दस महीने हिरासतमे रखकर गवर्मेन्टने मुकदमा चलाया। उस मुकदमेमे मैलटेस्टाने जूरी लोगोके सामने अपना भाषण देते हुए कहा था—"अब मैं अडसठ वर्षका हो चुका। मेरा जीवन एक मामूली आदमीका क्षुद्र जीवन रहा है, पर इस तुच्छ जीवनमें अपनी परिमित शक्तियोके अनुसार अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए मैंने भरसक प्रयत्न किया है। स्वाधीनता, न्याय और प्रेमके सिद्धान्तोका मैं अपनी बाल्यावस्थासे ही प्रतिपादन करता रहा हूँ और अपनी मृत्यु-पर्यन्त करता रहूँगा। मेरे जीवनके दस-बारह वर्ष जेलमे बीते हैं। सग्राममे मुझे सफलता नही मिली, इसलिए सम्भवत. मेरे-जैसे आदमीके जीवनके लिए यही उपयुक्त होगा कि मै अपने सिद्धान्तोके लिए जेलमे ही प्राणत्याग करूँ और यह निरर्थक भी न होगा। मेरे सिद्धान्तोके प्रचारके लिए शायद यही सर्वोत्तम साधन हो कि मेरे जीवनके शेष वर्ष जेलके बाहर नही, बल्कि जेलके भीतर ही बीते। बाहर रहकर शायद मैं इतना प्रचार कर भी न सकूँगा। लेकिन यदि मुझे केवल अपने उद्देश्य-पूर्तिकी ही चिन्ता होती तब तो मै निर्दयतापूर्ण जेलके लिए ही उत्सुक होता, क्योंकि उससे मेरे सिद्धान्तोका प्रचार होता। यद्यपि मैं

दृढ विश्वासका आदमी हूँ, पर मै कोई वीर नही हूँ । जैसा कि रहस्यवादी लोग कहते है, आत्मा तो प्रबल है, पर शरीर अपनी कमजोरी प्रकट करता है । मुझे जीवित रहना पसन्द है । अनेक आदमियोसे मै प्रेम करता हूँ और बहुतसे आदमी मेरे प्रति भी हार्दिक स्नेह रखते है । इसलिए मेरी इच्छा यही है कि मै छोड दिया जाऊँ । मै अपने मित्रोके बीचमे रहना चाहता हूँ, लेकिन यदि आप लोगोका यही निर्णय हो कि मुझे जेलका दड मिलना चाहिए तो इतनी मानसिक शक्ति मुझमे अभी है कि मै गम्भीरतापूर्वक अपने दुर्भाग्यका सामना करूँ । चाहे मेरी मृत्यु जेलमे ही हो जाय, पर मै गौरवमय मृत्यु चाहता हूँ । मै चाहता हूँ कि अपने आदर्शकी पवित्रताके भावोके उज्ज्वल प्रकाशमे मेरा देहान्त हो । चाहे मेरा आदर्श भले ही कोरमकोर स्वप्न हो, पर है वह प्रेमका स्वप्न ।"

न्यायाधीशने मैलटेस्टाको छोड़ दिया । सरकारी वकीलको सम्भवत ऊपरसे आज्ञा मिल चुकी थी कि मामलेको आगे न चलाओ । सरकार जानती थी कि दस महीनेकी जेल तो मैलटेस्टा और उनके साथी भुगत ही चुके है । अगर जरूरत होगी तो इन्हे फिर पकड लेगे ।

जेलसे छूटकर मैलटेस्टाने फिर अपने अराजकवादी दैनिक पत्रका सम्पादन प्रारम्भ किया, पर मुसोलिनीके दलवालोने उनके प्रेसको ही नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । अक्टूबर १९२४ मे उन्होने फिर एक पाक्षिक पत्र निकाला, जिसमे अराजकतावादके सिद्धान्त-मात्र रहते थे; पर सन् १९२६ मे सरकारने इस पत्रको भी बन्द कर दिया ।

अराजकवादी लोग किसी प्रकारके शासनमे विश्वास नही करते, इसलिए वे रूसके बोल्शेविक शासनके भी विरुद्ध है । रूसी सरकारने सैकडो अराजकवादियोको भयकर समझकर जेलमे ठेल दिया है । जब लेनिनकी मृत्यु हुई, तो मैलटेस्टाने लिखा था—"Lenin is dead. Long live liberty."—"लेनिन मर गया, स्वाधीनता चिरजीवी हो ।" जब मैलटेस्टाके साथियोने कहा कि लेनिन जैसे महान

व्यक्तिकी मृत्युपर हर्ष प्रकट करना घोर अशिष्टता है तो मैलटेस्टाने उनके उत्तरमे कहा था—

"लेनिन एक जालिम आदमी था और जब कोई जालिम मरता है तो यह बिलकुल स्वाभाविक बात है कि वे लोग, जिनके मित्रो और घनिष्टतम बन्धुओपर उसने जुल्म किया है, अथवा गोलीसे उडवा दिया है, खुशी मनावे। यह दूसरी बात है कि अपने जीवनके प्रारम्भमें वह जालिम सच्चा क्रान्तिकारी रहा हो और इस कारण जनताके प्रेम तथा श्रद्धाका पात्र होनेपर भी मै लेनिनकी ईमानदारी और सचाईपर अविश्वास नही करता; पर कोरमकोर सचाई तथा ईमानदारीके बल-बूतेपर कोई अपराधी इतिहासकी अदालतके सामने निरपराध कहकर बरी नही किया जा सकता!"

× × ×

आज ८० वर्षकी उम्रमे मैलटेस्टा मिस्त्रीका काम करते हुए अपनी जिन्दगी बसर कर रहे है। खुफिया पुलिस बराबर उनके पीछे रहती है। उनसे मिलनेवालोपर मुसोलिनीकी सरकारकी कडी निगाह रहती है। वैसे डरके मारे उनसे मिलनेवाले भी मिलने नही जाते—कौन बैठे-बैठाये मुसोलिनीकी निरकुश सरकार द्वारा निर्वासित होना चाहेगा?—और स्वय मैलटेस्टा भी अपनी गलीके बाहर नही निकलते। हाँ, कभी-कभी पुलिसको चकमा देकर अपने अराजकवादी सिद्धान्तोके पक्षमें एकाध पेम्फलेट जरूर छपा डालते है!

दुनिया सफलताकी पुजारी है, चाहे वह सफलता घोर-से-घोर अत्याचारो द्वारा प्राप्त हुई हो, मसलन वह मुसोलिनी-जैसे दम्भी नटोके सामने दण्डवत् करनेको सदा उद्यत है, पर असफल आदमी उसके लिए सदा ही उपेक्षणीय और घृणाके पात्र होते हैं। लोग अपने सामनेकी चीज ही देखते है, दूरकी वस्तु देखनेके लिए जिस दूरदर्शिताकी आवश्यकता होती है, वह उनमे प्राय: नही पाई जाती। इसीलिए क्रोपाटकिन और

मैलटेस्टा-जैसे कार्यकर्ता जनतामे उचित सम्मान नही पाते। यद्यपि मैलटेस्टा असफल हुए; पर उनकी असफलता निरंकुश अत्याचारियोंकी सैकडो सफलताओसे कही अधिक महत्त्वपूर्ण है।

मैलटेस्टाका जीवन त्याग और तपका जीवन है। उनके सिद्धान्तोमें भले कोई विश्वास न करे; पर उनकी ६० वर्षकी कठोर साधनाके सम्मुख, 'स्वाधीनता, न्याय और प्रेम'के सिद्धान्तोके लिए उन्होने जो तप किया है, उसके सामने किसका मस्तक न झुकेगा ? मार्क्सके अनुयायी साम्यवादी भले ही मैलटेस्टा-जैसे आदमियोको स्वप्नदर्शी बतलाकर उनकी खिल्ली उडावे, पर कौन कह सकता है कि आजका स्वप्न कभी कार्यरूपमे परिणत न होगा ?*

अप्रेल, १९४०]

---

*इस लेखकी सामग्री 'Rebels and Renegades' नामक अंगरेजी पुस्तकसे ली गई है। —लेखक

: ४ :

लुई माइकेल

"ऐसा मालूम होता है कि स्वाधीनताके लिए तडपनेवाले हृदयोको केवल एक ही अधिकार मिलता है, यानी गोलीकी शक्लमें शीशेका टुकड़ा ! यदि यह बात सच है तो मैं अपने अधिकार चाहती हूँ। अगर तुम मुझे जिन्दा छोड़ दोगे तो मैं जनताके सामने चिल्ला-चिल्लाकर इस बातकी घोषणा करती रहूँगी कि तुम लोगोसे जरूर बदला लिया जाय, हाँ, तुमसे, जिन्होंने हमारे भाइयोका खून किया है अगर तुम कायर नहीं हो तो मुझे मृत्यु-दण्ड दो।"

जब गम्भीर वाणीमे अराजकवादी फरासीसी महिला लुई माइकेलने, जिसपर सरकारके विरुद्ध क्रान्तिमें शामिल होनेका अभियोग चल रहा था, जजोके सामने यह ललकार और फटकार दी तो सारी कचहरीमें सन्नाटा छा गया। न्यायाधीश बगलें झाँकने लगे। लुई माइकेलने कहा—"इस मुकद्दमेमे अपने पक्षमें मैं कुछ भी नही कहना चाहती और न मैं यह ही चाहती हूँ कि मेरी ओरसे कोई पैरवी करे। मैं पूर्णतया क्रान्तिके पक्षमें हूँ और जो-कुछ भी मैंने किया है, उसकी पूरी-पूरी जिम्मेवरी अपने ऊपर लेती हूँ। अपने उत्तरदायित्वको मैं विना किसी लगालेसीके मजूर करती हूँ।"

जज लोग सचमुच नामर्द निकले और जनताके आन्दोलनके डरके मारे उन्होने इस वीर महिलाको मृत्युदण्ड न देकर केवल देश-निकाले तथा लम्बे कारावासकी सजा दे दी। न्यू केलेडोनिया, जहाँ फ्रांसके निर्वासित कैदी रखे जाते थे, वास्तवमें नरकके समान थी। जब लुई माइकेलसे पूछा गया, "आप अपील करेंगी ?" उसने कहा, "हर्गिज़

नही; पर इस निर्वासनकी बनिस्वत तो मुझे मौतकी सजा ज्यादा पसन्द आती। मुझे इस बातका बडा दुख है कि औरत होनेके कारण मेरी जान बख्श दी गई है।"

लुई माइकेलको न्यू केलेडोनियामें आठ वर्ष तक किन-किन घोर यातनाओको सहन करना पडा, उनका वर्णन यहाँ नही किया जा सकता। ससारके इतिहासमे अनेक क्रान्तिकारिणी महिलाएँ हुई है, पर लेखिनी, वाणी और बन्दूक तीनो शस्त्रोका बखूबी प्रयोग करनेवाली लुई माइकेल-जैसी वीर क्षत्राणी कम ही हुई होगी। ऐसे अवसरपर जबकि हमारे देशकी अनेक महिलाएँ देश-सेवाकी दीक्षा ले चुकी है और वे आगे बढकर स्वाधीनता-सग्राममे भाग ले रही है, लुई माइकेलका जीवन-चरित उनके लिए एक खास महत्त्व रखता है।

लुई माइकेलका जन्म २९ मई, सन् १८३० को व्रानकोर्ट नामक ग्राममें हुआ था। उसकी माँ किसान-घरानेकी थी और एक उच्च फ़रासीसी वकीलकी कोठीपर नौकरानीका काम करती थी। वकील साहबके सपूतका सम्बन्ध उस दासीसे हो गया और इस प्रकार लुई माइकेलका जन्म हुआ। पिताजी तो इस जारज सन्तानको छोडकर खेती-बारी करनेके लिए अन्यत्र चले गए और बाबाने, जिनका नाम ऐटिनी चार्ली डेहमिस था, इस प्रतिभाशाली पौत्रीका लालन-पालन किया। बूढे वकील साहब बुद्धिवादी, मानव-समाजके सहृदय प्रेमी और मानवाधिकारोमे दृढ विश्वास रखनेवाले थे। उन्होने लुई माइकेलके पालन-पोषणमें किसी प्रकारका भेद-भाव नही किया।

पितामह डेहमिस साहबको यह जाननेमे देर न लगी कि उनकी पौत्री एक असाधारण बालिका है। जब वह छ-सात वर्षकी ही थी तभीसे कविता करनेका उसे शौक हो गया था और १० वर्षकी उम्रमे उसकी आकाक्षा 'विश्वका इतिहास' लिखनेकी हुई थी! उस इतिहासका नाम उस महत्त्वाकाक्षी बालिकाने रखा था—Un Historie Universelle.

ज्य पितामहने सन् १७८९की फ्रान्सकी राज्यक्रान्तिमे भाग लिया था और उसकी कहानियाँ वे अपनी पोतीको सुनाया करते थे। इन कहानियोको सुनकर लुई चकित रह जाती थी और स्वय उसके मस्तिष्कमे क्रान्तिकी भावना जागृत हो जाती थी। वह अपनी सखी-सहेलियोके साथ क्रान्तिके ही खेल खेला करती थी। अक्सर वे घरके वाहरी चौकमे लकडियोका ढेर इकट्ठा करती और उसपर वैठकर यह कल्पना करती कि अपने क्रान्तिकारी उद्देश्यके लिए हम जीती-जागती चितापर जलाई जा रही है। जिस समय इस कल्पित आगकी कल्पित लपटे ऊपर उठती, उस समय लुई अपनी सहेलियोके साथ क्रान्तिकारी गाने गाती। लुई लिखती है—

"एक दिन ऐसा हुआ कि जव हम कल्पित फाँसीके तख्तेपर गा-गाकर चढ ही रही थी कि मेरे पितामह आ पहुँचे। उन्होने कहा—'देखो वेटियो, फाँसीके तख्तेपर विलकुल चुपचाप शान्तिपूर्वक और गम्भीरताके साथ चढना चाहिए।' हमने वैसा ही किया और जव हम उन लकडियोके ढेरपर खडी हो गई तव पितामहने फिर कहा—'अव एक वार तुम इस तख्तेसे उन उद्देश्योकी घोपणा करो, जिनके लिए तुम्हे फाँसी हो रही है।' इसके वाद जव कभी हमने फाँसीका खेल खेला तव पूज्य पितामहके आज्ञानुसार अपने उद्देश्योकी घोषणा अवश्य की।"

वाल्यावस्थाके इन सस्कारोने लुईके रोम-रोममे घर कर लिया और उन्हीके कारण आगे चलकर लुई वडी मर्दानगीके साथ युद्ध-क्षेत्रमे लडी। अपने ४१वे वर्षमे १८ मार्च सन् १८७१के दिन उसने जो-कुछ किया, उसका वृतान्त उसीके शब्दोमें सुन लीजिए—

"उष काल था, झुटपुटेका वक्त। खतरेका विगुल वजा। वर्छी-भाले लेकर हम सव तैयार हो गये। अव समरमे जूझनेका वक्त आ पहुँचा था। स्वाधीनताकी वेदीपर अपनेको वलिदान करनेके लिए हम सव उद्यत थे। उत्साह और उमगका ठिकाना न था। हमारे पैर

जमीनपर लगते ही न थे।.. इतनेमे देखती क्या हूँ कि मेरी पूज्य माताजी मेरी बगलमे आकर खडी है! उनके लिए मेरे हृदयमें अत्यन्त चिन्ता उत्पन्न हो गई। माताजीको मेरी बडी फिक्र थी और वे तलाश करती-करती यहाँ फौजी डेरे तक आ पहुँची थी! ज्योही सरकारी फौजके जनरलने हुक्म दिया—'गद्दारोपर गोली चलाओ,' त्योही गवर्नमेंटी सेनाके ही एक अफसरने सिपाहियोको भडकाते हुए कहा—"सिपाहियो, विद्रोहका झडा ऊँचा कर दो, क्रान्तिका आरम्भ हो गया था।"

सरकार तथा जनताके इस घोर युद्धमे लुईने सक्रिय भाग लिया। वह पूर्णतया शान्त थी। इस युद्धका वर्णन करते हुए उसने लिखा है—

"जब कोई मनुष्य पहले-पहल अपने उद्देश्यके लिए शस्त्र हाथमें लेकर लडने लगता है तब युद्धका वास्तविक रूप इस तेजीके साथ उसकी आँखोके सामने आ जाता है कि वह स्वय मानो बन्दूकसे निकली हुई गोली बन जाता है।"

इन दिनोमें लुईको कई रात तक सोना नसीब न हुआ। जहाँ जिसको जगह मिल जाती, वही वह पड रहता। स्वाधीनताके उपासकोने उसकी बलिवेदीपर अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया था।

यद्यपि विद्रोहियोकी पराजय हुई और सरकारी फौजने निष्ठुरता-पूर्वक २५ हजार पुरुषो, स्त्रियो तथा बच्चोको तलवारके घाट उतार दिया, तथापि लुई निर्भयतापूर्वक अन्त तक डटी रही। अगर वह चाहती, तो युद्ध-क्षेत्रसे हटकर अपनी रक्षा कर सकती थी, पर लुईके दिलमे इस बातकी कल्पना ही नही आई थी। माण्टमार्टी तथा चौसीके मोर्चोंपर, जो सबसे अन्तिम थे, लुई बराबर विद्रोही भाइयोके साथ थी।

एक गलीके भयकर घमासान युद्धमे उसे धक्का लगा और वह जमीनपर गिर पडी, पर हिम्मत करके वह उठ बैठी और उसकी जान बाल-बाल बच गई। अब भी वह भाग सकती थी, पर वह जानती थी कि मेरे लापता हो जानेसे सरकार मेरी निरपराध माताको कैद कर लेगी और उस बुढिया-

को व्यर्थ ही कष्ट देगी। उसका अनुमान गलत न निकला। सरकारने ऐसा ही किया और माताके प्रेममे विह्वल लुईने उसे कष्टोसे बचानेके लिए आत्म-समर्पण कर दिया। माँ छोड दी गई। लुईपर मुकद्दमा चलाया गया और उसीके परिणामस्वरूप उसे निर्वासनका दण्ड मिला। इस लेखके प्रारम्भमे लुईके वे अमर शब्द उद्धृत किये गए हैं, जो मुकद्दमेके अन्तमे लुईने कहे थे। इसी अभियोगके कारण लुईको आठ वर्ष तक न्यू केलेडोनियाके कारावासमें नरक-यातनाएँ भोगनी पडी थी।

बालिका लुईकी बुद्धि बडी तीक्ष्ण थी। वह अपने बाबासे सवाल-पर-सवाल करती जाती थी और वे भी बड़े धैर्यके साथ उनका उत्तर देते रहते थे। कितने ही ग्रन्थोको बाबा अपनी पोतीके साथ-साथ पढते थे। कठिन शब्दो तथा वाक्योका अर्थ उसे बताते जाते थे। बाबाने उसे गान-विद्याका भी अभ्यास कराया था और जिस दिन लुई एक पुरानी लकडीपर किसी टूटे हुए सितारके तार लगाकर सारगी बना लाई थी, उस दिन बाबाको हार्दिक हर्ष हुआ था। बाल्यावस्थासे ही उसे राजनैतिक विषयोसे प्रेम हो गया था, वह सुप्रसिद्ध फरासीसी लेखक विक्टर ह्यूगोकी भक्त बन गई और अपनी कविताएँ संशोधनार्थ उन्हीके पास भेज दिया करती थी। ह्यूगोने उसे कविता लिखते रहनेके लिए प्रोत्साहित किया था। लुईका घरपर बैठे-बैठे मन नही लगता था और वह आसपासके ग्रामोकी ओर टहलती हुई दूर तक निकल जाती थी। बालिका लुईके हृदयमें देश-विदेश घूमनेकी भी प्रबल लालसा थी—खास तौरपर समुद्र-यात्राके लिए वह लालयित रहती थी। विधिकी विडम्बना देखिये, पहली बार उसे समुद्र-यात्राका अवसर मिला अपने ४१वे वर्षमे और वह तब, जब उसे देशनिकालेका दण्ड दिया गया था और वह न्यू केलेडोनियाके कालेपानीको भेज दी गई थी।

जब लुई १६-१७ वर्षकी थी, उसके पिता लारेण्ट डेहमिस अपने ग्राम-को लौट आये और साथमे अपनी उच्च घरानेकी पत्नीको भी लेते आए। इन सौतेली माँने आते ही लुईको उसके जन्मका किस्सा वतलाना शुरू कर दिया, जिसका भावार्थ स्पष्ट शब्दोमें यह था—"तू दासी-पुत्री है, जारज सन्तान है, होशमे रह, अपनी माताके नीच कुलकी याद मत भूल!" यही नही, इन देवीजीने लुईकी माताको नौकरोकी कोठरियोमें जाकर रहनेका भी आदेश दे दिया! नतीजा यह हुआ कि लुई अपनी मातासे और भी अधिक प्रेम करने लगी। लुईका मातृ-प्रेम उसकी जीवनीका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अध्याय है। युद्ध-क्षेत्रमें, कालेपानीमे या जेलमे—जहाँ कही भी लुईको रहना पड़ा, सबसे अधिक उसे अपनी पूज्य माताकी ही चिन्ता रही।

जब लुईके पिता लारेण्टने देखा कि स्वाभिमानिनी लुई उनकी वदमिज़ाज पत्नीके व्यंग्योको सहन नही कर सकती तो उन्होंने लुईको चौमण्ट नामक स्थानपर अध्यापिकाका काम सीखनेके लिए भेज दिया। वहाँपर उसने सब परीक्षाएँ वड़ी योग्यतापूर्वक पास कर लीं और अपने ग्रामके निकट ही एक स्कूलमे मास्टरनीका काम स्वीकार कर लिया, जिससे वह अपनी माताकी देखभाल कर सके। उन दिनो वह समाचारपत्रोंमे लेख इत्यादि लिखा करती थी। एक वार तो वह अपने लेखके कारण पुलिसके पजेमें आते-आते वच गई!

यद्यपि पेरिसमे लुईको अध्यापिका-कक्षामे पढने, प्राइवेट टयूशन करने, राजनैतिक प्रश्नोको सिद्धान्त तथा व्यवहारकी दृष्टिसे अध्ययन करने, क्रान्तिकारी क्लवोमे जाने तथा वैज्ञानिक ग्रन्थोंके स्वाध्यायसे इतना अवकाश नही मिल पाता था कि वह विधिवत् ग्रन्थ-रचनाका काम कर सकती, तथापि अपने असाधारण परिश्रमसे उसने अनेक उपन्यास लिख डाले और कितनी ही कविताएँ भी लिख ली। वह 'कला कलाके लिए' इस सिद्धान्तकी घोर विरोधी थी। उसका कहना था कि

गल्पो तथा उपन्यासोका भी ध्येय क्रान्तिकारी होना चाहिए। उसने लिखा था—"Every artist must have a social mission, and every work of art must reflect political action." अर्थात्—'प्रत्येक कलाकारके जीवनका उद्देश्य कोई सामाजिक उद्धार होना चाहिए और प्रत्येक कलापूर्ण रचनाके विचार-सम्बन्धी धरातलपर राजनैतिक कार्यका प्रतिबिम्ब पडना चाहिए।' लुई बडी जोशीली वक्ता भी थी। उसके व्याख्यानोको सुननेके लिए सहस्रोकी भीड इकट्ठी हो जाती थी। इस प्रकार क्या लेखिनीसे, क्या वाणीसे और क्या बर्छी और बन्दूकसे, लुई अपने सिद्धान्तोकी रक्षाके लिए युद्ध करनेको सदैव उद्यत रहती थी।

× × ×

"डाक्टर साहब ! बरायमहरबानी आप इस बातको याद रखिये कि मै कोई औरत नही, बल्कि योद्धा हूँ।" ये शब्द लुई माइकेलने अपने सर्जनसे कहे थे, जो उनके घावकी मरहम-पट्टी करने आया था। बात यह हुई थी कि किसी पगले आदमीने साम्यवादियोकी मीटिंगमे उसपर तमचा दाग दिया था, जिससे कानके पास उसके जबरदस्त घाव हो गया था।

लुई शकलमे मर्दानी थी। छरहरे बदनकी, और जिस समय वह तनकर खडी होती थी, ऐसा प्रतीत होता था कि कोई पुरुष योद्धा खडा हुआ है ! वह सदा काले रगके कपडे पहना करती थी। चलते समय ऐसा प्रतीत होता था कि मानो गम्भीरता तथा विद्रोहकी कोई मूर्ति चली जा रही हो। दरअसल उसमे पौरुष था। इस प्रसगमे एक घटनाका उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। एक रातकी बात है। पेरिसकी गलीमे लुई चली जा रही थी कि किसी मनचले गुण्डेको उससे छेडछाड़ करनेकी सूझी। वह पीछे हो लिया। ज्योही लुईने देखा कि कोई धूर्त मेरा पीछा कर रहा है, वह मुडी और उसने मर्दानी आवाजमे उसे ऐसी

गालियाँ सुनाई कि हज़रतके होश फाख़्ता हो गए और यह समझकर कि यह तो कोई मर्द जनानी पोशाकमे चला जा रहा है, वे उल्टे पाँव वहाँसे भाग गये ! ७०वे वर्षमे लुईका जो चित्र खीचा गया था, उसे देखकर यही प्रतीत होता है कि यह किसी पुरुष योद्धाकी तसवीर है।

लुई स्वभावत कवियित्री थी। उसके हृदयमे सौन्दर्यके प्रति उत्कट प्रेम था और शायद उसके कवित्वका ही यह परिणाम था कि उसका हृदय वज्रसे भी कठोर होनेके साथ-साथ मक्खनसे भी अधिक कोमल था। इसका एक दृष्टान्त सुन लीजिए। जब विद्रोहके दिनोमें चारो ओर भयकर गोलाबारी हो रही थी, किसी गलीमे बिल्लीका एक बच्चा जाता हुआ दीख पडा। लुई उस वक्त एक सुरक्षित स्थानमे छिपी हुई थी। वह बिना इस बातका खयाल किए कि सड़कपर जानेसे उसके गोली लग सकती है, अपनी जगहसे निकल पडी और उस बिल्लीके बच्चेको उठा लाई ! उसके साथी-सगियोने इस पागलपनके लिए उसे बहुत फटकारा, पर लुई अपनी आदतसे लाचार थी। अत्याचार-पीड़ितोके प्रति उसके हृदयमे एक स्वाभाविक आकर्षण था। जब वह पशुओपर हृदयहीन पुरुषोका जुल्म देखती तो उसका विद्रोही मन खौलने लगता। वह कहती थी, "क्या ही अच्छा हो, यदि जानवरोमे अत्याचारी मनुष्योंसे बदला लेनेकी शक्ति आ जाय ! कुत्ता उस बेरहम आदमीको, जो उसे निर्दयतयापूर्वक पीटता है, भकभकाकर काट खाये और घोड़ा उस जगली नर-पशुको, जो उसपर सवार होकर कोडे चला रहा है, उलटकर दबोच दे !"

अपने जीवनके अन्तिम दिनोमे जब लुई कुछ दिनोके लिए इग्लैण्डमे आकर रही थी तब उस बुढियाके घरपर मरघिल्ले पिल्ले और बिल्लियाँ और चिडियाँ भी पाई जाती थी ! लुईका मातृवत् कोमल हृदय किसी प्राणीके कष्टको सहन नही कर सकता था। दूसरी ओर समाजके शत्रुओके प्रति वह कठोर-से-कठोर वर्ताव कर सकती थी।

बात दरअसल यह थी कि लुईमें देवत्व और दानवत्व दोनो प्रबल मात्रामें पाये जाते थे। वह देवी भी थी, दानवी भी। लुईकी हिंसात्मक वृत्तिको हम अपने देशकी वर्तमान परिस्थितिमें अनुकरणीय नही समझते, क्योकि उससे लाभ कम होगा, हानि बहुत ज्यादा, पर उसके हृदयकी ज्वालाके हम कायल है। जब लुईसे किसीने पूछा, आप किस पार्टीकी है तो उसने उत्तर दिया—

"किस पार्टीकी? हम सब एक ही शत्रुसे लड रहे है, हमारे दुश्मन एक ही है, मै तो इतना ही जानती हूँ। पार्टी-भेदोकी मुझे कोई पर्वाह नही, क्योकि मै तो उन सभी दलोके साथ हूँ, जो भिन्न-भिन्न अस्त्रोसे समाजके वर्तमान भवनको ढानेके प्रयत्नमे लगे हुए है, चाहे उनके हथियार फावडे हो, बम हो या आग।"

यहाँ लुईका दानवी रूप ही बोल रहा है। 'बम और आग' कम-से-कम हमारे देशके लिए तो हानिकारक ही साबित होगे।

वस्तुत सामाजिक विषमताने लुईके मस्तिष्ककी तराजूको उलट दिया था। विवेकका स्थान क्रोधने ले लिया था और इस क्रोधने ही उसे चण्डीका रूप दे दिया था।

२६ वर्षकी उम्रमें (सन् १८५६मे) उसे पेरिसकी एक कन्या पाठशालामे नौकरी मिल गई। वहाँ उसे जो वेतन मिलता था, वह बहुत ही कम था। यद्यपि उसके बाबाने मरते समय उसके लिए घरपर कुछ रुपया इसलिए छोड दिया था कि जब लुई ग्राममें आकर विवाह करे तब उसे वह दिया जाय, पर लुई तो क्रान्तिकारी आदर्शोसे विवाह कर चुकी थी। जो कुछ वह अपने प्रबल परिश्रमसे कमा लेती, उसीसे अपनी तथा अपनी माँकी गुजर करती थी।

पेरिसके जीवनने अध्यापिका लुईके हृदयमे विचारोका सघर्ष उपस्थित कर दिया था। एक ओर लखपतियो-करोडपतियोके आलीशान महल थे तो दूसरी ओर गरीबोकी झोपडियाँ। अमीरोके घरोमे चरित्रहीनताका

साम्राज्य था। उनके जीवनका आदर्श था 'खाओ पीओ, मौज करो।' सट्टेबाजीका बोलबाला था। सेठ-साहूकार समाजके नेता बन बैठे थे। गरज़ यह कि पूंजीवाद अपना विकसित और विकराल रूप दिखला रहा था। पहले तो यह दृश्य देखकर लुईके मनमे बड़ी झुँझलाहट आई। फिर उसने इस सामाजिक विषमताका विश्लेषण शुरू कर दिया। उन दिनो पेरिसमे ऐसी भावुक औरते बहुत-सी पाई जाती थी, जो 'क्रान्ति-क्रान्ति' चिल्लाती तो थी, पर जिनके दिमागमे कोमलताके साथ-साथ उलझे हुए विचारोका कूडा-करकट काफी मात्रामें मौजूद था। लुई ऐसी महिलाओके सम्पर्कसे अपनेको दूर ही रखना चाहती थी। उसने रसायन शास्त्र तथा भौतिक विज्ञानका अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। इन्ही दिनो लुई प्राय रिपब्लिकन क्लबोमे भी जाया करती थी। जब कार्ल मार्क्सने अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर-सघकी स्थापना की थी तो इस समाचारसे लुईको अत्यन्त हर्ष हुआ था। इन तमाम कार्योमे व्यस्त रहनेपर भी लुईने साहित्य-सेवाको भुलाया नही था और उन्ही दिनोमें, जैसा कि हम पहले कह चुके है, उसने अनेक कविताएँ तथा उपन्यास रचे थे।

पर बीच-बीचमे उसे अपने साहित्यिक कार्योको ताकमें रख देना पडता था। एक बार जब पेरिसके प्रजातन्त्रवादियोने होटल डी विले (Hotel de ville)पर चढाई करनेकी ठानी थी तो लुई भी कहीसे पैदल सवारोकी पोशाक माँग लाई थी और भीडके साथ बराबर निश्चित स्थान तक गई थी। लुई एक पुराना रिवाल्वर अपने पास रखती थी और कई बार उसने इस तमचेकी धमकीसे पुलिसवालोको अपने कमरेमे आनेसे रोका था। जब पेरिस दो महीनेके लिए क्रान्तिकारी सघ (Commune) के शासनके अधीन रहा था तब लुई उसके प्रधान कार्यकर्ताओमे थी और निरन्तर सिपाहीकी हैसियतसे मुस्तैदीके साथ काम करती रही। सघके पराजय और क्रान्तिकी विफलताके बाद उसे देशनिकालेका जो दण्ड मिला, उसका जिक्र हम प्रारम्भमे ही कर चुके है।

न्यू केलेडोनियाकी जेलमे लुईको देशनिकालेके आठ वर्ष बिताने पड़े। वहाँ रहते हुए वह शासनमात्रसे घृणा करने लगी और उसके हृदयमे माइकेल बाकूनिन तथा प्रिंस क्रोपाटकिनके अराजकवादके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई। आठ वर्ष बाद जब उसे फिर स्वाधीनता मिली, तो उसने फिर क्रान्तिकारी कार्य शुरू कर दिया। फ्रास-भरमे घूम-घूमकर मीटिंग करना और मजदूरोका सगठन करना उसका काम था। उसमें गजबकी भाषणशक्ति थी। क्या मजाल कि कोई उसे व्याख्यानके बीचमें टोक दे। टोकनेवाला करारा ज़वाब पाकर चुप ही जाता था। उसके मारे फ्रेंच सरकारके अधिकारियोकी नाको दम था। जो मनुष्य अपनी जानको हथेलीपर लिए घूमता हो, उससे सरकारोका डरना स्वाभाविक ही है। सन् १८८२मे एक क्रान्तिकारीकी वर्षगाँठके उत्सवमे भाग लेनेके कारण उसे दो महीने जेलमे रहना पडा। सन् १८८३मे पेरिसमे जब भूखे लोगोकी भीड बाजारमे मार्च करती हुई निकली तो लुई माइकेल उनके साथ थी। इस भीडने रोटियोकी कितनी ही दूकाने लूट ली थी। फिर क्या था, पुलिसने लुईको पकडकर उसपर अभियोग चला दिया और छ वर्षकी जेल कर दी! मुकद्दमेके दौरानमे लुईने कहा—

"यद्यपि दूकानोको लूटनेकी प्रेरणा भीडको खुफिया पुलिसके आदमियोने दी थी, फिर भी मेरी समझमे भूखे आदमियोका यह हक है कि वे जहाँ रोटी मिले, वहाँसे ले ले।" जजोने अन्यायपूर्वक लुईको कठोरतम दण्ड दिया। इन ६ वर्षोंमे उसने जेलमे निरक्षरोको पढाया और जेलियोंके लिए कपडे भी सिये। उसकी कठोर उँगलियाँ जितनी खूबीके साथ बन्दूक पकड सकती थी, उतनी ही योग्यतापूर्वक कपडे भी सी सकती थी!

इसी बीचमे सन् १८८५मे लुईकी माताका स्वर्गवास हो गया। यह उसके जीवनकी सबसे बडी दुर्घटना थी। लुईने लिखा था—"अब मेरे घरेलू जीवनका खातमा ही हो गया। क्रान्तिके सिवाय दुनियामे

और कोई चीज नही, जिसके लिए मै जिन्दा रहूँ। मेरा भविष्य भी समाप्त हो चुका और अब भूतकालकी बातोको याद करके मै जीवित नही रहना चाहती।"

जेलखानेके गवर्नरने रहम खाकर १४ जुलाई सन् १८८५को, जब दूसरे कैदियोको सरकारकी ओरसे मुक्ति मिली थी लुई माइकेलको भी छोडना चाहा, पर लुईने छूटनेसे इन्कार कर दिया। जब मुक्तिका समाचार लेकर जेलखानेका आदमी उसके पास पहुँचा तो उसने कहा—"उन आदमियोसे, जो इस समय मेरे देशका शासन कर रहे है, मै कोई रियायत नही चाहती।"

जेलके गवर्नर साहबका खयाल था कि अब लुई ५५ वर्षकी बुढिया हो चुकी है और मॉकी मृत्युसे यह इतनी निराश और निरन्तर जेल-निवास-से इतनी निर्बल हो गई है कि सरकारको भविष्यमे इससे कुछ खतरा नही हो सकता, पर गवर्नर साहब भ्रममे थे। लुईके हृदयमे अब भी वही आग सुलग रही थी। उसने लिखा था—

"मै यह नही चाहती कि मेरी पूज्य माताके मुर्दे शरीरपर रहम खाकर अधिकारी लोग मुझे क्षमा करे। यह दयाकी भीख मुझे स्वीकार नही।"

उसके चार वर्ष बाद सन् १८८९मे जब लुई अपनी अवधि समाप्त करके छूटी तो फिर उसने तुरन्त कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। जेलसे छूटते ही वह साम्यवादियो और अराजकवादियोकी मीटिंगको चल दी। दो हजार आदमियोकी भीड थी। वहाँ किसी आदमीने, जो खूब शराब पिये हुए था, उसपर गोली दाग दी, जो उसके कानको भयकर रूपसे घायल करती हुई सन्से निकल गई। लुई जानती थी कि इसमे उस बेचारेका दोष न था, क्योकि वह तो किसी दूसरेका उकसाया हुआ था। लुईने उस आदमीके पक्षमे पैरवी की और उसकी दुःखित पत्नीकी सहायता भी की। जजोसे उसने यही निवेदन किया कि मुझपर आक्रमण

करनेवाला यह आदमी निर्बलताका अपराधी है, दुष्टताका नही। उसी वक्त अपने सर्जनसे लुईने कहा था—"डाक्टर साहब, इस बातको न भूलिये कि मै तो योद्धा हूँ, कोई औरत नही, और कृपाकर जजोसे कह दीजिए, मुझे कोई गहरी चोट नही लगी, थोडी-सी खुरसट ही आ गई है।"

इसके दूसरे वर्ष ही, यानी सन् १८९०मे, जब वह ६० वर्षकी थी, लुईने वाइन जिलेके हडतालियोका साथ दिया और फैक्टरियोपर आक्रमण करते हुए वह उनके साथ-साथ रही। जहाँ कही मजदूर-आन्दोलन प्रबल होता, लुई मर्दोके साथ नेतृत्व करती हुई मौजूद रहती। वह लाइन्समे फिर पकड ली गई। यहाँपर हवालातमें उसके साथ घोर अन्याय किया गया। जेलके अधिकारियोने षडयन्त्र करके एक सिपाहीकी मार्फत उस साठ वर्षकी बुढियाको तेज शराब पिला दी। सिपाहीने मुकद्दमा पेश होनेके पहले उसकी कोठरीपर आकर बडे भोले-भाले चहरेसे कहा था—"इस गिलासमे बहुत हल्की-सी शराब है और बस पानी-ही-पानी है। इससे तुम्हारी थकावट दूर हो जायगी।" लुईने विश्वास करके उसे पी लिया। नतीजा यह हुआ कि मुकद्दमेके लिए कचहरीमें आते हुए उसके पैर लडखडाने लगे और मुँहसे आँय-बाँय शब्द निकलने लगे। जजोको मौका मिल गया। वे बोले—"इस बेहूदी गैर-जिम्मेवार औरतको कचहरीसे बाहर निकाल दो।" लुईको पता भी न था कि आखिर मामला क्या है। होश आनेपर भेद खुला। उसी समय इस षडयन्त्रका भी भडा-फोड हुआ कि सरकार उसे डाक्टरसे पागल करार दिलाकर पागलखाने भिजवानेकी सोच रही थी।

उस समय लुईने अल्पकालके लिए हथियार रख दिये और फ्रास छोड़-कर इग्लैण्ड जानेका निश्चय कर लिया। इग्लैण्डमें वह फेबियन सोसाइटी तथा अराजकवादियोकी मीटिंगमें बराबर आया-जाया करती थी।

सन् १८९६ में फिर लुई स्वदेशको लौटी और ९ वर्ष तक फिर अपने

प्रिय क्रान्तिकारी कार्य करती रही। बडे-बडे जवान कार्यकर्ता ६५-६६ वर्षकी उस बुढियाकी शक्तिको देखकर दग रह जाते थे। थकना तो वह जानती ही न थी। अन्तिम दिन तक वह कार्य करती रही। जिस दिन वह बीमार पडी, उसके पहले दिन वह रूसी 'क्रान्ति' पर भाषण दे चुकी थी। ८ या ९ जनवरीको उसने अपने एक सहयोगी वन्धुसे कहा था—"रूसपर नजर रखना। गोर्की और प्रिंस क्रोपाटकिनकी उस मातृभूमिमे अत्यन्त महत्वपूर्ण घटनाएँ घटेगी। मुझे ऐसा दीख रहा है कि रूसमें क्रान्ति होगी, जो ज़ारको निकाल बाहर करेगी और मास्को, पीटर्सबर्ग इत्यादि नगरोमें फौज क्रान्तिकारियोका साथ देगी। मुझे अन्तमे यही कहना है कि किसान-मजदूर इस बातको भलीभाति समझ ले कि अन्यायो से उनका छुटकारा यो ही नही हो जायगा। भीख माँगनेके बजाय उन्हे अपने बलसे अपनी मुक्ति प्राप्त करनी होगी।"

मृत्युके समय लुईके पास कुल जमा पाँच फ्राक थे। उसे निमोनिया हो गया था और ये तीन चार रुपये डाक्टरको आक्सीजन देनेके लिए दे दिये गए। अपरिग्रहके ऐसे दृष्टान्त ससारके इतिहासमें कम ही मिलेगे। लुई जैसे खाली हाथ इस दुनियामे आई थी, वैसे ही खाली हाथ इस ससारसे विदा हो गई। उस दिन सन् १९०५ की १०वी जनवरी थी। लुईने जीवनकी कलाको समझा था। वह क्रान्तिके लिए मरना जानती थी और क्रान्तिके लिए जीना भी, और पहलेकी अपेक्षा दूसरी बात कठिन है। उसके लिए विश्राम नामकी कोई चीज थी ही नही। 'सुख' की परिभाषा उसके शब्दोमे सुन लीजिए—

"सुख किसी दूरस्थ नक्षत्र मडलपर रहनेवाली कल्पना है। इस ससार मे तो 'सुख' प्राप्त नही हो सकता।" पर निरन्तर सघर्षमें जो 'सन्तोष' है, किसीपर शासन न करने और किसीके द्वारा शासित न होनेमें जो 'सजीवता' है और किसी दूरस्थ आदर्शके लिए जीने और मरनेमे जो आनन्द है, उसे लुईने जाना था और खूब जाना था।

अपने मूढ पतियोसे रग-बिरगी साडियो और विभिन्न आभूषणोके लिए लडने-झगडनेवाली महिलाएँ उस 'सन्तोष', उस 'सजीवता' और उस 'आनन्द' को क्या कभी जान सकेगी ?

आलीशान होटलोमे बीस-बीस रुपये रोजके कमरेमें रहकर देशका नेतृत्व करनेवाली महिलाएँ हमने देखी है, शासनकी शौकीन देवियोके भी कारनामे सुने है और तफरीहन कभी-कभी देश-भक्तिके गाने गाने-वाली कोकिलबैनियोके स्वर भी हमारे कानोतक पहुँचे है, थोडे-से त्यागकी पूजीपर देश-भक्तिका व्यापार करनेवाली महिलाओकी भी कमी नही; पर लुई माइकेलकी-सी लगनवाली, ६० वर्ष तक निरन्तर तप और त्याग युद्ध और जेल तथा देश-निकालेसे परिपूर्ण विद्रोही जीवन व्यतीत करने-वाली वीर क्षत्राणी इस देशमे आधुनिक कालमें नही दीख पडी ।*

अप्रैल १९३९]

---

* 'Seven Women Against the World' नामक पुस्तकके आधारपर ।

: ५ :

ऐमा गोल्डमेन

ऐतरेय ब्राह्मणमे एक जगह बडे महत्त्वपूर्ण वाक्य आये है—

'चरैवेति चरैवेति'—'चले चलो, चले चलो।'

'चलनेवालेकी आत्मा फलग्राही होती है और उसके सभी पाप मार्गमें ही नष्ट हो जाते है। चले चलो, चले चलो।'

'सोनेवाला कलियुग है, जगनेवाला द्वापर, उठ खड़े होनेवाला त्रेता और चलते रहनेवाला सत्ययुग होता है—चले चलो, चले चलो।'

किसी भी प्रगतिशील व्यक्तिके लिए ये शब्द 'मोटो' (आदर्श-वाक्य) का काम दे सकते है। अभी उस दिन अराजकवादी महिला ऐमा गोल्डमेनका आत्म-चरित पढते हुए हमें ऐतरेय ब्राह्मणके ये शब्द याद आ गये। अराजकवादकी सारी खूबी उसकी निरन्तर प्रगतिशीलतामें है, पर जो लोग दूसरोपर शासन करनेकी महत्त्वाकाक्षा रखते है, वे तो जमकर बैठ जाते है और उन्हे 'स्थायी' समझना चाहिए, बल्कि प्रतिक्रियावादी।

यदि आपको प्रगतिशीलताके सजीव उदाहरण देखने हो तो आप महाप्राण बाकूनिनका जीवन-चरित पढिये, जिनकी सारी जिन्दगी भिन्न-भिन्न सरकारोसे सघर्ष करते हुए बीती और जेलखाने, देशनिकाले तथा फाँसीके दण्ड जिसे अपने पथसे विचलित न कर सके। प्रिंस क्रोपाटकिनके चरित्रमे भी आप वही निराली आन-बान-शान पायेगे। ४२ वर्ष तक विदेशमे अपनी मातृभूमिकी स्वाधीनताके लिए घोर तप और अनुपम

त्यागका जीवन व्यतीत करनेके बाद जब वे अपने देशको लौटे तो स्वय स्वदेशी सरकारके सामने भी हाथ पसारना, उससे किसी प्रकारकी रियायत लेना, उन्होने अस्वीकार कर दिया। लेनिनकी सरकार उनकी पुस्तकोके अधिकार २॥ लाख रूबलमे खरीदना चाहती थी, पर वे अपने सिद्धान्तोपर अटल रहे, और उन्होने यह रकम अस्वीकार करके वृद्धावस्थामे भोजनतकका कष्ट उठाना मजूर किया ! दिनभर लन्दनमे शर्बत बेचकर शामको इटैलियन पत्रोके लिए जोरदार लेख लिखनेवाले अराजकवादी मैलटेस्टाका वृत्तान्त इसी पुस्तकमे अन्यत्र दे दिया गया है और क्रान्तिकारी लुई माइकेलकी रामकहानी भी इसी ग्रन्थमे प्रकाशित है। आज ऐमा गोल्डमेनकी कथा सुन लीजिए।

ऐमा गोल्डमेनका जन्म सन् १८६९ में रूसमे हुआ था और शायद वे अभी जीवित है। १९३४ मे उन्होने लिखा था—"दुनिया जिसे सफलता कहती है—यानी धन-सग्रह, उच्च पद-प्राप्ति अथवा समाजमे गौरवमय स्थान पाना—उसे मै घोर असफलता मानती हूँ। मैंने हमेशा इस बातकी कोशिश की है कि मै निरन्तर प्रगतिशील बनी रहूँ और कभी आत्म-सन्तोष के चक्करमे पडकर पत्थरकी तरह ठोस न बन जाऊँ। अगर मुझे फिर दूसरी बार जीवन व्यतीत करनेका मौका मिले तो दो-चार छोटी-मोटी बातोमे भले ही परिवर्तन कर दूं, परतु जीवनके महत्वपूर्ण कार्योंमे मै अपने पिछले जीवनको दुहराना ही पसन्द करूँगी। अवश्यमेव मै अराजकवादके प्रचारके लिए उसी धुन, उसी लगनसे कार्य करूँगी और अराजकवादकी अन्तिम सफलताके विषयमे मेरा विश्वास भी उतना ही दृढ रहेगा।"

जिस दिन हमने ऐमा गोल्डमेनका एक हजार पृष्ठका आत्म-चरित समाप्त किया, उस दिन मनमे नाना प्रकारके विचार उठते रहे। खयाल आया कि हमने किताब पढी है या सिनेमा देखा है ! जिन्दगीके सच्चे

नाटक कल्पित नाटकोसे कही अधिक मनोरजक तथा हृदयवेधक होते हैं, और ऐमा गोल्डमेनकी जिन्दगी भी क्या गजबकी चीज़ है ।

× × ×

'ताड, ताड, ताड' ११-१२ वर्षकी लड़कीकी पीठपर कोडे पड रहे हैं । लडकीका छोटा भाई आकर अपने पिताकी पिडुरीमे काट खाता है । वडी वहन आकर पिताजीसे उसे बचाती है, अपने छोटे-से कमरेपर ले जाती है, पीठकी सिकाई करती है और उसे छातीसे लगा लेती है । दोनो बहने मिलके रोती है, दोनोके आँसू मिल जाते है । पिताजी कह रहे है, "मैं इस मुडीको मार डालूंगा, छोडूंगा नही । यह मेरा कहना क्यो नही मानती ?"

यह है हमारी चरित्-नायिका ऐमा गोल्डमेनकी बाल्यावस्थाका एक दृश्य । पिताजी प्राय. कहते थे, "मैं नही चाहता था कि मेरे यह लडकी हो । मैं तो इसके बजाय लडका चाहता था, पर इस सुअरनी (पत्नी) ने लडकी ही जन कर दी ।"

× × ×

"लो, यह पानी भरा हुआ ग्लास लो और इसे लेकर उस कोने तक जाओ और उल्टे पाँव लौटो । खबरदार, एक बूंद पानी अगर छलका तो खाल उधेड दूंगा ।"

वह देखिए, निर्दय पिताकी आज्ञासे ऐमा यह कठिन कार्य कर रही है और उसके बाद मानसिक श्रमके कारण घटोतक पडी-पड़ी छटपटा रही है । सुनिए । वह गरीव बेचारी क्या कह रही है—"अगर मैं वहुत बीमार पड जाऊँ, मरनेके करीब हो जाऊँ तो शायद पिताजीका दिल पिघल जाय और वे मुझे प्यार करने लगे ।"

सन् १८८५

आज १६ वर्षकी ऐमा अपने माता-पिताको और अपने देश रूसको छोड़कर अपनी वहन हेलेनाके साथ अमरीकाको जा रही है । एक वहन

वहाँ पहलेसे पहुँच चुकी है। रोचेस्टरमे दर्जिनका काम करते हुए उसे देखिए। साढे दस घंटे परिश्रम करनेके बाद एक रुपया मिलेगा, जो अमरीकामे गुजर करनेके लिए बहुत कम है।

× × ×

फरवरी १८८७ की एक रात है। ऐमाका विवाह जेकब कार्शनरके साथ हो चुका है।

"My feverish excitement of that day, my suspense and ardent anticipation gave way at night to a feeling of utter bewilderment. Jacob lay trembling near me; he was impotent."

अर्थात्—"दिन-भर एक अजीब तरहकी बुखारकी-सी उत्तेजना रही, मनमे अद्‌भुत दुबिधा, आशका तथा आशाके भाव उदित होते रहे, पर रातको ये सारे भाव घोर आश्चर्यमे बदल गये। मै स्तम्भित थी। जेकब मेरे पास पलगपर पड़ा हुआ कॉप रहा था। वह नपुसक था।"

इसके बाद तलाक।

ऐमाके अन्तर्द्वन्दका जीवन एक अद्‌भुत चीज है और उससे भी अधिक अद्‌भुत है उनकी स्पष्टवादिता। अपने आचार्य प्रिंस क्रोपाटकिनसे सेक्स (Sex) के विषयमें गरमागरम बहस करनेवाली, लेनिनके मुँहपर करारा जवाब देनेवाली और अपने सिद्धान्तोके लिए हर वक्त हथेली पर जान लिए घूमनेवाली ऐमा भला अपने जीवनके विषयमे दुराव-छिपावकी नीतिसे क्यो काम लेने लगी?

कहा जाता है कि एक बार उद्दालक ऋषि अपनी माताके पास गये थे और उनसे पूछा था, "माँ, लोग मुझसे पिताका नाम पूछते है। तू बता दे।" माताने जवाब दिया था, "बेटा, मै अनेक ऋषियोके साथ रमण करती रही थी। किसका नाम बतलाऊँ?" यह विवाह-सस्थाके व्यवस्थित होनेके पूर्वकी बात है। ऐमा गोल्डमेनमे उद्दालक ऋषिकी पूज्य मातासे भी

अधिक स्पष्टवादिता है। उनके पुरुष-प्रसगोका वृत्तान्त पढकर प्रश्न उठता है, "क्या ऐमा वैदिक कालके पहलेकी स्त्री है? अथवा क्या किसी भावी युगकी नारी? या क्या कोई महिला मगल ग्रहसे उतरकर इस लोकका निरीक्षण कर रही है?"

प्रत्येक नारीके जीवनमे पुत्रवती होनेकी इच्छा स्वाभाविक ही होती है, ऐमाके जीवनमे भी थी और वडे प्रवल रूपसे। जव वह चार वर्षकी थी तव उसके भाई हर्मनका जन्म हुआ था। तवतक वह गुड्डे-गुडियोसे खेलनेकी वडी इच्छुक रहती थी, पास-पडोसकी लडकियोके पास खिलौने देखकर ईर्ष्या करती थी, पर उस गरीवको ये मुअस्सर न होते थे, अव गुड्डा-सा छोटा भाई खिलानेके लिए आ गया!

माँ एक दिन वच्चेको ऐमाके पास सुलाकर कही चली गई। ऐमा अपने जीवन-चरितमे लिखती है—"माताजीके जाते ही वच्चा रोने लगा। मैंने सोचा कि जरूर यह भूखा होगा। फिर मुझे खयाल आया कि जव भैया रोता है तो अम्मा किस तरह अपना दूध पिलाकर इसे रखती है। मैंने भैयाको उठाकर अपनी छातीसे लगा लिया और उसके छोटे-से मुखड़ेको अपने स्तनसे चिपटाकर कहने लगी, 'ले बेटा, पी ले!' पीना तो दूर रहा, वह तो रोने-चिल्लाने लगा, नीला-पीला पडने लगा और उसका दम घुटने लगा! माँ आवाज सुनकर दौडी आई और बोली—"तूने भइयाको क्या नोच लिया है?' मैंने सारा किस्सा कह सुनाया। माँ हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई, उसने दो चपत मेरे गालोपर लगाईं और कहा, 'चल पगली!' मै जोर-जोरसे रोने लगी, चपतोकी वजहसे नही, बल्कि इस वजहसे कि मेरे स्तनोमेसे भइयाके लिए दूध क्यो नही निकला! मै उस समय पाँच वर्षकी थी।"

इसके वहुत वर्षों वाद पाँव और रीढकी हड्डियोमे असह्य पीडा होनेके कारण जव अमरीकामे ऐमा एक डाक्टरके पास गई तो उसने कहा—"तुम्हे आपरेशन कराना होगा, विना उसके यह दर्द जड़से दूर नही हो

सकता। अगर तुम आपरेशन करा लोगी तो गर्भ धारण कर सकोगी, नही तो नही। क्या तुम नही चाहती कि तुम बच्चेकी माँ बनो ?"

बात यह हुई थी कि विवाहके पूर्व एक बार रजस्वला होनेके दिन ही उसे जर्मनीसे रूसको लुक-छिपकर आना पडा था और एक वर्फीली नदी पार करनी पडी थी और तभीसे उसे यह रोग लग गया था।

ऐमा पुत्रवती होना चाहती थी और खूब चाहती थी, पर उसने सहस्रों बच्चोका सकटमय जीवन देखा था और उसकी अपनी बाल्यावस्था-की स्मृतियाँ भी काफी कटुतापूर्ण थी। वह गरीब थी, और गरीबोकी दाने-दानेको तडपनेवाली सन्ताने उसने देखी थी। क्या ऐसे दीन-हीन बच्चोकी सख्यामे बृद्धि करना उचित होगा ? ऐमाने सोचा, और जब यह आपरेशन की बात चली थी, ऐमा २०–२२ वर्षकी हो चुकी थी और अराजकवादके सिद्धान्तोके लिए जीवन अर्पण कर चुकी थी। उसने मनमे कहा, "मेरी आकाक्षा है कि मै अपना सम्पूर्ण समय अपने आदर्शोके प्रचारमे लगाऊँ और इसके लिए मुझे पुत्रवती होनेकी इच्छाको दमन करना होगा। बहुतसे आदमी अपने सिद्धान्तोके लिए शहीद हो गये है। क्या मै इतना भी न कर सकूँगी ? ध्येयकी प्राप्ति मुफ्तमे नही होती, उसके लिए कीमत चुकानी पडती है। मै भी मूल्य चुकाऊँगी। भले ही जीवन-भर दर्द सताता रहे, भले ही मनमे पुत्रवती होनेकी अदम्य लालसा बनी रहे। सभी बच्चे तो अपने बच्चे है। बस, मै आपरेशन नही करा-ऊँगी।"

ऐमाने आपरेशन नही कराया !

इतवारका दिन था। न्यूयार्कसे एक सुप्रसिद्ध महिला व्याख्यान देनेके लिए आनेवाली थी। उनका नाम था जोहन्ना ग्रेई। ऐमा उस भाषणको सुननेके लिए गई। पॉच अराजकवादियोको, जो हडतालियोके अगुआ थे, फाँसीकी सजा होनेवाली थी और ग्रेई उन्हीके विषयमे भाषण देने आई थी। भाषण समाप्त होनेपर ग्रेईने ऐमाकी ओर इशारा किया।

ऐमाके पैर काँपने लगे। ग्रेईने उसका हाथ अपने हाथमे लेते हुए कहा—"तुम्हारे चेहरेपर भाव जितनी प्रवलताके साथ झलक रहे थे, उतनी ज़ोरके साथ किसीके चेहरेपर भावोका प्रतिविम्व मैने नही देखा। मालूम होता है कि भावी दुर्घटना का तुम्हारे ऊपर वहुत प्रभाव पडा है? क्या तुम उन हडतालियोको जानती हो?"

काँपते हुए ऐमाने जवाब दिया—"मेरा दुर्भाग्य है कि मै उन्हे नही जानती! पर मेरा रोम-रोम इस दुर्घटनासे प्रभावित हो गया है और आपका भापण सुनकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे लोग मेरे चिर-परिचित हो।"

ग्रेईने ऐमाके कधेपर हाथ रखकर कहा—"मुझे विश्वास है कि जव तुम उन आदमियोंके आदर्शको समझ जाओगी तो उन आदमियोसे भी भलीभाँति परिचित हो जाओगी और तब तुम उनके ध्येयको अपना ध्येय वना लोगी।"

ऐमा लिखती है—"मै घरके लिए चल दी। मानो मैं स्वप्न-सा देख रही थी। पाँव रखती कही थी,' पडते कही थे। वडी वहन हेलेना उस वक्त सो रही थी और मेरे मनमे इतनी अधिक उत्कठा अपने अनुभव किसीको सुनानेकी थी कि मैंने वहनको लकलकाकर जगा दिया और शुरूसे आखिर तक सारी कहानी कह सुनाई। व्याख्यानका शब्द-शब्द मैने वहनको सुना दिया। हेलेना मानो कोई नाटक देख रही थी। अन्तमे लम्बी उसाँस भरकर उसने कहा, 'अव मै किसी दिन सुनूँगी कि मेरी छोटी-सी प्यारी वहन ऐमा भी खतरनाक अराजकवादी वन गई!'"

इसके कुछ दिनो वाद उन अराजकवादियोंको फाँसी हो गई। "मेरी वहन इस समाचारको पढते ही फूट-फूटकर रोने लगी, पर मेरे आँसू न निकले। चोट उतनी जोरकी थी कि आँसू निकलना असम्भव था। फिर मै खाटपर पडकर खूब रोई और फिर खूब सोई। दूसरे दिन सवेरे उठकर मैंने देखा कि मुझे नई जिन्दगी मिल गई है। मैने दृढ निश्चय

कर लिया कि उन अराजकवादियोका ध्येय मेरा ध्येय होगा और उनके तेजस्वी जीवनकी रामकहानी मै ससारको सुनाऊँगी ।"

आज इस घटनाको ५० वर्ष हो गये । उन पचास वर्षोंमें ऐमाने जो महान कार्य किया है, वह ससारके इतिहासमे एक महत्वपूर्ण अध्यायका काम देगा । वह है ऐमा गोल्डमेनके पुनर्जन्मकी कहानी । जब कोई उनसे उम्र पूछता है तो वे बीस वर्ष कम करके बताती है । वे कहती है—"जिन्दगीके प्रथम बीस वर्ष तो मै घास-फूसकी तरह उगती रही । उन्हे शामिल थोडे ही करूँगी ।"

थोडे दिन बाद ऐमाका परिचय बर्कमेन नामक अराजकवादीसे हो गया और दोनोमे घनिष्ट मित्रता हो गई । बर्कमेनका भी जन्म रूसमें ही हुआ था । ये दोनो मानो एक प्राण दो शरीरकी भाँति हिल-मिल गये । हाँ, ऐमाके विषयमे इतना अवश्य कहना पडेगा कि उसने अपना स्वतत्र व्यक्तित्व कभी नही खोया ।

सन् १८९२ मे कार्नेगी स्टील कम्पनी, पिट्सबर्गके मजदूरोने हडताल कर दी और उस समय कम्पनीके मैनेजर हेनरी क्ले फ्रिकने उनके साथ बडा हृदयहीनतायुक्त बर्ताव किया । बर्कमेनने निश्चय कर लिया कि मै इस अत्याचारपूर्ण नीतिका बदला लूँगा । आप अपने नगरसे पिट्सबर्गके लिए रवाना हुए, मैनेजरके कमरेपर पहुँचे और धाँय-धाँय तीन गोलियाँ उनपर दाग दी । खैरियत यह हुई कि फ्रिक साहब बच गये । हाँ, घायल तो वे बेतरह हो गये । इसके बाद मुकद्दमा चला । बर्कमेनको २२ वर्षकी जेल हो गई ।

ऐमाको इसका पता था और वह भी बर्कमेनके साथ जानेके लिए अत्यन्त उत्सुक थी, पर बर्कमेनने साफ मना कर दिया था । उसने कहा था—"तुम जीवित रहो और अमरीकन जनताको यह बतलाना कि मै कोई मामूली हत्यारा नही था, बल्कि आदर्शवादी था । मै फ्रिकको मार डालूँगा और फिर आत्म-हत्या कर लूँगा ।"

वर्कमेनको १४ वर्ष जेलमे व्यतीत करने पडे; पर ऐमाने इस बीचमे विश्राम नही लिया। पुलिसने ऐमाके घरकी तलाशी ली थी; पर इसके पूर्व ही उसने सब चीजे अपने कमरेसे दूसरी जगह पहुँचा दी थी। पुलिसको कोई खतरनाक चीज़ न मिल सकी। पर तबसे पुलिस ऐमाके विषयमे अत्यन्त सतर्क हो गई। वह 'लाल ऐमा' (Red Emma) के नामसे पुकारी जाने लगी।

ऐमाके दिलमे लगन थी और प्रकृतिने उसकी ज़बानमे जादूका असर दिया था। सहस्रोकी मीटिंगको वह अपनी वाणीसे प्रभावित कर सकती थी। जहाँ कही मजदूरोकी हडताल होती, वहाँ ऐमा बोलनेके लिए पहुँच जाती। पुलिसके दिलमे तहलका मच जाता। लोगोने कितने ही किस्से उसके बारेमे गढ लिये थे। कोई कहता था कि बम बनाती है, कोई कहता था कि वह हत्याओका प्रचार करती है।

सन् १८९४ मे पुलिसने उसे पकडकर मुकद्दमा चला दिया और साल-भरके लिए जेलमे ठेल दिया।

जेलसे छूटकर ऐमाने नर्सका काम सीखनेका निश्चय किया। राजनैतिक कार्यके लिए समय चाहिए था और ऐमाको आमदनी कुछ थी नही। कभी-कभी भोजनके भी लाले पड जाते थे, आरामकी बात तो रही दूर। मित्रोकी सहायतासे वह नर्सका काम सीखनेके लिए वायना गई और वहाँ गुमनाम रहकर (मिसेज़ ई० जी० ब्रेडीके कल्पित नामसे) वह नर्सका काम सीखती रही। अमरीका लौटकर उसने अपनी जीविका के लिए यही काम करना प्रारम्भ कर दिया। फिर भी उसके समयका अधिकाश तो राजनैतिक कार्योमे ही व्यतीत होता था।

ऐमाने अपने ध्येयकी प्राप्तिके लिए क्या-क्या नही किया! फैक्टरीमे मजदूरीकी, घरपर शाल-दुशाले बुने, मालिश की दूकान खोली, दर्जिनका काम किया और नर्सका पेशा अख्तियार किया। एक वक्त ऐसा आया कि डाक्टर लोग उसके नामसे डरने लगे और जो पहले मरीजोसे उसके

नामकी सिफारिश करते थे, वे अब उसका नाम लेनेमें भी भय खाने लगे। परिणाम यह हुआ कि उसका धन्धा खतम हो गया और फिर उसे दर्जिनका काम करना पडा।

सन् १९०६ मे बर्कमैन जेलसे छोड दिए गए। उनका स्वास्थ्य बिल्कुल खराब हो गया था और उनका मस्तिष्क पागलपनकी सीमा तक पहुँच चुका था। उस समय ऐमाकी ही सेवाने उनके प्राण बचाये।

मार्च सन् १९०६ मे ऐमाने एक मासिक पत्रिकाको जन्म दिया, जिसका नाम था 'मदर अर्थ' यानी धरती माता। सन् १९१७ मे, युद्धके दिनोमे सरकारने उस पत्रिकाका असमय ही अन्त कर दिया।

जून सन् १९१७ मे सयुक्त राज्य अमरीकाकी सरकारने ऐमा और बर्कमैन दोनोको पकड लिया, क्योंकि इन दोनोंने युद्ध-विरोधी भाषण दिये थे। मुकदमा चलाया गया और दोनोको दो-दो वर्षकी जेल और १० हजार डालर जुर्माने हुए।

जेल जानेके पहले दोनोंने अपने बन्धुओके नाम निम्नलिखित पत्र भेजा—

"मित्रो और बन्धुओ! खूब खुश रहो। हम दोनो प्रसन्नतापूर्वक जेल जा रहे हैं। हमारे लिए बाहर रहकर मुंह बन्द रखनेकी अपेक्षा जेलखानेकी सीखचोंके भीतर रहना कही अधिक सन्तोषजनक है। हमारी भावनाको कोई दबा नही सकता और हमारी दृढ इच्छाशक्तिको कोई तोड नही सकता। समय आनेपर हम दोनो अपने प्रिय कार्यपर लौट आवेंगे।

अभी हमारा प्रणाम! इस वक्त स्वाधीनताका प्रकाश अवश्य मन्द हो गया है, पर मित्रो, नाउम्मेदीकी कोई बात नही। चिनगारीको बुझने नही देना। सदा ही रात नही बनी रहेगी। शीघ्र ही इस अन्धकारके

बीजसे प्रकाशकी रेखा फूट पड़ेगी और इस देशमे नवीन दिनका उदय होगा। क्या ही अच्छा हो, यदि हममे से प्रत्येक यह अनुभव करे कि हमने भी उस महान् जागरणके लिए अपना कर्तव्य पालन किया है।

ऐमा गोल्डमेन,

एलेग्जेण्डर वर्कमेन।"

सितम्वर सन् १९१९ मे दोनो साथी जेलसे छोड़ दिये गए, पर २० दिसम्बर सन् १९१९ को दोनोको सयुक्त राज्यकी सरकारने देशनिकालेका दण्ड दे दिया। २८ दिनकी लम्वी यात्राके वाद वे रूस पहुँचे। ऐमा अव ५० वर्षकी थी और उसके जीवनका अधिकाश यानी ३४ वर्ष अमरीकामे वीते थे, इतने वर्ष वाद वह अपनी जन्मभूमिको वापस आई थी। फिर भी उसमें उतना ही उत्साह था, जीवनको नये सिरेसे प्रारम्भ करनेकी उत्कण्ठा थी और थी नवीन रूसकी सेवा करनेकी आकाक्षा।

रूसमें आकर जो-कुछ इन दोनोने देखा, उससे उनकी आँखे खुल गईं। स्वाधीन रूसके विषयमे जो स्वप्न वह देखती रही थी, वे सव भग हो गये। अमरीकामे इतने वर्ष रहने और अँग्रेजी वोलनेके कारण पहले तो उसे अपनी वाल्यावस्थाकी भाषा याद करनेमे वडी कठिनाई हुई, पर धीरे-धीरे वह रूसी भाषामे वोलने लगी। रूसमे ये दोनो करीव दो वर्ष तक रहे। इस वीचमे उन्हे लेनिन, लिटवीनॉफ और गोर्कीसे तो मिलनेका अवसर मिला ही, पर और भी अनेक व्यक्तियोसे ये मिले। उनमे प्रिंस क्रोपाटकिनकी मुलाकात सवसे अधिक महत्व रखती है। रूसकी वोल्शेविक खुफिया पुलिस चैकाके कारनामे जारकी पुलिसके अत्याचारोकी याद दिलाते थे। कितने ही अराजकवादी लेनिनकी जेलमे पडे सड़ रहे थे। स्पिरीडोनोवा भी जेलमें थी और उससे भी ऐमा मिली।

जव ऐमाने प्रिंस क्रोपाटकिनसे कहा—"क्या इस अभागी भूमिमे

कोई ऐसा नही है, जो बोल्शेविकोके अत्याचारका विरोध कर सके, कोई ऐसा नही, जिसके विरोधका लेनिनकी सरकारपर कुछ प्रभाव पड़ सके ? प्यारे कामरेड, तुम क्यो नही लिखते ?" तो ७७ वर्षका वह बुड्ढा तपस्वी मुस्कराया, पर मुस्कराहटके साथ ही खेदकी एक रेखा उसके चेहरेपर दौड गई। उसने कहा—"दुनियाके किसी हिस्सेमे स्वाधीन विचारोका गला इतने जोरसे नही घोटा गया, जितने जोरके साथ रूसमे घोटा जाता है। मैने विरोध किया था, वीरा फिगनरने विरोध किया था और मैक्सिम गोर्कीने भी किया था, पर कौन सुनता है ! हर मौकेपर खुफिया पुलिस दरवाजेपर खडी रहती है। साथी-सगियोके फँसनेका हर वक्त खतरा है। भयके कारण नही, पर इस भावनाकी वजहसे कि वर्तमान परिस्थिति-में रूससे बाहर अपने विचार भेजना बिल्कुल असम्भव है, हम लोग चुप है ! सबसे बडी कठिनाई यह है कि यदि हम बोल्शेविक सरकारका विरोध करते है तो रूसके चारो ओर जो दुश्मन है, वे उसका फायदा उठानेके लिए तैयार बैठे है। हम किसी भी हालतमे रूसके दुश्मनोका साथ नही दे सकते। हम अराजकवादियोके लिए इधर खाई है, तो उधर खन्दक। इसलिए हमने यही उत्तम समझा है कि साधारण जनताका जो हित हमसे हो सके, वह करते रहे।"

यह बात ध्यान देने योग्य है कि क्रोपाटकिन उन दिनो अत्यन्त कष्टमे अपनी जिन्दगी बिता रहे थे। भोजन भी उन्हे पुष्टिकर नही मिल पाता था और ७७ वर्षके उस तपस्वीको एक धुंधले दीपककी रोशनीमे अपने अन्तिम ग्रन्थ 'इथिक्स' (नीतिशास्त्र) की रचना करनी पडी थी। (Reference) सन्दर्भ की किताबोके खरीदनेके लिए पैसा पास नही था। इग्लैण्डके सुप्रसिद्ध मजदूर नेता जार्ज लैन्सबरी उसी दिन, जिस दिन ऐमा प्रिस क्रोपाटकिनसे मिलने गई थी, वहाँ पहुँचे थे। उन्होने क्रोपाटकिनकी हालत देखकर कहा था—

"It is impossible that the big people in the Soviet

Government would let so great a personality as Peter Kropotkin want for the necessaries of life. We in England would not stand for such an outrage."
—"यह असम्भव है कि सोवियट सरकारके उच्चपदाधिकारी क्रोपाटकिन जैसे महापुरुषको जिन्दगीके लिए जरूरी चीजो—भरण-पोषणकी आवश्यकताओ—से वचित रखेगे। हम लोग इगलैण्डमे इस प्रकारका अत्याचार सहन नही कर सकते।"

पर क्या शासकोके कभी दिल भी होता है ? शासकोको, चाहे वे मार्क्सवादी हो या गाधीवादी, हृदयहीन बनना ही पडता है।*

क्रोपाटकिन अपनी आनपर अन्ततक अडे रहे, और ८ फरवरी १९२१ को सवेरे चार बजे ससारका वह महान वैज्ञानिक, भविष्यका दृष्टा और निर्माता इस ससारसे चल बसा। मरनेके दो घटे पहले उन्होने ऐमा गोल्डमेनको याद किया था कि वह आई या नही। ऐमा, जो उन्हे अपना आचार्य, अपना गुरु, मानती थी, मृत्युके दो घटे बाद वहाँ पहुँच सकी।

रूसके दमघोटू वायुमडलमे रहना ऐमा और बर्कमेनके लिए अत्यन्त कठिन हो रहा था और वे ज्यो-त्यो करके वहाँसे निकल भागे। दोनोको एक देशसे दूसरे देशमे इधर-से-उधर टकराते घूमना पडा। कोई देश इन अराजकवादियोका स्वागत करनेके लिए तैयार नही था। फिर जर्मनीमे रहनेकी आज्ञा मिली और जुलाई १९२४ तक वे जर्मनी रहे और तत्पश्चात् इगलैण्ड लौट आये।

---

* "And with the best will no one can be an official and a man."—अर्थात्—"कोई भी आदमी, चाहे वह कैसा ही भलामानस क्यो न हो, अफसरी करते हुए मनुष्य नहीं रह सकता।" इब्सनने ठीक ही कहा था।

५५ वर्षकी उम्रमें ऐमाको विवाह करना पडा। विना विवाह किये उसे किसी देशमे रहनेका अधिकार नही था! मातृभूमि रूससे वह निकल चुकी थी, अमरीकासे उसे देशनिकालेका दण्ड मिल चुका था, अब किसी देशका नागरिक बननेके लिए उसे विवाह करना कानूनन जरूरी हो गया और वेल्सके एक सज्जन जेम्स कॉल्टनसे उन्होने विवाह कर लिया, जिससे वे ब्रिटिश नागरिक बन गईं!

इसके बाद उन्हे सयुक्त राज्य अमरीकामे आनेकी आज्ञा मिल गई और उनका स्थायी निवास-स्थान कनाडा वन गया। आजकल शायद वे वही रह रही है।

अब भी ऐमाके जीवनमे वही आशा है, वही उत्साह है। वे कहती है—"यद्यपि इस समय ससारमें उन्ही लोगोका बोलबाला है, जो शासनमें, गवर्मेण्टमे, विश्वास करते है और अराजकवादियोके सिद्धान्त इस समय पिछड-से गये है, तथापि मै निराश नही हूँ। यह बात ध्यानमे रखने योग्य है कि बहुत-से देश अपने यहाँ अराजकवादियोको घुसने भी नही देते! सभी पार्टियाँ, चाहे वे दक्षिणपक्षी हो अथवा वामपक्षी, अराजकवादको अपना जानी दुश्मन समझती है।"

कोई-कोई कल्पनाहीन पाठक यह प्रश्न कर सकते है—"ऐमा गोल्ड-मेनका जीवन सफल हुआ या विफल?" उनसे हम यही कहेगे कि अराजकवाद धनिये-पोदीनेकी तरहकी चीज नही, जो महीने-दो-महीनेमें उग आवे, उसमे मिनिस्ट्रीके मुलायम गद्दे नही है, जिनपर कलके क्रान्तिकारी आज आसन जमा ले। वह कोई छोटा-मोटा टीला नही, जिसपर चाहे जो ऐरे-गैरे चढ जायँ। गौरीशकरकी तरह वह ससारका सर्वोच्च लक्ष्य है। लेनिन भी अराजकवादको साम्यवादकी चरमसीमा मानते थे और महात्मा गाधी भी अराजकवादी है, पर अपने जीवनमे जिन्होने अराजक-वादको यथासम्भव पूर्णरूपसे चरितार्थ किया है, उनकी सख्या अत्यल्प है। अराजकवाद वस्तुत सतयुग है और मानव-समाज जिस भावी

सतयुगकी कल्पना सहस्रो वर्षोसे कर रहा है, उसके निर्माताओमे ऐमा गोल्डमेनका भी नाम गौरवपूर्वक लिया जायगा। समय आवेगा जब ससार ऐमाका नाम उसी तरह स्मरण करेगा, जिस प्रकार आज भारतीय तारा, मन्दोदरी, अहिल्या आदि पचकन्याओके नाम स्मरण करते है।
जून १९३९]

: ६ :

एमर्सन—१

इक्का वृन्दावनसे मथुरा चला जा रहा था। सडक टूटी-फूटी थी और कभी-कभी दचके भी लग जाते थे, पर उनकी ओर हमारा ध्यान नही था, क्योकि हम आचार्य गिडवानीकी स्फूर्तिमय वाणी सुन रहे थे। वे 'प्रेम'का डिक्लेरेशन दाखिल करनेके लिए मथुरा जा रहे थे और साथमे मुझे भी ले लिया था। इक्केमे चढते समय मैंने स्वप्नमे भी यह खयाल नही किया था कि आज मेरा परिचय एक ऐसे व्यक्तिसे कराया जायगा, जो वर्षोंतक मेरे हृदयमे सर्वोच्च स्थान प्राप्त करेगा, पर आचार्य गिडवानीजीने वही किया। वातचीतके सिलसिलेमें उन्होने कहा—"मेरे अनेक मित्रोने मुझसे पूछा है कि मै वास्वानीजीकी तरह कोई आश्रम क्यो नही स्थापित करता? आप भी शिकायत करते है कि मैं वृन्दावन-जैसी अस्वास्थ्यकर जगहमें क्यो आया हूँ? आप लोगोंके लिए मेरा उत्तर यही है कि 'हमारा कर्तव्य-स्थल वही है, जहाँ हम है, न कि वहाँ, जहाँ हम रहना चाहते हैं', और आपने यहाँका सूर्यास्त तो देखा ही नही। जमनाजीकी रेतीमें से देखनेसे वडा सुन्दर प्रतीत होता है और वह मेरी अस्वस्थताकी क्षतिपूर्ति कर देता है। इसके सिवा वापू (महात्माजी)का कहना है कि आदमी थोडी-सी सावधानी और भोजनमे यथोचित परिवर्तन कर देनेसे चाहे जैसी आवहवामें स्वस्थ रह सकता है। रही आश्रम कायम करनेकी वात, सो मैं जल्दीमें नही हूँ। मै किसीकी नकल नही करना चाहता। एमर्सनने एक जगह कहा है—

"There is a time in every man's education when

he arrives at the conviction that envy is ignorance; that imitation is suicide; that he must take himself for better, for worse, as his portion; that though the wide universe is full of good, no kernel of nourishing corn can come to him but through his toil on that plot of ground which is given to him to till."

—"प्रत्येक मनुष्यकी शिक्षामें एक ऐसा समय आता है, जब वह इस दृढ़ विश्वासपर पहुँच जाता है कि किसीसे ईर्ष्या करना अज्ञानका सूचक है और किसीकी नकल करना मानों आत्मघात करना है। तब उसे यक़ीन हो जाता है कि चाहे बुरे हो या भले, हमारे भाग्यमें हमीं बदे थे, और भले ही दुनियामें अच्छीसे अच्छी चीजोंका अखंड भंडार पड़ा हो; पर पुष्टि-कारक अन्नका एक भी दाना तबतक हमें नहीं मिल सकता, जबतक हम उस भूमिखंडको, जो हमें मिला है, अपने परिश्रमसे जोतें-बोएँ नहीं।"

मैने एमर्सनका नाम तबतक नही सुना था, पर उपर्युक्त बात इतने अच्छे ढगपर कही गई थी कि वह मेरे मनमें प्रवेश कर गई। इसके बाद बातचीतमे ही गिडवानीजीने फिर एमर्सनका नाम लिया और कहा—"An institution is the lengthened shadow of one man."

—"सस्था किसी एक मनुष्यकी विस्तृत छायाका नाम है।" सस्थाकी इतनी सच्ची परिभाषा मैंने पहले कभी नही सुनी थी। तुरन्त ही मनमे खयाल आया कि बात बडे पतेकी कही है। साबरमती-आश्रम महात्माजीकी विस्तृत छाया है, शान्तिनिकेतन कवीन्द्रकी और हिन्दू-विश्वविद्यालय मालवीयजीकी। अबकी बार मुझसे न रहा गया और मैं पूछ ही बैठा—"एमर्सन कौन थे ?"

गिडवानीजीने उत्तर दिया—"एमर्सनको नही जानते ? वे अमेरिकाके सर्वश्रेष्ठ लेखक थे—Greatest contribution of America to

world civilisation (ससारकी सभ्यताके लिए अमेरिकाकी सर्वश्रेष्ठ देन)। प्रत्येक भारतीय नवयुवकको उनका निवन्ध 'आत्म-निर्भरता' ('Self-reliance') अवश्य पढना चाहिए।"

वृन्दावनसे लौटकर आगरेमे मैंने एमर्सनके निवन्ध तलाश किये, और 'स्काट लाइब्रेरी' नामक पुस्तकमालाकी एक पुस्तक मुझे मिल गई। घर पहुँचकर मैंने 'आत्म-निर्भरता' पढना शुरू किया। ऐसे अवसरपर, जबकि मुझमे आत्म-विश्वासकी बहुत कमी थी, एमर्सनके इस निवन्धने वडी सान्त्वना दी और बहुत हिम्मत बँधाई। यह वात सन् १९२६की है और पिछले नौ वर्षोमे बहुत ही कम दिन ऐसे वीते होगे, जब मैंने प्रातःकालमे एमर्सनका सत्सग घटे-डेढ-घटेके लिए न किया हो। उन्होने निराशाकी अन्धकारपूर्ण निशाओमे विद्युत्का काम किया है, दुर्घटनाओमे सान्त्वना दी है, थकनेपर उनके निवन्ध सबसे वडे 'टानिक' साबित हुए है और जीवनमें उत्साह लानेके लिए उनके विचारोने वही काम किया है, जो क्षयके रोगियोके लिए कोई सुन्दर सेनेटोरियम करता है। इस बीचमे मैंने अन्य लेखकोके भी ग्रन्थ पढे है, पर सूत्ररूपमे आध्यात्मिक वातोको इतनी खूबीके साथ कहनेवाला कोई दूसरा लेखक नही मिला, इसीलिए वे मेरे हृदयमे सर्वोच्च स्थान रखते हैं। यदि कोई दूसरा उनसे योग्यतर व्यक्ति मिल जायगा तो एमर्सनकी जगह उसे दे दूँगा। एमर्सनका कोई भी प्रेमी कभी किसीका अन्धभक्त नही हो सकता—स्वय एमर्सनका भी नही! वह अपने दिमागके द्वार प्रकाशके लिए सदा खुले रखता है—यह प्रकाश चाहे जहाँसे आवे। सुना है कि जब महात्माजी भारत-सरकारके एक उच्च पदाधिकारीसे बातचीत खत्म करके चलने लगे तो उन्होने कहा, "But Mr. Gandhi, you haven't been able to throw much light on these intricate problems."—"मि० गाधी, आप गहन प्रश्नोपर अधिक प्रकाश नही डाल सके।"

हाज़िरजवाब महात्माजीने फौरन ही कहा—"Your Lordship should keep your mind open and there will be a flood of light."—"लाट साहब, आप अपने मस्तिष्कके कपाट खुले तो रखे, फिर वहाँ प्रकाशकी बाढ-सी आ जायगी।"

महात्माजीका यह किस्सा कहाँ तक सत्य है, इसकी गारटी हम नही कर सकते, पर इन शब्दोमे जो सत्यतापूर्ण सन्देश छिपा हुआ है, उससे कौन इन्कार कर सकता है ?

एमर्सनका सन्देश आशाका सन्देश है, वह शक्तिप्रद है, जीवनदाता है और यदि आप आध्यात्मिक शराब पीना चाहते है तो मै कहूँगा कि वह एमर्सनकी दूकानपर मिलती है, फर्क इतना ही है कि दुनियवी शराब उतारके वक्त थकान लाती है, एमर्सनका सोमरस सर्वथा स्वास्थ्यप्रद ही है, क्योकि उसमें गीता-रूपी कल्पवृक्षकी पत्तियोका रस बडी अच्छी मात्रामे विद्यमान है !

सबसे पहले इसी विषयको लेते है कि साहित्यिक आदमियोके लिए एमर्सन क्या सन्देश देते है। उनका 'अमेरिकन विद्वान्' ('American Scholar') नामक भाषण, जो सन् १८३७मे दिया गया था, अमेरिकाके साहित्यिक इतिहासमें युगान्तरकारी कहा जाता है। डा० जे० टी० सण्डरलैण्डने अपनी पुस्तक 'प्रमुख अमरीकन' ('Eminent Americans') मे इस भाषणके विषयमें लिखा है—"जब यह भाषण दिया गया था, उस समय उसका बडा प्रभाव पडा था। अमेरिकाके साहित्यिक इतिहासमे इस प्रकारके दूसरे भाषणका, जिसका इतना प्रभाव पड़ा हो और जिसने इतनी जागृति की हो, नाम बतलाना मुश्किल है। यदि किसीने एमर्सनके ग्रन्थ न पढे हो और वह अब पढना चाहते हो तो मै उनसे कहूँगा कि वे इस भाषणसे प्रारम्भ करें।"

इस भाषणके कितने ही वाक्य-रत्न ऐसे हैं, जो स्वर्णाक्षरोमें लिखे जाने योग्य है— "And man shall treat with man as a

sovereign state with a sovereign state."—"एक मनुष्यका बर्ताव दूसरे मनुष्यके साथ वैसा ही होना चाहिए, जैसा कि एक सर्वथा स्वाधीन राज्यका दूसरे सर्वथा स्वाधीन राज्यके प्रति होता है।"

यद्यपि इस उपदेशको पूर्णतया कार्य-रूपमे परिणत करना उतना ही कठिन है, जितना पूर्ण रूपसे ब्रह्मचर्य धारण करना, पर हम लोगोका—साहित्यिकोंका—आदर्श यही होना चाहिए। इस ससारमे अनेक वीभत्स दृश्य देखे जाते है, पर यदि कोई हमसे पूछे कि ससारका सबसे अधिक वीभत्स दृश्य क्या है तो हम यही उत्तर देगे कि किसी सच्चे साहित्यिक पुरुषका वह पतन, जब वह पापी पेटके लिए ('अस्य दग्धोदरस्यार्थे') किसी आदर्शहीन धनाढ्यके सामने झुकता है।

एमर्सनके मतानुसार प्रत्येक साहित्यिकके लिए सबसे जरूरी चीज है अपनी स्वाधीनताकी रक्षा करना और अपना व्यक्तित्व अलग कायम रखना।

"Is it not the chief disgrace in the world, not to be a unit; not to be reckoned one character,—not to yield that peculiar fruit which each man was created to bear, but to be reckoned in the gross, in the hundred, or the thousand, of the party, the section, to which we belong; and our opinion predicted geographically, as the north, or the south? Not so, brothers and friends—please God, ours shall not be so. We will walk on our own feet; we will work with our own hands; we will speak our own minds."

—"क्या दुनियामे सबसे बडी शर्मकी बात यह नही है कि आदमी एक इकाई न हो, यानी उसका व्यक्तित्व अलग न हो, उसकी गिनती एक पृथक् व्यक्तित्वके तौरपर न की जाय? प्रत्येक मनुष्यकी रचनाका

उद्देश्य यही है कि वह वृक्षोकी तरह अपना अलग ही फल दे। क्या यह शर्मकी बात नही है कि कोई मनुष्य अपने व्यक्तित्वको विचित्र रूपसे सफल न बनावे ? हमारे लिए क्या यह लज्जाका विषय नही है कि हम किसी पार्टीके सैकडो-हजारो अनुयायियोमे एक गिने जायँ और हमारी सम्मतिको कोई पहलेसे उसी प्रकार बतला दे, जिस प्रकार भूगोलमे उत्तर-दक्षिण बतला दिये जाते है ? भाइयो और मित्रो ! ईश्वर कृपासे हम लोग इस प्रकारके नही बनेगे। हम लोग अपने पैरो खडे होगे, अपने हाथोसे काम करेंगे और अपने ही विचारोको प्रकट करेगे।"

एक वाक्य और लीजिए—

"If the single man plant himself indomitably on his instincts, and there abide, the huge world will come round to him."

—"यदि अकेला एक आदमी भी दृढतापूर्वक जमकर बैठ जाय और अपनी अन्तरात्माकी प्रेरणाके अनुसार काम करने लगे तो यह विशाल ससार उसके निकट आ जायगा।"

एमर्सनका यह कथन था कि प्रत्येक मनुष्यको अपने प्रकाशसे अपना मार्ग प्रकाशित करना चाहिए। भगवान् गौतम बुद्धने निर्वाणके समय अपने शिष्योको 'आत्मदीप' अपना प्रकाश स्वय बननेका जो उपदेश दिया था, वह केवल भिक्षुओके लिए ही नही था, सभी प्राणियोके लिए था और लेखकोके लिए तो वह एक अनिवार्य चीज है।

"Be content with a little light, so it be your own. Explore and explore. Be neither chided nor flattered out of your position of perpetual inquiry."

—"यदि प्रकाश थोडा ही हो, तो कोई मुजायका नही। अभी उसीसे सन्तोष कर लो, बशर्ते कि प्रकाश तुम्हारा निजी हो। निरन्तर खोज करते

रहो, खोज। चाहे कोई तुमपर कटाक्ष करे, चाहे कोई तुम्हारी खुशामद करे, पर निरन्तर जाँच करनेकी अपनी प्रवृत्तिको मत छोडो।"

एमर्सनने लिखा था—"यदि कोई मस्तिष्क अपने मार्गका द्रष्टा स्वय नही वनता, अपने सत्यको किसी दूसरी जगहसे ग्रहण करता है—चाहे इस सत्यका प्रकाश धाराप्रवाह रूपसे आवे—तो विना एकान्तवास, आत्म-निरीक्षण और विना आरोग्य-प्राप्तिके यह दूसरी जगहसे प्रकाशका आना मस्तिष्कके लिए विघातक साबित होता है, प्रतिभा स्वय प्रतिभापर अत्यधिक प्रभाव डालनेके कारण उसकी शत्रु वन जाती है। प्रत्येक राष्ट्र का साहित्य मेरे इस कथनका गवाह है। उदाहरणार्थ, अगरेजीके नाटककार कवि दो सौ वर्षसे शेक्सपियरकी नकल कर रहे है।"

पुस्तकोके विषयमें एमर्सन कहते हैं—"यदि पुस्तकोका सदुपयोग हो तो वे सर्वोत्तम चीज है। यदि दुरुपयोग हो तो वे सबसे खराब है। पुस्तकोका मुख्य उद्देश्य है स्फूर्ति प्रदान करना, पर यदि कोई पुस्तक अपने आकर्षणसे मुझे अपने निर्दिष्ट पथसे अलग फेंक दे और मैं ग्रह-मडल वननेके वजाय उसका उपग्रह वन जाऊँ—उसके आसपास चक्कर काटने लगूँ—तो इससे तो यही वेहतर होगा कि मैं उक्त पुस्तकको पढूँ ही नही।"

एमर्सन लेखकोके जीवनमें कार्यशीलता लानेके पक्षपाती थे। वे कहते थे कि यद्यपि लेखकका प्रधान कर्तव्य विचार करना है और कार्य करना उसके लिए गौण है, तथापि कार्य करना उसके लिए अत्यन्त आवश्यक है। विना कार्य किये वह पुरुष नही वन सकता। विना कार्यशील वने उसके विचार पककर सत्य नही वन सकते। अकर्म कायरता है। . मुझमें उतनी ही जिन्दगी है, जितनी कि मेरी अनुभूति है।

साहित्य-सेवियोके लिए उनका यही सन्देश था—"जो कुछ तुम्हे, केवल तुम्हें ही, ज्ञात है, वही लिखो। अपने अनुभव वतलाओ, अपने व्यक्तित्वको प्रकट करो, अन्य किसीकी प्रतिध्वनि मत वनो।"

उनके ये निम्न-लिखित शब्द प्रत्येक आदर्शवादी साहित्य-सेवीको अपने कमरेमे लिखकर टॉग लेने चाहिए—

"Truth shall be policy enough for him. Let him open his breast to all honest inquiry and be an artist superior to tricks of art. Show frankly as a saint would do, your experience, methods, tools, and means. Welcome all comers to the freest use of the same. And out of this superior frankness and charity you shall learn higher secrets of your nature, which gods will bend and aid you to communicate.'

अर्थात्—"सत्य ही उसके (साहित्य-सेवीके) लिए पर्याप्त पालिसी होगी। साहित्य-सेवीका कर्तव्य है कि वह प्रत्येक ईमानदार जिज्ञासुके सामने अपना दिल खोलकर रख दे और कलाकारोकी चालाकियोसे ऊपर उठकर कलाकार बने। सन्त पुरुषकी भाँति अपने अनुभव, अपने तरीके, अपने अस्त्र-शस्त्र और साधनोको सबको दिखलाओ और जो आदमी तुम्हारे पास जिज्ञासाके भावसे आवे, उन्हें इनका भरपूर प्रयोग करने दो। इस ऊँचे दर्जेकी स्पष्टवादिता तथा उदारतासे तुम्हे खुद अपनी प्रकृतिकी उच्चकोटिकी भीतरी बातोका पता लग जायगा और देवता लोग झुककर उन बातोंके प्रकटीकरणमे तुम्हारी मदद करेंगे।"

इसमे सन्देह नही कि एमर्सनके उपर्युक्त सिद्धान्तको प्रयोगमे लाना खतरनाक है। आदमियोको पहचानना आसान नही। कौन आदमी धूर्त है और कौन 'ईमानदार जिज्ञासु', इसका पता लगाना आसान काम नही, पर जो साहित्य-सेवी दरअसल ऊँचे उठना चाहते है, उन्हे इन खतरोमे पडना ही होगा।

यदि कोई आदमी धोखा दे भी दे तो उससे साहित्य-सेवीकी वास्तविक हानि नही हो सकती। एमर्सनने एक जगह लिखा है—

"Every man takes care that his neighbour shall not cheat him. But a day comes when he begins to care that he does not cheat his neighbour Then all goes well He has changed his market-cart into a chariot of the sun."

अर्थात्—"हरएक आदमी इस बातकी चिन्ता करता है कि मेरा पडोसी मुझे धोखा न दे दे, लेकिन एक दिन ऐसा भी आता है, जब वह इस बातकी फिक्र करना प्रारम्भ करता है कि वह खुद अपने पडोसीको धोखा न दे। तब सब काम ठीक बन जाता है, तब उसकी बाजारू गाड़ी सूर्यके रथमें परिवर्तित हो जाती है।"

एमर्सनके उपर्युक्त कथनकी तुलना कबीरके निम्न-लिखित दोहेसे कीजिए—

"कबिरा आप ठगाइये और न ठगिये कोइ;
आप ठगें सुख ऊपजे और ठगें दुख होइ।"

साहित्य-सेवीके लिए एमर्सनका एक और भी सन्देश है—"Snares and bribes abound to mislead him, let him be true nevertheless" "साहित्य-सेवीको पथभ्रष्ट करनेके लिए जाल बिछेंगे और रिश्वतोंकी भी भरमार होगी, फिर भी उसे सत्य-पथपर ही आरूढ रहना चाहिए।"

कभी-कभी तो एमर्सनके विचार पढते-पढते यह शक होने लगता है कि कही हम गीताकी टीका तो नही पढ रहे। निम्न-लिखित वाक्य लीजिए—

"The Buddhists say—'No seed will die,' every seed will grow Where is the service which can' escape its remuneration? What is vulgar, and the essence of all vulgarity, but the avarice of reward? It is the

difference of artisan and artist, of talent and genius, of sinner and saint. The man whose eyes are nailed not on the nature of his act, but on the wages—whether it be money, or office, or fame—is almost equally low."

यह 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'की विस्तृत व्याख्या नही है, तो क्या है ? 'Gita is an Empire of thought.' ('गीता विचारोका साम्राज्य है')—एमर्सनके इस वाक्यको श्री टी० एल० वास्वानीने अपने एक लेखमें उद्धृत किया था।

एमर्सनके निवन्ध खाँडकी उस रोटीकी तरहके है, जो जहाँसे तोडो, वहीसे मीठी निकलती है। एमर्सनका कथन था, "जो विचार आज आपकी समझमे आते है, उन्हें आज लिख दो, और जो कल समझमे आवें, उन्हें कल लिख दो, और यदि आज तथा कलके विचारोमे परस्पर विरोध हो तो कोई मुज़ायका नही। इससे गलतफहमियाँ उत्पन्न होगी, लोग तुम्हे कुछ-का-कुछ समझेंगे, पर इससे क्या हुआ ? क्या कुछ-का-कुछ समझा जाना कोई वडी खराव बात है ? पिथेगोरसको लोगोने कुछ-का-कुछ समझा, सुकरातको कुछ-का-कुछ समझा, और ईसा मसीहको, लूथरको, कापरनीकस, गैलिलियो ओर न्यूटनको लोगोने गलत समझा। यही क्यो, प्रत्येक पवित्र तथा बुद्धिमान शरीरधारीको लोगोने कुछ-का-कुछ समझा है। महान् होनेका अर्थ ही है गलतफहमीका शिकार होना !"

'पहले हम यह वात कह चुके है, अव इसका विरोध कैसे करें ?' यह विचार अनेक आदमियोको तग किया करता है, पर एमर्सनको इसकी कुछ परवा नही। वे कहते हैं, "पहले जैसा हम कह चुके है, हमे तदनुसार ही कहना चाहिए, किसी प्रकार उसका खडन न करना चाहिए, यह मूर्खतापूर्ण भूत तो क्षुद्र मस्तिष्कवालोके ही सिरपर सवार होता है और निम्न-कोटिके राजनीतिक, दार्शनिक तथा धार्मिक पुरुष इस भूतकी पूजा करते है, पर किसी महान् आत्माको इस भूतसे कुछ भी सरोकार नही।

किसी महान् आत्माके लिए वह विचार उतना ही महत्त्व रखता है, जितना दीवारपर उसकी छाया।"*

एमर्संनके विचार पढते-पढते आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है और वार-वार मुँहसे यह निकल पडता है—"खूब! वात तो हमारे मनमे भी थी, पर एमर्संनने कितने वढिया ढगसे उसे कहा है।" किसी उर्दू कविका वह पद्य हमे इस समय याद नही आ रहा, जिसके अन्तमे आता है—"गोया ये भी मेरे दिलमे था।" यही एमर्संनकी प्रतिभाका प्रमाण है। उन्होने एक जगह लिखा है—"In every work of genius we recognise our own rejected thoughts"

अर्थात्—"प्रतिभापूर्ण ग्रन्थोमे हमे ऐसे कितने ही विचार मिलते है, जो हमारे मस्तिष्कमे भी आये थे, पर जिनको हमने थोथा समझकर छोड़ दिया!'

एमर्संनको पढनेके वाद अन्य छोटे-मोटे उत्साहप्रद ग्रन्थ कुछ भी

"A foolish consistency is the hobgoblin of little minds, adored by little statesmen and philosopher and divines With consistency a great soul has simply nothing to do He may as well concern himself with his shadow on the wall Speak what you think now in hard words, and to-morrow speak what to-morrow thinks in hard words again, though it contradicts everything you said to-day—'Ah, so you shall be sure to be misunderstood'—Is it so bad, then, to be misunderstood? Pythagoras was misunderstood, and Socrates, and Jesus, and Luther, and Copernicus, and Galileo, and Newton, and every pure and wise spirit that ever took flesh To be great is to be misunderstood"

नही जँचते। जो लोग एमर्सनके प्रेमी है, वे इस बातकी साक्षी हो सकते है। एमर्संनने एक जगह लिखा है—

"Who hears me, who understands me, becomes mine—a possession for all time."

अर्थात्—"जो आदमी मेरा सन्देश सुनता है, जो मुझे समझता है, वह मेरा हो जाता है, सदाके लिए उसपर मेरा अधिकार हो जाता है।"

और सुनिये—"Let the soul be assured that somewhere in the universe it should rejoin its friend and it would be content and cheerful alone for a thousand years."

अर्थात्—"यदि किसी आत्माको दृढतापूर्वक यह विश्वास दिला दिया जाय कि इस विश्वमें कहीपर अपने पूर्वपरिचित मित्रसे उसका मिलन अवश्य हो जायगा तो वह एकाकी अवस्थामें एक हज़ार वर्ष तक प्रसन्न और सन्तुष्ट रह सकती है।"

पर एमर्सन अपने व्यक्तित्त्वके पूर्ण और स्वाधीनतायुक्त विकासके इतने अधिक पक्षपाती है कि वे मित्रोके मोहको उसके बीचमे बाधक नही होने देना चाहते। वे कहते है कि जिस प्रकार वृक्षोमें पुराने पत्तोकी जगह नये पत्ते आते रहते है, उसी प्रकार प्रगतिशील मनुष्योके मित्रोमें परिवर्तन होता रहता है। हाँ, यदि मित्र भी उसी प्रकार प्रगतिशील हो तब दूसरी बात है। जब आत्माकी पुकार आती है, उस समय एमर्सन अपने माता-पिता, भाई-बहन, मित्र इत्यादिको छोडकर उसकी ओर अग्रसर होते है। यदि कोई उनसे कहता है—"इससे तो आपके मित्रोको दुःख होगा।" तो वे जवाब देते है--"Yes, but I cannot sell my liberty and my power to save their sensibility."—"हाँ, पर मैं इसका क्या करूँ? उनकी भावुकताको बचानेके लिए मैं अपनी स्वाधीनता अथवा शक्तिको बेच थोड़े ही सकता हूँ।"

एमर्सनके अनुयायीको सर्वथा निर्मोही होना चाहिए। यदि एमर्सन-का कोई मित्र उनके नैतिक तथा सत्य-सम्बन्धी धरातलपर नही है तो वे उससे यही कहते है—"जनाव, आप अपने रास्ते जाइये, मै अपने मार्गपर जाऊँगा। दम्भ करनेसे कोई फायदा नही। यदि हम अपने मतानुसार सत्य मार्गका अनुसरण करते रहे तो कभी-न-कभी आगे चलकर मिल जायँगे।"

एमर्सन न तो अपने किसी मित्रकी प्रतिध्वनि वनना चाहते है और न वे किसीको अपनी प्रतिध्वनि वनाना चाहते है। एमर्सन कहते है—"हमें लोगोसे मिलना जरूर चाहिए, पर अपनी शर्तोपर, और क्षुद्र-से-क्षुद्र कारणपर किसीका प्रवेश या वहिष्कार करनेका हमे अधिकार होना चाहिए।"

एमर्सन अपने प्रेमियोसे मानो कहते है—"यदि अपने लक्ष्यपर जानेमें तुम्हारे मित्र छूटते है तो छूट जाने दो। उनसे वढिया मित्र तुम्हें आगे चलकर मिल जायँगे। ये पुरानी चीजोकी मूर्ति-पूजा कैसी? तुम समझते हो कि तुम्हारा भूतकाल वड़ा मनोहर था, पर मै तुमसे कहता हूँ कि वर्तमानमें वह शक्ति है कि तुम्हारा भविष्य उससे भी अधिक उज्ज्वल वना सके। इस पुराने खेमेमे पडे-पडे क्यो पछता रहे हो कि यहाँ पहले हमें भोजन मिला था, आश्रय मिला था और मिला था प्रेम? क्यो इस वातपर विश्वास नही करते कि आत्मामें वह क्रियात्मक शक्ति है कि वह भविष्यमे हमारा भरण-पोषण कर सकती है और हमें ताकत दे सकती है? क्यो व्यर्थ ही पश्चात्ताप कर रहे हो कि भविष्यमें हमे ऐसी प्यारी, ऐसी मधुर, ऐसी शिष्ट चीज नही मिलेगी? पर इस तरह वैठकर रोना ठीक नही। यह विलकुल व्यर्थ ही है। सर्वशक्तिमानका सन्देश है—'आगे वढे चलो, निरन्तर वढते रहो।' छोडो जी, इन पुराने खडहरो-को। पीछे मुडकर क्यो देखते हो? वाज-वाज राक्षसोकी आँखें पीठकी ओर होती है। क्या तुम भी राक्षस हो?"

अपनी गार्हस्थिक दुर्घटनाओमे हमे एमर्सनके 'क्षतिपूर्ति' (Compensation) नामक निबन्धसे जितनी सान्त्वना मिली है, उतनी किसी दूसरी पुस्तकसे नही। आकस्मिक दु खोके कारण जिन महानुभावोकी आत्मा सन्तप्त हो, उन्हें एमर्सनके निम्न-लिखित वाक्योपर ध्यान देना चाहिए—

"And yet compensations of calamity are made apparent to the understanding also, after long intervals of time. A fever, a mutilation, a cruel disappointment, a loss of wealth, a loss of friends, seems at the moment unpaid loss, and unpayable. But the sure years reveal the deep remedial force that underlies all facts. The death of a dear friend, wife, brother, lover, which seemed nothing but privation, somewhat later assumes the aspects of a guide or genius, for it commonly operates revolutions in our way of life, terminates an epoch of infancy or of youth, which was waiting to be closed, breaks up a wanted occupation, or a household, or style of living, and allows the formation of new ones more friendly to the growth of character. It permits or constrains the formation of new acquaintances, and the reception of new influences that prove of the first importance to the next years; and the man or woman who would have remained a sunny garden-flower, with no room for its roots and too much sunshine for its head, by the falling of the walls and the neglect of the gardener, is made the banian of the forest, yielding shade and fruit to wide neighbourhoods of men."

इसका भावार्थ यह है—"मनुष्योंके जीवनमे जो दुर्घटनाएँ आती है, उनकी भी क्षतिपूर्ति होती है, पर वे बहुत दिनो बाद हमारी समझमे आती है। बुखार आना, अगभग हो जाना, निर्दयतापूर्ण निराशा, धनकी हानि, मित्रोका विनाश आदि दुर्घटनाएँ जब हमारे जीवनमें घटती है, उस समय तो ऐसा मालूम होता है कि यह बिलकुल घाटा-ही-घाटा रहा, इस क्षतिकी पूर्ति कभी हो ही नही सकती। पर सब वास्तविक तथ्योके बीचमे एक स्वास्थ्यप्रद शक्ति निहित रहती है, जिसका परिचय हमें वर्षो बाद लगता है, और निश्चयपूर्वक लगता है। जिस समय हमारे किसी प्रिय मित्रकी, पत्नीकी, भाईकी अथवा प्रेमीकी मृत्यु होती है, उस समय तो हमे ऐसा प्रतीत होता है कि हम हमेशाके लिए वचित कर दिये गए, लेकिन आगे चलकर यही दुर्घटना हमारे लिए स्फूर्तिदायक बन जाती है, हमारे रहनुमाका काम करती है। इस दुर्घटनाके कारण हमारे जीवनमे एक प्रकारकी क्रान्ति आ जाती है। हमारे बचपनके अथवा बाल्यावस्थाके युगका अन्त हो जाता है, हमारे चिर-अभ्यस्त कार्यक्रमका विच्छेद हो जाता है, गृहस्थावस्था या जीवनक्रम टूट जाता है, और उसके परिणाम-स्वरूप नवीन जीवनक्रमका निर्माण होता है, जो हमारे चरित्रके निर्माणके लिए अधिक उपयुक्त साबित होता है। इन दुर्घटनाओके कारण हमारा नवीन व्यक्तियोसे परिचय होता है, हमारे जीवनमें नवीन प्रभावोको ग्रहण करनेकी शक्ति आती है—ऐसे प्रभाव, जो आगामी वर्षोमें हमारे लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते है। और वह स्त्री या पुरुष, जो इस दुघटनाके न आनेपर उद्यानका एक कोमल पुष्प बना रहता (उसकी जडोको फैलनेकी जगह ही न होती और सूर्यके प्रकाश—वैभव-विलासका उसे जरूरतसे ज्यादा भाग मिलता), दीवारोके गिर जानेसे या मालीकी उपेक्षासे वही कोमल पुष्प वनके वटवृक्षका रूप धारण कर लेता है, जो दूर-दूर तक मानव-समाजको फल और छाया प्रदान करता है।"

जिस प्रकार तुलसीदासजीकी रामायणके प्रेमियोको समय-समयपर—

दुखमे, सुखमे—उसीसे सान्त्वना मिलती है, सन्तोष मिलता है और शक्ति प्राप्त होती है, उसी प्रकार एमर्सनके भक्तोंके लिए उनके ग्रन्थ रामायणका काम देते हैं।

किसी देश-विशेषने ऋषित्वका पट्टा नही लिखा लिया है और न इस ससारमें देवदूतोका आना ही वन्द हो गया है। यदि दक्षिण-भारत हमें शकराचार्य प्रदान कर सकता है, बगाल रामकृष्ण और राममोहन, गुजरात दयानन्द तथा गाधी, तो अमेरिका हम एमर्सन, रूस क्रोपाटकिन, टाल्सटाय और लेनिन क्यो न प्रदान करे? कठमुल्ले है वे, जो अपने दिमागके द्वारको वन्द कर लेते है।

जव हमारे एक सहयोगीको यह पता लगा कि हमारे आराध्य पुरुषो और प्रिय लेखकोमें अधिकांश पश्चिमके है तो उन्होने कुछ व्यगात्मक ढगसे कहा—"तुम तो विलकुल पाश्चात्य हो!"

मालूम नही कि इसे हम निन्दा समझें या प्रशसा। क्या ज्योतिपर किसी देश-विशेषने एकाधिकार जमा लिया है? यद्यपि एमर्सनने स्वय ही कहा है—"Europe has always owed to Oriental genius its divine impulses."—"यूरोप सदासे अपनी दैवी भावनाओंके लिए पूर्वीय देशोकी प्रतिभाका ऋणी रहा है।" तथापि नदीके स्रोतका जितना माहात्म्य है, उतना ही आगे उसके आगेके तीर्थोका हो सकता है।

यद्यपि गंगोत्रीका जो निर्मल जल सुदूर हिमालयके दुर्गम स्थलमें प्राप्य है, वह वनारसमें नही मिल सकता; पर पुण्यसलिला भागीरथीमें जो काशी-तीर्थमें स्नान करते हैं, उन्हे क्या आप अपराधी कह सकते है? वयोवृद्ध प्रिन्सिपल हेरम्बचन्द्र मित्रने, जो एमर्सनके वड़े भक्त है, हारवार्डके एक मासिक पत्रमें लिखा था—

"I recognize a close affinity between the thought

of Emerson and that of the Orient. Emerson's teachings breathe a new life into our old faith. They assure its stability and its progress, by incorporating with its precious new truths revealed or brought into prominence by the wider intellectual and ethical outlook of the modern spirit."

अर्थात्—"मुझे एमर्सनके विचारोमे और पूर्वीय देशोके विचारोमें घनिष्ट साम्यता दीख पडती है। एमर्सनकी शिक्षाएँ हमारे प्राचीन विश्वासोमे नवीन जीवनका सचार करती है। उन शिक्षाओंके कारण हमारे ये विश्वास स्थिरता प्राप्त करते है और उन्नतिशील बनते है, क्योकि एमर्सनकी इन शिक्षाओमें वर्तमान कालके विस्तृत बौद्धिक तथा नैतिक दृष्टिकोणके कारण नवीन सत्योका या तो प्रकटीकरण हुआ है, या वे महत्त्व धारण करके प्रकाशमें आ गये है।"

बन्धुवर गर्देजीने हमे अपने एक पत्रमें लिखा था—"कभी-कभी गीताके समझनेमे हमे एमर्सनसे मदद मिल जाती है।" निस्सन्देह एमर्सन उपनिषदोके मौलिक टीकाकार है। एमर्सनके ग्रन्थोका हिन्दीमें भावानुवाद होना चाहिए और शीघ्र ही होना चाहिए।

सुप्रसिद्ध भारत-हितैषी डा० जे० टी० सण्डरलैण्डने लिखा है—"If you can read only one writer of the West, my word is, read Emerson."

अर्थात्—"यदि आप पश्चिमके केवल एक ही लेखककी रचना पढना चाहते है, तो मै कहता हूँ कि एमर्सनको पढिये।"

जब जर्मनीके सुप्रसिद्ध सस्कृतज्ञ विद्वान् डाक्टर पाल डयूसन भारत-यात्राके लिए आये थे तो उन्हे अयोध्यामे किसी पुजारीने भगवान् रामके मन्दिरमें प्रवेश करनेसे रोक दिया था। उन्होने बहुत समझाया कि वर्षोसे मै रामका भक्त हूँ, दिन-रात सस्कृत पढता हूँ, मुझे भीतर जाने दो,

पर उस कठमुल्लेने न जाने दिया, न जाने दिया ! उस समय वे यह कहकर चले गये—"क्रुद्धोऽस्मि।" आज उसी प्रकार एमर्सन हमारी राष्ट्र-भाषाके सरस्वती-मन्दिरके द्वारपर खड़े हैं। क्या हम उनका स्वागत न करके उस भूलको दुहरावेंगे ?

सितम्बर १९३५]

: ७ :

एमर्सन—२

वसन्त ऋतुका समय है। सरोवरका तट। सप्तपर्ण वृक्ष की छाया। सामने कमल और कमलिनी खिली हुई है पीछे कोयल बोल रही है। सुगन्धि लिए हवाका झोका आ जाता है। दृष्टि उठानेपर बौरसे लदा हुआ आमका पेड दीख पडता है। एमर्सनके निबन्ध और जीवन-चरित पासमे है। और क्या चाहिए ? जिन्होने ऋषिवर एमर्सनके विचारोका स्वाद चखा है, वे कह सकते है कि उनमे विचित्र मादकता है, अजीब आध्यात्मिक नशा है, प्याले-पर-प्याले चढाते जाइए, कभी तृप्ति नही होगी। एमर्सनके पढनेमे वही आनन्द आता है, जो किसी महान् विद्वान्के साथ वन-उपवनकी सैरमे। एमर्सनका सन्देश आशाका सन्देश है। उसमें यौवन है, उत्साह है और आत्म-विश्वास है। प्राचीन भारतीय ऋषियोकी तरह उनके वाक्य क्या है, मानो गम्भीर अर्थप्रद सूत्र है।

एक अग्रेज लेखकने एमर्सनके निबन्धोकी भूमिका लिखते हुए कहा है—"Emerson's alliance with the "brooding East" is (always remembering his strain of Western energy and practicality) more than emotional; he is in certain higher reaches of his thought, almost a Brahman; so that a cultured Hindoo may write, 'He seems to some of us to have been a geographical mistake He ought to have been born in India'"

अर्थात्—"यद्यपि एमर्सनमे पाश्चात्य शक्ति और व्यावहारिकताकी

मात्रा काफी अशोमें पाई जाती है, तथापि 'चिन्ताशील पूर्व' से उनका सम्बन्ध केवल भावुकतामय ही नही है। कभी-कभी उनके विचार इतनी ऊँचाई तक पहुँचते है कि हम उन्हे प्राय ब्राह्मण कह सकते है, इसलिए कोई शिक्षित हिन्दू कह सकता है—'एमर्सन तो एक भौगोलिक भूल थे। उनका जन्म तो अमेरिकाके बजाय भारतवर्षमे होना चाहिए था।' "

अग्रेजी विश्वकोषमें लिखा है—"Emerson was an intellectual Brahmin." अर्थात्—"एमर्सन बौद्धिक दृष्टिसे ब्राह्मण थे।"

अपने निबन्धोमे कही वे गीतासे उद्धरण देते है, तो कही वेदसे, कही हितोपदेशसे, तो कही विष्णुपुराणसे ।

जब सुप्रसिद्ध अग्रेज लेखक एडवर्ड कार्पेण्टर अमेरिका गये थे तो वे एमर्सनके दर्शनार्थ उनके घरपर पधारे थे। उस समय एमर्सनने उन्हे बड़े प्रेमपूर्वक उपनिषदोका अनुवाद दिखलाया था और अपनी 'ब्रह्म' शीर्षक कविता भी बतलाई थी।

जिस महापुरुषके विचारोमे इतनी भारतीयता पाई जाती हो, उसके जीवन-चरितके विषयमें अधिकाधिक जाननेकी उत्कठा प्रत्येक सुसस्कृत भारतीयके हृदयमे उत्पन्न होगी, इसमें सन्देह नही। आइये, पहले हम उनके माता-पिता, जन्म, बाल्यावस्था इत्यादिके विषयमें दो-चार बाते जान ले।

राल्फ वाल्डो एमर्सनका जन्म २५ मई सन् १८०३ मे बोस्टन नामक नगरमे हुआ था। सुप्रसिद्ध अमेरिकन बेजमिन फ्रैंकलिनके जन्मस्थान होनेका सौभाग्य भी इसी नगरको प्राप्त है। उनके बाबा रेवरेण्ड विलियम एमर्सन बडे प्रभावशाली धर्म-प्रचारक और कट्टर देशभक्त थे। सन् १७७६ में वे सेनामें भर्ती होकर गये, बीचमे बीमार पड़ गये, लौटना पड़ा, पर मार्गमे ही उनका देहान्त हो गया। उनके चार बच्चे हुए—एक लडका और तीन लडकियाँ। इन लड़कियोमे एकका नाम था मेरी मूडी एमर्सन और उनका हमारे चरितनायकके चरित्रपर बड़ा प्रभाव पड़ा था।

एमर्सनके पिताका भी नाम विलियम एमर्सन था और उनकी माताका नाम था रूथ हस्किन। इनके पाँच लड़के हुए, जिनमें एमर्सन द्वितीय थे।

एमर्सनके पिता बडे उदार-चरित और क्षमाशील थे। अपने शत्रुओ के प्रति भी उनका वर्ताव क्षमाका ही था। शरीर उनका सुडौल था, रग गोरा और रहन-सहनमें शिष्टता तथा सुशीलता पाई जाती थी। वे वडे ईमानदार थे, अपनी वातको वडी दृढतापूर्वक प्रकट करते थे, लेकिन उनकी वातचीतमे कभी भद्दापन नही आने पाता था। माता वड़ी धैर्य-शाली थी, परमात्मामे उनकी दृढ श्रद्धा थी, वडी समझदार और विनम्र थी। घरका काम-काज खूब सम्हालती थी और कुटुम्बमें वड़े प्रेमपूर्वक शासन करती थी। उनके आचरणमे स्वाभाविक शिष्टता, शान्तिमय गौरव और विचित्र कोमलता थी।

सन् १८११ मे एमर्सनके पिताका देहान्त हो गया। उस समय एम-र्सनकी उम्र केवल ८ वर्षकी थी। घरकी आर्थिक दशा वहुत खराव हो गई। पाँच लडकोके वीच केवल एक ही कोट था, और जव एमर्सन उसे पहनकर जाते थे तो उनके स्कूलके साथी कहते थे—"आज राल्फ इस कोटको पहनकर आया है, कल इसके वडे भाई एडवर्डकी पारी है।" वडे कुटुम्वके पालन-पोपण करनेके लिए माताने एक छात्रालय और भोजनालय खोल रखा था और एक गाय भी रख छोडी थी। एमर्सन अपने वडे भाईके साथ इस गायको चरानेके लिए जगलमे ले जाया करते थे। एमर्सन की माताको वडी किफायतशारीसे अपनी गुजर करनी पडती थी, और इस किफायतशारीका उनके जीवनपर वहुत अच्छा प्रभाव पडा।

आठ वर्षकी उम्रमे वे एक स्कूलमें भर्ती हुए। कविता करनेका शौक उन्हे वाल्यावस्थासे ही था और ग्यारह वर्षकी उम्रमें 'वर्जिल'का उन्होंने अग्रेजीमे अनुवाद करना प्रारम्भ किया। ग्रीक भाषासे उन्हे विशेष प्रेम था और इतिहास भी वे बड़े चावके साथ पढते थे। इसके वाद वे कालेज

में भर्ती हुए। उनके कालेजके एक सहपाठी लिखते है—"एमर्सन कालेजके सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी तो थे नही, फिर भी उनकी गणना अच्छे विद्यार्थियोमें अवश्य की जाती थी। वे कभी आलसमे अपना समय नही गँवाते थे और न कभी क्षुद्र बातोमे उनका वक्त जाता था। उनका आचरण सर्वथा निर्दोष था। उनके सहपाठी अन्य विद्यार्थी उनके प्रति श्रद्धा और प्रेमके भाव रखते थे। दूसरे विद्यार्थियोसे मिलते समय उनमे एक शिष्टतापूर्ण झिझक दीख पडती थी और उनकी वह आदत आगे भी बनी रही। क्लासमें उनका दर्जा बहुत ऊँचा नही था और यदि आगे चलकर वे इतने महान् न बन गये होते तो उनके सहपाठियोको उनके द्वारा कालेजके दिनोकी याद करनेकी कोई विशेष सम्भावना न थी।. मै उनके साथ दूर-दूर तक टहलनेके लिए जाया करता था। बहुत दूर तक चलकर तब कही हम विश्राम लिया करते थे—कभी औवर्न पर्वतके पास, तो कभी किसी अन्य स्थानपर। एमर्सनको बाते करनेका शौक नही था। श्रोताओपर प्रभाव डालनेके उद्देश्यसे वे कभी नही बोलते थे, जो कुछ वे बोलते थे, बहुत सोच-समझ और जाँच-तौलकर, पर उनके कहनेके ढगमें कुछ चमत्कार था और उनकी बाते अकसर बहुत दिनो तक याद रहती थी। उदार भी वे बहुत थे। आगे चलकर एमर्सनके एक सहपाठीको युद्धके कारण बडी हानि उठानी पडी, उसके दो लडके मारे गये। एमर्सनने उस समय अपने पुराने सहपाठियोसे उसके लिए चन्दा किया और स्वय एक अच्छी रकम अपने पाससे दी।"

बाल्यावस्थामे एमर्सनके जीवनपर तीन स्त्रियोका बडा प्रभाव पडा और तत्कालीन सस्कारोने उनके जीवनको उच्चकोटिका बना दिया। एक तो स्वय उनकी माता, दूसरी उनकी बुआ और तीसरी उनकी शिक्षिका। उनकी माताजी, जैसा हम ऊपर कह चुके है, बडी भक्त थी, धैर्यकी साक्षात मूर्ति थी और गृह-कार्यमें वे अत्यन्त कुशल थी। उनकी कष्टसहिष्णुता तथा क्षमाशीलता भी आदर्श थी। विधवा होनेपर उन्होने जैसे तप और

त्यागके साथ अपनी गृहस्थी चलाई, उसका प्रभाव एमर्सनके स्वभावपर पडे विना रह नही सकता था। उनकी शिक्षिका श्रीमती सारा ब्रेडफोर्ड विदुषी थी, और वाल्यावस्थामे एमर्सन की पढाईका प्रवन्ध उन्हीके हाथमे था। पर सवसे अधिक प्रभाव पडा उनकी वुआ मेरी मूडी एमर्सनका। अपने भतीजेपर वे कठोर शासन करती, उसकी वुद्धिके विकासके लिए प्रयत्नशील रहती, चरित्रपर पूरा-पूरा ध्यान रखती, त्रुटियोके लिए डाट-फटकार वतलाती और निरन्तर उत्साहित भी किया करती थी। स्वय एमर्सनके हृदयमे अपनी वुआके प्रति अनन्य श्रद्धा थी और वडे हो जानेपर भी वे वुआके उपदेशोसे लाभ उठाते रहे। वुआने अपने भतीजेको जो पत्र लिखे थे, वे वडे महत्त्वपूर्ण थे। उनके दो पत्रोके अश सुन लीजिए—

"Solitude, which to people not talented to deviate from the beaten track is the safe ground of mediocrity, is to learning and genius the only sure layrinth—though sometimes gloomy—to form the eagle wing that will bear one farther than suns and stars Would to Providence that your unfoldings might be there!—that it were not a wild and fruitless wish that you could be disunited form travelling with the souls of other men; of living and breathing, reading and writing, with one vital time-fated idea—their opinions"

अर्थात्—"एकान्त मध्यम दर्जेकी वुद्धिवाले आदमियोके लिए जो लकीरके फकीर वने रहना चाहते है और जिनमे पुरानी लीकसे हटकर अपना मार्ग वनानेकी सामर्थ्य नही है, एक सुरक्षित स्थान है, जहाँ वे अपनी इज्जत वचा सकते है।* लेकिन यही एकान्त विद्वानो तथा प्रतिभाशील

* 'विभूषणं मौनमपण्डितानाम्'

व्यक्तियोकी प्रतिभाके विकासके लिए भी अत्यन्त आवश्यक वस्तु है, क्योकि एकान्तमें ही उनके वे पर उग सकते है, जो उन्हे गरुड पक्षीकी भाँति सूर्य और चन्द्रसे भी अधिक दूरी तक ले जा सकते है। ईश्वर करे कि तुम्हारी प्रतिभाका विकास उसी एकान्तमें हो और तुम्हे दूसरे लोगोकी आत्माके साथ न तो यात्रा करनी पड़े और न उनके साथ रहने, साँस लेने, लिखने-पढने तथा उन्हीकी सम्मतियोको दुहरानेके लिए मजबूर होना पडे।"

एक दूसरी चिट्ठीमें बुआने एमर्सनको लिखा था—

"Scorn trifles, lift your aims; do what you are afraid to do. Sublimity of character must come from sublimity of motive."

अर्थात्—"क्षुद्र बातोसे घृणा करो और अपने उद्देश्यको ऊँचा रखो। ऐसे काम करो, जिन्हे करते हुए तुम्हे डर लगता हो। उद्देश्यके उच्च होनेपर ही चरित्र उच्च बन सकता है।"

इन उद्धरणोसे पाठक अनुमान कर सकते है कि एमर्सनके चरित्र-निर्माणमें उनकी बुआका कितना हाथ रहा होगा।

एमर्सनके बड़े भाई विलियम बोस्टनमें शिक्षकका काम करते थे और स्वय एमर्सन भी ग्रेजुएट होनेके बाद यही काम करने लगे। सन् १८२५–२६ में वे चेम्सफोर्ड नगरके एक स्कूलमे पढाया करते थे। उन दिनो ऐबट नामक एक विद्यार्थी उनसे पढा करता था। आगे चलकर वह जज बन गया। जज ऐबट अपने गुरुके विषयमें लिखते है—"एमर्सन बडे गम्भीर और शान्त रहा करते थे और उनका चेहरा भी बडा प्रभावशाली था। उनके व्यक्तित्वमे एक विचित्र मनोहर आकर्षण पाया जाता था। न वे कभी सख्ती करते थे और न कठोर वचन बोलते थे। शारीरिक दड तो कभी देते ही न थे। कभी किसीको सजा देनी होती तो एकाध बात कह देते और उसीका बालकोपर बडा प्रभाव पडता था। किसी

छोटे लडकेने कोई अपराध किया। एमर्सनने उसकी ओर मुंडकर बडी गम्भीरतापूर्वक केवल दो शब्द कहे—'Oh sad'—'आह! दुखकी बात है।' यह दड उस लडकेके लिए बहुत काफी था। लडके उनसे बहुत प्रेम करते थे। एमर्सन अपने विद्यार्थियोको घरपर पढनेके लिए किसी अच्छी पुस्तकका—उदाहरणार्थ प्लूटार्क लिखित जीवन-चरितका—कोई अश दे दिया करते थे और दूसरे दिन उनसे उसका भावार्थ पूछा करते थे। इससे उन्हे विद्यार्थियोकी धारणाशक्तिका अनुमान हो जाता था। उनकी आँखोसे एक विचित्र प्रकारकी दूरदर्शिता प्रकट होती थी। ऐसा ज्ञात होता था, मानो वे किसी दूरकी वस्तु को देख रही है। मुझ पर किसी दूसरेका इतना प्रभाव नही पडा, जितना एमर्सनका।"

ग्रैजुएट हो जानेके बाद कई वर्षतक आपने पादरीगीरीका काम सीखा और ११ मार्च सन् १८१९ मे वे पादरी बना दिये गए, पर इस पदपर वे बहुत दिनो तक नही रह सके। किसी धार्मिक क्रिया-काण्डके विषयपर उनका मतभेद हो गया और सन् १८३२ मे उन्होने अपने पदसे त्यागपत्र दे दिया। एमर्सन पूर्णस्वाधीनताके समर्थक थे, और अन्तरात्माकी आवाजको सुनकर तदनुरूप कार्य करना ही उनके लिए सबसे बड़ा धर्म था। बाह्य आडम्बरो और क्रिया-काण्डोसे उन्हें बिलकुल सहानुभूति न थी। अपना त्यागपत्र देते हुए उन्होने लिखा था—"बाह्य क्रिया-काण्डवाले धर्मोके दिन अब बीत चुके और अब हमे अपनी आत्माका उद्धार ही धर्मका मुख्य अग मानना चाहिए। यहूदियोके धर्ममें केवल बाहरी क्रिया-काण्ड ही थे, उसमें शरीर-ही-शरीर था, आत्मा नही थी—जीवनका अभाव था। उस समय सर्वशक्तिमान् परमात्माने एक महान् आत्माको* लोगोको यह सिखलानेके लिए इस भूमिपर भेजा कि परमात्माकी सेवा हृदय द्वारा की

---

*ईसामसीह

जानी चाहिए और सत्पुरुष बनना ही सच्चा धार्मिक जीवन है। यज्ञ तो धुआँ है और बाहरी क्रिया-काण्ड छायामात्र है।"

ऐसे उदार विचारवाला आदमी भला गिरजाघरकी चहारदीवारीमे कबतक बन्द रह सकता था? स्वय एमर्सनके लिए तथा स्वाधीनता-प्रेमी ससारके लिए यह अच्छा ही हुआ कि वे गिरजाघरकी गुलामीसे मुक्त हो गए। यदि वे पादरी बने रहते तो उनका सन्देश बोस्टन नगरके अथवा अपने प्रातके समाज तक ही परिमित रहता—समुद्रो को पारकर देश-देशान्तरो तक पहुँचनेकी उसमे शक्ति कदापि न होती।

सितम्बर सन् १८२९ मे उनका प्रथम विवाह हुआ, पर फरवरी सन् १८३२ मे उनकी पत्नीका देहान्त क्षयरोगके कारण हो गया।

सन् १८३३ मे एमर्सनने यूरोपकी यात्रा की और वहाँके भिन्न-भिन्न नगरोमे व्याख्यान दिये। इन व्याख्यानोने सहस्रो श्रोताओको मुग्ध कर लिया। एक लेखकने उनके भाषणके प्रभावका वर्णन इन शब्दोमे किया है—

"इस प्रकारका भाषण ऐडिनबरामे तो पहले कभी सुना नही गया था और कितने ही लोग उसे सुनकर दग रह गये। विचारोमे अद्भुत मौलिकता थी और जिस भाषामे वे प्रकट किये गए थे, वह और भी मनोहर थी। उनकी चाल-ढालमे शान्त गम्भीरता थी। श्रोताओपर असर डालनेके लिए वे किसी कृत्रिम हावभाव का आश्रय नही लेते थे। उनके भाषणका ढग सीधा-सादा था और उसमे दम्भ तो नाममात्रको नही था। उनका स्वर बडा मधुर था और वह अन्तस्तल तक पहुँच जाता था। वैसा स्वर हमने आज तक किसी दूसरेका नही सुना।"

"तासु मधुर स्वरकी ध्वनि हिरदै माँहि समाई,
बीत गई बहु बरस अजहुँ लौं परै सुनाई।"

एक दूसरे सज्जन लिखते है—"एक दिन हमारे गिरजाघरमे भाषण देनेके लिए एक महात्मा पधारे, जिनके चेहरेसे गम्भीरता और उदारता टपकती थी। उन्होने इस प्रकार प्रार्थना की, मानो कोई देवदूत प्रार्थना कर रहा हो। हमारा बाजा बहुत सुन्दर था, पर एमर्सनके मधुर स्वरके बाद तो उसका स्वर फीका पड गया। भाषणके विषयमे मुझे केवल इतना स्मरण है कि उसमे सादगी और बुद्धिमानीका एक अद्भुत और मनोहर सम्मेलन था। भाषणके बीचमे वे प्रकृतिके दृष्टान्त देते जाते थे, और ऐसे कोमल तथा आकर्षक दृष्टान्त मैने तो पहले कभी नही सुने थे। दार्शनिक दृष्टिसे भाषणमे जो नवीनता और ताजगी थी, उसे मै अच्छी तरह भले ही न समझ सका होऊँ, पर वे प्राकृतिक दृष्टान्त खूब अच्छी तरह मेरी समझमे आ गये।"

यूरोपसे लौटनेके बाद एमर्सनने कौनकार्डको अपना निवास-स्थान बना लिया और उनके जीवनका अधिकाश वहीपर व्यतीत हुआ। वहाँसे दूरपर स्थित एक पर्वतकी श्रेणियाँ दीख पडती थी। पास ही एक सुन्दर वन था, विशाल एल्म वृक्ष जिसके गौरवको बढा रहे थे। आस-पास मनोहर तालाब भी थे। वालडेन (Walden) नामक तालाब भी इसके निकट ही था, जिसके नाम पर एमर्सनके सहयोगी सुप्रसिद्ध अमेरिकन लेखक थोरोने अपनी एक पुस्तक लिखी है और जो अमेरिकन साहित्यमे अमर हो चुकी है। एक छोटीसी नदी भी इसके नजदीक थी। कौनकार्डको एमर्सनने इसलिए चुना था कि वहाँ उन्हे एकान्त खूब मिल सकता था और साथ ही बोस्टन नगरके निकट होनेके कारण इच्छा होने पर उन्हे मिलने-जुलनेका अवसर भी मिल जाता था। क्या ही अच्छा हो, यदि हिन्दीके लेखको तथा कवियोको ऐसे ही सुन्दर स्थान रहनेके लिए मिले! साहित्यिक आदमियोके लिए एकान्तकी तो अत्यन्त आवश्यकता है ही, पर कभी-कभी सत्सगकी भी उन्हे जरूरत पड जाती है।

एमर्सन प्रकृतिके अत्यन्त प्रेमी थे। वे नित्यप्रति वन-उपवनकी

सैर करनेके लिये जाया करते थे और वहाँ पर जो विचार उनके मनमें आया करते थे, उन्हे नोट कर लेते थे, और फिर इन्ही विचारोको मिलाकर वे व्याख्यानोका रूप दे दिया करते थे, उन्होने एक जगह लिखा है—

"वन-उपवनको मै इसलिए जाता हूँ कि वहाँपर प्रकृतिका सन्देश सुनूँ। इन विचारोका जन्मदाता मै नही हूँ, वे मेरे पास आते है, और मै तो केवल उनका रिपोर्टर हूँ। मेरी नोट की हुई चीजोमें कोई शृखला नही होती, उनसे किसी विशाल भवनका निर्माण नही होता, ईंटोका समूह-मात्र है।" इस कथनसे एमर्सनकी नम्रता प्रकट होती है। हरएक आदमी तो वन-उपवनमे जाकर इस प्रकारके सन्देश नही सुन सकता। इन सन्देशोको ग्रहण करनेके लिए भी तो अद्भुत मस्तिष्करूपी यत्रकी आवश्यकता है, और एमर्सन जैसा मस्तिष्क तो लाखो-करोडोमे एकाधको ही मिलता है। एक जगह एमर्सनने लिखा था—

"I am born a poet—of a low class, no doubt, yet a poet. My singing, be sure, is very husky, and is for the most part in prose. Still I am a poet in the sense of a perceiver and dear lover of harmonies, that are in the soul and in the matter and specially of the correspondencies between these and those. A sunset, forest, a snowstorm, a certain river view, are more to me than many friends, and do ordinarily divide my day with my books'

अर्थात्—"मै जन्मतः कवि हूँ—हाँ, यह बात दूसरी है कि मै निम्न-कोटिका कवि हूँ, पर कवि जरूर हूँ। मै इस बातको मानता हूँ कि मेरा गाना बडा रूखा है, और उसका अधिकाश भाग गद्यमें है, पर मै अपनेको कवि इस दृष्टिसे मानता हूँ कि प्रकृति तथा आत्माकी एकताका मैं

द्रष्टा तथा प्रेमी भी हूँ, और विशेषत दोनोकी समानताओंको मैं भलीभाँति देख सकता हूँ। मेरे लिए सूर्यास्त, वन, हिमपात, नदी-तटके दृश्य आदिका महत्त्व मित्रोसे कही अधिक है, और मेरा जितना समय पुस्तक पढनेमे बीतता है उतना ही उपर्युक्त प्राकृतिक सौन्दर्योके निरीक्षणमे।"

राइस और गोल्ड नामक दो विद्यार्थी अपनी बाल्यावस्थामे एक बार एमर्सनके साथ वनकी सैर करनेके लिए गये थे। राइसने, जो आगे चलकर एक प्रान्तके गवर्नर हुए और Honourable Alexander Rice के नामसे हुए, लिखा है—"हम लोग वनके निकट पहुँचे और उस समय हमने अपनी टोपियाँ उतार ली। एमर्सनने कहा—'बालको! देखो, हमे यहाँपर विश्वात्माके अस्तित्वका प्रमाण मिलता है। पवन अपनी भाषामे हमसे पूछती है—कहिये, क्या हालचाल है? कैसी तबियत है? और हम भी सम्मानपूर्वक उसे नमस्कार करते है और स्वय भी उससे यही प्रश्न करते है। वृक्षोकी हिलती हुई डालियाँ यही सवाल करती है, पुष्प यही प्रश्न पूछते है और शस्यश्यामल क्षेत्रोसे भी यही ध्वनि निकलती है। कलकल निनाद करता हुआ नाला भी अपने मधुर सगीत द्वारा यही सवाल पूछ रहा है, और सब पशु-पक्षी, जीव-जन्तु—प्रत्येक सजीव पदार्थ—उसी विश्वव्याप्त दैवी भावनाका अनुभव कर रहे है, और जब हमारा उनका मेल होता है, तो हम एक-दूसरेका इसी प्रकार अभिवादन करते है, और विश्वात्माके अभिवादनका प्रकार भी यही है।' तत्पश्चात् हम लोग जगलमे टहलते रहे। टहलते हुये और क्या-क्या बातचीत हुई, इसका मुझे अब स्मरण नही रहा, पर एक बात मुझे याद है, वह यह कि उस दिन मैं आश्चर्यसे भरा हुआ घर लौटा और रास्ते-भर मै विश्वात्माके रहस्यमय स्वप्नका तथा उस अजीब आदमीका, जिसके ससर्गमे आनेका मौका मुझे पहली ही बार मिला था, विचार करता रहा। एमर्सनके इस ससर्गका मुझपर यह प्रभाव पडा कि मेरी विचार-धाराको एक नवीन दिशा

मिल गई, और जीवन-भर मुझे उससे अत्यन्त आनन्द मिलता रहा तथा इसी संसर्गके द्वारा मुझे कोरमकोर धार्मिक सिद्धान्तो तथा आत्माकी असली धार्मिकताके बीचका अन्तर समझनेकी शिक्षा मिली।"

मई १९३२]

: ८ :

उपन्यासकार तुर्गनेव

जिन रशियन लेखकोकी प्रतिभाके कारण रूसी साहित्य ससारके अन्य भाषा-भाषियोके आदरका पात्र बना है, उनमे टाल्सटाय, तुर्गनेव, डोस्टोवस्की, गार्की और चैखवके नाम विशेषत उल्लेख-योग्य है। इनमे टाल्सटायके अनेक ग्रन्थोका हिन्दीमे अनुवाद हो चुका है और हिन्दी भाषा-भाषी उनसे काफी परिचित भी है। उनके कई जीवन-चरित भी देशी भाषाओंमें प्रकाशित हो चुके है। डोस्टोवस्कीका भी कोई उपन्यास हिन्दीमे अनुवादित होकर प्रकाशित हो चुका है। गार्कीके एक उपन्यासका हिन्दी अनुवाद अभी छपा है, चैखवकी एकाध कहानी कही छपी हमने देखी है, पर तुर्गनेवकी ओर हिन्दी-जनताका ध्यान अभी अधिक नही गया है। हिन्दी भाषा-भाषियोका कर्तव्य है कि जहाँ वे मौलिक ग्रन्थोसे अपने साहित्यके भाडारकी पूर्ति करे, वहाँ साथ-ही-साथ ससारके साहित्यके उत्तमोत्तम ग्रन्थोका अनुवाद भी हिन्दीमे प्रकाशित करे। जगतके उन महारथियोमे, जिनके ग्रन्थ केवल एक प्रान्त या एक देशके लिए ही निर्मित नही होते, बल्कि जिनके भाव समुद्रो, वनो और महाद्वीपोकी दूरीको चीरते हुए प्रत्येक सहृदय मनुष्यके अन्तस्तल तक पहुँचनेकी शक्ति रखते हैं—तुर्गनेवकी गणना निस्सकोच की जा सकती है।

तुर्गनेवका जन्म २८ अक्टूबर सन् १८१८ मे आर्यल नामक स्थानमे हुआ था। उनकी माताका नाम वार्वरा पैट्रोवना और पिताका नाम लेफ्टिनेन्ट तुर्गनेव था। माताके यहाँ काफी धन-सम्पत्ति थी। हजारों एकड़ भूमि और पाँच हजार दास-दासियाँ थी। पिताका शरीर गठा

हुआ और कन्धे चौडे थे। वे लम्बे कदके फौजी आदमी थे। माता भोग-विलासप्रिय और सदा अस्वस्थ रहनेवाली थी। तुर्गनेवके शरीरका गठन तो अपने पिताके तुल्य था, पर स्वास्थ्यपर माताकी अस्वस्थताका जबरदस्त प्रभाव पडा था।

चार वर्षकी उम्रमे तुर्गनेवको अपने माता-पिताके साथ जर्मनी, फ्रान्स और स्विट्जरलैण्ड आदि देशोकी यात्राका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। नौ वर्षकी अवस्था तक तुर्गनेवको ग्राम्य जीवन व्यतीत करना पडा। माता-पिताकी जमीदारी थी, सैकडो दास-दासियाँ थी और सुखके साधनोकी कोई कमी नही थी। आसपासका प्राकृतिक दृश्य बड़ा मनोहर था। घरसे निकलकर वह खेतो तथा उपवनोकी सैर किया करते थे। कही गिल-हरियोको एक डालसे दूसरी डालपर उछलते देखते तो कही सुन्दर पुष्पोकी सुगन्ध लेते, कभी तालाबमे मछलियोको अपने हाथसे आटा खिलाते तो कभी नावमे बैठकर सरोवरकी सैर करते। भाँति-भाँतिके पक्षियोका मधुर कलरव उसके कानोको प्रिय हो गया था और नाना प्रकारके वृक्षोसे मानो उन्होने मैत्री स्थापित कर ली थी। बाल्यावस्थाके सस्कार जीवन-भर रहते है। तुर्गनेवके उपन्यासोमे प्राकृतिक दृश्योंका जो मनोहर वर्णन स्थान-स्थानपर मिलता है, उसके मूलमे बाल्यावस्थाके ये सस्कार ही थे।

तुर्गनेवके माता-पिताका कोई आदर्श जीवन नही था। नौकर-चाकरो-की भरमार थी। अतिथियोका आवागमन रहता था। दैनिक कार्यक्रम असयमी जमीदारोकी तरहका था। प्रात काल लोमडीके शिकारमे बीतता, दोपहरको डटकर भोजन और विश्राम होता और सन्ध्याके समय घरपर ही नाटक या नाच होता। उनके पिताजी कोई विशेष चरित्रवान् व्यक्ति न थे। कम-से-कम वे एकपत्नीव्रतके तो कायल नही थे और अनेक दासियोसे उनके अनुचित सबधकी बात कही जाती है। आदमी सीधे-सादे और लापरवाह थे। चूँकि उन्होने एक धनाढय लडकीसे विवाह किया था, इसलिए अपनी पत्नीका रौब उनपर गालिब रहता था। तुर्गनेवकी

माताका स्वभाव वहुत ही खराव था। दयाका तो उनमे लेश नही था। ज़रासे अपराध पर दास-दासियोको कोडे लगवाना उनके लिए मामूली-सी वात थी। कहा जाता है कि एक वार दो किसानोको उन्होने साइबेरिया भेजे जानेकी (जो काले पानीके समान भयकर दड था) सज़ा दी थी। उन वेचारोका अपराध केवल इतना ही था कि जिस समय वह वगीचेमे टहलने आई थी, उस समय कार्यमे व्यस्त होनेके कारण वे उन्हे सलाम करना भूल गये थे। एक वार तुर्गनेवके वडे भाईके किसी अपराध पर तुर्गनेवकी माताने अपने हाथसे उसके चूतडोपर दस कोडे जमाये और स्वय इस भयकर कार्यको करते हुए वेहोश-सी हो गई। वह वच्चा नगे-वदन खडा हुआ कांप रहा था। मांकी यह दशा देखकर वह अपना रोना वन्दकर चिल्लाने लगा—"अरे! अम्माको पानी लाओ, पानी लाओ।"

तुर्गनेवने वडे होनेपर एक वार कहा था—"यदि मुझसे छोटा-सा भी कसूर वन जाता तो पहले तो मेरे शिक्षक मुझे डॉट-फटकार वताते, उसके वाद मुझपर कोडे पडते। खाना वन्द कर दिया जाता और मुझे वगीचेमे भूखे घूमना पडता! आँसू वह-वहकर मेरे मुँहमे आते और मै उनका नमकीन स्वाद लेकर अपनेको सन्तुष्ट कर लेता!" माताकी यह कठोरता तुर्गनेवको जीवन-भर नही भूली। तुर्गनेवने अपनी सुप्रसिद्ध कहानी 'मूमूं' मे जिस क्रूर-स्वभाव स्त्रीका चित्र खीचा है, वह सम्भवत उनकी माताका ही चरित्र-चित्रण है।

एक वार तो माताके अत्याचारोसे पीडित होकर तुर्गनेवने घरसे निकल भागनेका विचार कर लिया था। यही नही, वल्कि एक रातको वारह वजे वे घरसे चल भी दिये थे, पर जर्मन पढानेवाले एक शिक्षकने उन्हे घरसे वाहर जाते देख लिया और समझा-वुझाकर रोक लिया। माताके अत्याचारोका वालक तुर्गनेवके स्वभावपर वडा असर पडा, उसके पेटमे धघका बैठ गया, स्वतन्त्र-रूपसे कार्य करनेकी प्रवृत्ति ही जाती रही। तुर्गनेवमे अपने अधिकारोके लिए लडने-झगडनेके साहसका जो

अभाव था, उसका मूल कारण यही था कि लडकपनमे अपनी माताके अत्याचारोको देखते-देखते उनकी इच्छा-शक्ति निर्वल हो गई थी।

वाल्यावस्थामें भी तुर्गनेवमे चीजोके सौन्दर्य अथवा कुरूपताकी जाँच करनेका गुण दृष्टिगोचर होता था। एक बार राज-घरानेकी एक बुढिया तुर्गनेवकी मातासे मिलने आई। माताने बडे डरते हुए अपना बालक उनकी गोदमे दिया। थोड़ी देरतक उस बुढियाकी शकल-सूरत देखकर तुर्गनेवने कहा—"तुम तो बिलकुल बँदरिया हो।" बात सोलह्-आना ठीक थी। उस वक्त तो तुर्गनेवकी माता चुप रही पर पीछे उसने खूब कोडे जमाये।

एक बार कोई थर्ड-क्लास कहानी-लेखक तुर्गनेवके घरपर पधारे। बालक तुर्गनेवने अवतक रूसी भाषाके किसी लेखकके दर्शन नही किये थे। माताने कहा—"अच्छा, इस कहानीको पढकर सुनाओ तो सही।" कहानी उन्ही लेखक महोदयकी थी। तुर्गनेवने कहानी तो पढकर सुना दी। फिर आप लेखक महाशयके मुँहपर ही बोले—"आपकी कहानी अच्छी तो है, पर क्राइलोवकी कहानियाँ आपसे अच्छी होती है।" इस समालोचना-प्रवृत्तिका दुष्परिणाम तुर्गनेवकी पीठको भोगना पडा, जिसकी याद उन्हे बहुत दिनो तक रही। बड़े होनेपर एक बार तुर्गनेवने कहा था—"उस कहानी-लेखकके मुँहपर ही इस तरहकी सच बात कह देनेकी वजहसे मेरी माँ बहुत ही नाराज़ हो गई और मुझे इतने अधिक कोड़े लगाये कि अपनी मातृ-भाषाके लेखककी प्रथम भेटको मै ज़िन्दगी-भर नही भूल सकता।"

जिस तरह आजकल हिन्दुस्तानमे बड़े-बडे शिक्षितोके कुटुम्बोमे अग्रेज़ीपनकी बू घुस जाती है, उसी प्रकार उन दिनो रूसमे फ्रेंच भाषाकी इज्ज़त थी। रूसी भाषाको स्वयं रूसी लोग गँवारू भाषा समझते थे। तुर्गनेवको प्रारम्भमे फ्रेंच तथा जर्मन भाषाका अभ्यास कराया गया था। तुर्गनेव ने रूसी भाषा अपनी दास-दासियोके संसर्गसे ही

सीखी। शायद किसी नौकरने ही उन्हे रूसी भाषा लिखना-पढना सिखलाया। आठ वर्षकी उम्रमे उन्होंने अपने एक नौकरके लडकेके साथ अपने घरकी पुरानी अलमारीमेंसे रूसी भाषाकी कविताकी कुछ किताबें चुराकर पढना प्रारम्भ कर दिया।

नौ वर्षकी उम्रमे तुर्गनेव अपने माता-पिताके साथ मास्को चले आये और वहाँ वे एक छात्रालयमे भर्ती करा दिये गए। यहीपर सन् १८२९ मे उन्होंने अंग्रेजी भाषाका अध्ययन प्रारम्भ किया। आगे चलकर अंग्रेजी भाषाके ज्ञानके कारण उन्हे शेक्सपियर, शेली, कीट्स और वायरन इत्यादि कवियोकी कविताका आनन्द लेनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके वाद घरपर ही पढकर उन्होंने मास्को-विश्वविद्यालयकी मैट्रिककी परीक्षा दी। उस समय उनकी उम्र १४ वर्षकी थी। इसके वाद वे विश्वविद्यालयमे भर्ती हुए। वहाँ उनका मुख्य विषय था इतिहास और दर्शनशास्त्र। सयुक्तराज्य अमेरिकाके प्रति उनके हृदयमे विशेष प्रेम था, इसलिए साथके लडके उन्हे मजाकमे 'अमेरिकन' कहा करते थे। इसके वाद वे सेन्ट पीटर्सवर्गके विश्वविद्यालयमें भर्ती हुए। इन्ही दिनों उनके पिताकी मृत्यु हो गई। उस समय उनकी माता इटलीमे स्वास्थ्य-लाभ करनेके लिए गई हुई थी।

दास-दासियोसे जहाँ तुर्गनेवको रूसी भाषाका ज्ञान प्राप्त हुआ, वहाँ उन्हें दुश्चरित्रताकी शिक्षा भी इन्ही दास-दासियोने दी। वडे घरोके लडकोको नौकर-चाकर ही अक्सर वदचलन वना देते है। तुर्गनेवके असयमित जीवनका कारण वे ही हुए। तुर्गनेवके चरित-लेखकने उनकी यौवनावस्थाके अनेक घासलेटी किस्से लिखे है, जिन्हे यहाँ उद्धृत करनेकी आवश्यकता नही है। तुर्गनेवने विवाह नही किया और अपने जीवन-भर वे प्रेममें ही फँसते रहे—कभी किसी दासीसे प्रेम किया तो कभी किसी विवाहिता स्त्रीसे, और कभी किसी ऐक्ट्रेस या नटीसे ही। आगे चलकर तुर्गनेवके जीवनमे जो निराशाके दृश्य देखनेमें आते है, उनका मुख्य कारण यही सयम-हीनता ही प्रतीत होती है। इस विषयपर हम

अधिक नही लिखना चाहते। केवल एक पत्रका, जो तुर्गनेवने एक नवयुवक साहित्य-सेवीको लिखा था, कुछ अंश उद्धृत करते है—

"बडे खेदकी बात है कि तुम किसी एक लडकीके ही प्रेममे उन्मत्त हो गये हो। यदि किसी ऐसी लडकीसे जो स्वभावमे विलकुल विपरीत हो, विवाह हो जाय, तो इससे लेखकको कुछ मसाला मिल भी सकता है, पर विवाह करके निश्चिन्ततासे वैवाहिक जीवन व्यतीत करनेमें कुछ मजा नही है। कलाकी उन्नतिके लिए कामेच्छाका तृप्त करना उतना आवश्यक नही है, जितना भिन्न-भिन्न स्थानोसे रस ग्रहण करना। कम-से-कम मुझे तो लिखनेमे तभी आनन्द आता है, जब किसीसे प्रेम-सम्बन्ध चलता रहे, खास तौरसे किसी विवाहिता स्त्रीसे, जो अपनेको सयमित रख सके और अपना प्रबन्ध भी आप कर सके।"

तुर्गनेवके इस सिद्धान्तका अनुगमन भिन्न-भिन्न देशोके भिन्न-भिन्न लेखकोने किया है। हमने सुना है कि हमारे यहाँ भी एकाध ऐसे लेखक उत्पन्न हो गये है, जो इस प्रकारके विचार रखते है, पर निस्सन्देह यह मार्ग पतनका है। शक्ति सयममे है, असयममे नही। जो लोग महापुरुषोके दुर्गुणोकी नकल करके स्वय महापुरुष बनना चाहते है, वे वास्तवमें अपनेको गड्ढेमें गिराते है।

सेन्ट पीटर्सवर्गके विश्वविद्यालयमें पढनेके कुछ वर्ष बाद तुर्गनेव बर्लिन (जर्मनी) पढनेके लिए गये। तीन वर्ष तक वहाँ रहकर आपने बर्लिन-विश्वविद्यालयसे मैट्रिककी परीक्षा पास की और फिर दर्शनशास्त्र पढना शुरू किया। यहीपर उनकी मुलाकात सुप्रसिद्ध अराजकवादी बाकूनिनसे हुई और दोनोमें घनिष्ट मित्रता भी हो गई।

दर्शनशास्त्रकी परीक्षामे वे बडी योग्यता-पूर्वक पास तो हो गये, पर उनका मन पढनेमे लगता नही था। उनकी माता यह चाहती थी कि मेरा लडका भी एम० ए० पास हो जाय, पर तुर्गनेवकी रुचि डिग्रियोकी ओर बिलकुल नही थी। घरसे माताके पाससे जो रुपया आता था, वे

उसे नाटक देखनेमे उडा देते थे और अपने मित्र बाकूनिनके कर्जदारोको भी दे दिया करते थे। बर्लिनमें तुर्गनेव कभी किसी प्रसिद्ध साहित्यिक क्लबमे बातचीत करते हुए पाये जाते थे तो कभी किसी प्रसिद्ध ऐक्ट्रेसके साथ भोजन करते हुए।

तुर्गनेवने सत्रह-अठारह वर्षकी उम्रमे कविता करना प्रारम्भ कर दिया था। पहले तो उनकी माता इससे बडी प्रसन्न हुई और अपने लडकेको बडी बधाई भी दी, पर पीछे जब तुर्गनेवने उससे कहा—"मेरी किताबकी आलोचना हुई है"—तो वह रोने लगी और बोली—"यह बुरी बात है। कहाँ ऊँचे खानदानके बेटा तुम! और कहाँ वह पुरोहितका छोकरा, जिसने तुम्हारी किताबके बारेमे लिखा है!" तुर्गनेवकी माताकी समझमे लेखकका पेशा कोई बहुत सम्मानप्रद नही था। वह कहा करती थी कि लेखककी वृत्ति भले आदमियोके लायक नही।

तुर्गनेवकी प्रथम पुस्तक 'एक शिकारीके भ्रमण-वृत्तान्त'में रूसके ग्राम्य जीवनके दृश्य बडी करुणाजनक भाषामे दिखलाये गये थे। इसमें दास-दासियोकी दुर्दशाका चित्र छोटी-छोटी कहानियो द्वारा ऐसी सहृदयताके साथ खीचा गया था कि उन्हे पढकर जनताका हृदय द्रवित हो गया। रूसके जारसे लेकर साधारण पाठको तकने इस पुस्तकको पढा और गुलामोकी दशापर चार आँसू बहाये। इसमे सन्देह नही कि वहाकी दासत्व-प्रथाको बद करानेमे इस पुस्तकने बडी मदद दी थी। तुर्गनेवने एक बार कहा था—"खुद रूसी सम्राट् अलेक्जेण्डरने यह खबर मेरे पास भिजवाई थी कि दासत्व-प्रथाको बन्द करनेमें अन्य कारणोके साथ एक कारण मेरी पुस्तक 'एक शिकारीके भ्रमण-वृत्तान्त' का पढना भी था।" इस पुस्तकने रूसी साहित्य-ससारमे उनकी धाक जमा दी और उनके उत्साहको दुगुना कर दिया। इस पुस्तककी कहानियाँ पत्रोमे पहले अलग-अलग प्रकाशित हुई थी।

सन् १८५२ मे सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी गोगलका स्वर्गवास हो गया।

उनके विषयमे तुर्गनेवने सेन्ट पीटर्सबर्गके किसी पत्रके लिए एक लेख लिखा, पर सरकारी सेन्सरने इस लेखको अस्वीकृत करके छपनेसे रोक दिया। तुर्गनेवने उसी लेखको मास्को भेज दिया। मास्कोके सरकारी सेन्सरने उसे पास कर दिया। उसे इस बातका पता नही था कि यह लेख सेन्ट पीटर्सबर्गके सेन्सर-द्वारा अस्वीकृत हो चुका है। मास्कोमे जब यह लेख प्रकाशित हुआ तो पुलिसको बडा क्रोध आया। मामला रूसी जारके कानो तक पहुँचा। उन्होने हुक्म निकाल दिया कि तुर्गनेवको पकडकर जेलमें ठेल दिया जाय। तुर्गनेवको कारावासका दंड मिला। इससे उनकी लोक-प्रियता बढ गई। जहाँ देखो, वहाँ—सडकपर, बाजारमे, होटलोमें और घर-घरमे—तुर्गनेवकी चर्चा होने लगी। जिस जेलमे उन्हे रखा गया था, उसकी सडकपर तुर्गनेवके मित्रोकी गाडियोका ताँता लगा रहता था। कितनी ही युवतियाँ और युवक जेलखानेमे तुर्गनेवके दर्शनके लिए गये। यही जेलमे ही तुर्गनेवने अपनी सुप्रसिद्ध कहानी 'मूमू' लिखी थी, जिसे कार्लाइलने ससारकी सबसे अधिक करुणाजनक कहानी बतलाया था। तुर्गनेवको एक महीनेके जेलखानेके बाद रूसी जारने हुक्म दिया—"ये अपने ग्राममे अपनी ही कोठीमे नजरबन्द किये जायँ और इनपर पुलिसकी निगरानी रखी जाय।" तुर्गनेव इस प्रकार अपने घरपर ही कैद कर दिये गए। उन्होने अपने किसी मित्रको एक पत्रमे लिखा था—"मै अभी पूर्णतया मृत अवस्थाको प्राप्त नही हुआ, पर जैसी गम्भीर शान्तिमें मुझे यहाँ रहना पड़ता है, उससे मै अनुमान कर सकता हूँ कि कब्रमे कैसी शान्ति रहती होगी।"

तुर्गनेवने जितने ग्रन्थ प्रकाशित किये, उन सबका अग्रेजीमे अनुवाद हो गया है और यह ग्रन्थमाला William Heinemann. लन्दनसे मिल सकती है। अग्रेजीमे अनुवादित ग्रन्थोके नाम ये है—

(1) 'Rudin'

(2) 'A House of Gentlefolk'

(3) 'On the Eve'
(4) 'Fathers and Children'
(5) 'Smoke'
(6) 'Virgin Soil'
(7) 'A Sportsman's Sketches' इत्यादि ।

ये सब ग्रन्थ सत्रह भागोमे प्रकाशित हुए है। इनमे तेरह-चौदह भाग पढनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है। उपन्यास तथा गल्पोकी रचनाके विषयमे हमारा ज्ञान न-कुछके बराबर है और हमने इस प्रकारका साहित्य पढा भी बहुत कम है, फिर भी हम इतना अवश्य कहेगे कि मानव-स्वभावकी भिन्न-भिन्न दशाओका चित्रण करनेमे जिस हद तक तुर्गनेव सफल हुए है, उस हद तक पहुँचना किसी भी अच्छे-से-अच्छे लेखकके लिए अत्यन्त कठिन है। उन्नीसवी शताब्दीके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकारोमे उनकी गणना की जाती है और किसी-किसीका तो यह भी मत है कि उस शताब्दीके सर्वोत्तम कलाकारका पद तुर्गनेवको ही मिलना चाहिए।

तुर्गनेवमे सबसे बडी खूबी यह है कि उनकी रचनाओको पढते हुए कभी जी नही उकताता। वह अनावश्यक विवरणोसे अपने पृष्ठोको नही भरते। विक्टर ह्यूगोके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'ला मिज़रेबिल्स' को पढते समय बीच-बीचमे कभी लम्बे-लम्बे वृत्तान्तोसे तबीयत ऊब जाती है और ऐसा प्रतीत होता है कि मुख्य घटना-सूत्र हमारे हाथसे छूट गया। तुर्गनेवमे बडा भारी गुण यह है कि उनकी रचनाएँ पाठकके हृदयको इतना अधिक आकृष्ट कर लेती है कि वह उनको बिना समाप्त किये छोड नही सकता। तुर्गनेव न कभी कोई भद्दी बात कहते है और न कोई अनावश्यक प्रसग ही लाते है। शान्त समुद्रमें जब कोई जहाज़ बिना हिले-डुले चला जा रहा हो तो उस अवसरपर जहाजके यात्रियोको जो सुख होता है, वही सुख तुर्गनेवकी रचनाओमें है। तुर्गनेवके ग्रन्थोको पढना, मानो एक अत्यन्त सभ्य महापुरुषसे वार्तालाप करना है। एक निपुण चित्रकारकी भाँति

वे एकके बाद एक सुन्दर-से-सुन्दर चित्र खीचते जाते है और दर्शक उन्हे देखकर 'वाह! वाह!' कहने लगता है। तुर्गनेवने अपने समयके रूसी युवको तथा युवतियोके मनोभावोका विश्लेषण बडी खूबीसे किया है और उन्हे पढकर तत्कालीन रूसी जीवनका चित्र हृदयपटलपर खिच जाता है। तुर्गनेव करुण-रस लिखनेमे सिद्धहस्त थे और विषादकी एक हृदयवेधक रेखा उनकी सम्पूर्ण रचनाओमे चित्रित दीख पडती है। जनता हमारे ग्रन्थोको पढकर प्रसन्न होगी या नाराज, यह खयाल तुर्गनेवके दिमागमे कभी नही आया और इसी कारण जो कुछ उन्होने लिखा है, उसमें स्थायित्व है।

जब तुर्गनेवका उपन्यास 'पिता और पुत्र' (Fathers and Children) प्रकाशित हुआ था तो रूसी नवयुवक-समाजमे एक प्रकारकी हलचल-सी मच गई थी। रूसमे उस समय नवयुवकोका एक दल बन गया था, जो 'निहिलिस्ट' कहलाते थे। वे लोग दम्भ और पाखडके विरोधी थे, 'बाबावाक्य प्रमाणम्' की नीतिके प्रति उन्होने विद्रोह का झडा खडा कर दिया था और झूठे शिष्टाचारोको तिलाजलि दे दी थी। दासत्व-श्रृखलाओको तोड डालनेके लिए क्रान्तिके प्रारम्भमे उत्पन्न हुए नवयुवको-के हृदयमे जो बेचैनी हुआ करती है, वही बेचैनी उन 'निहिलिस्ट' लोगोमे थी। तुर्गनेवके उपन्यास 'पिता और पुत्र' ('Fatheıs and Children') मे मुख्य नायक 'बेजेरोव' निहिलिस्टका जो चित्र खीचा गया था, वह नवयुवकोको बहुत बुरा जँचा और उन्हे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो तुर्गनेवने उनका मजाक उडाया है! इससे तुर्गनेवकी लोक-प्रियताको बडा धक्का लगा। युवक-समाज हर जगह उनकी निन्दा करने लगा, पर तुर्गनेव एक सच्चे कलाकारकी तरह अपने मतपर अटल रहे। उन्होने कहा भी था—"बेजेरोवके चरित्र-चित्रणमे मीठी-मीठी बाते कहकर मै आसानीके साथ रूसी नवयुवकोको अपने पक्षमे ला सकता था, पर मैने ऐसा करना अनुचित समझा।" तुर्गनेवके इस कार्यसे हमे यही शिक्षा मिल सकती

है कि सच्चे कलाकारको कभी—'जैसी वहै बयार, पीठ तव तैसी दीजै' के सिद्धान्तका अनुकरण न करना चाहिए। कलाकारकी अटल श्रद्धा अपनी कलाके प्रति ही होना चाहिए । आज जो उसकी निन्दा करते है, कल वे ही उसकी प्रशसा करने लगेगे।

तुर्गनेवकी रचनाओपर उनके व्यक्तित्वकी गहरी छाप पडी हुई है और ऐसा प्रतीत होता है कि जो कुछ उन्होने लिखा है, वह गम्भीर अनुभवके बाद और अपने सुसस्कृत हृदयसे। कही उन्होने लेक्चर झाडनेका प्रयत्न नही किया, जैसा कि नवयुवक उपन्यास-लेखक प्राय किया करते है और न कही उपदेशक बननेकी चेष्टा की। यदि आप कुछ शिक्षा ग्रहण करना चाहते है तो उन चरित्रोसे करे, जिनका वर्णन उपन्यासोमें आया है। तुर्गनेवने जिन पात्रोकी रचना की है, उनके साथ उन्होनें वैसे ही प्रेमका और गम्भीरतापूर्ण बर्ताव किया है, जैसे कोई अपने पुत्र-पुत्रियोसे करता है! क्या मजाल कि एक भी भद्दा शब्द उनके मुँहसे निकल जाय! अपनी सस्कृति द्वारा तुर्गनेव ससारके बडे-बडे उपन्यास-लेखकोसे आगे बढ जाते है।

यद्यपि तुर्गनेवके उपन्यास 'पिता और पुत्र' के कारण उनके और क्रान्तिकारी नवयुवकोके बीचमे गलतफहमीकी एक दीवार-सी खडी हो गई थी, पर तुर्गनेवके हृदयमें अत्याचारके उन विरोधियोके प्रति सम्मान ही रहा। तुर्गनेवके जीवनके बहुतसे वर्ष स्वदेशसे बाहर जर्मनी अथवा फ्रान्समें बीते और वहाँ उन्हे रूससे भागे हुए क्रान्तिकारियोसे मिलनेके काफी अवसर प्राप्त हुए। तुर्गनेव स्वय खून-खच्चरके विरोधी थे, पर वे उन नवयुवकोके, जो अपनी जान हथेलीपर लिये फिरते थे, साहसकी प्रशसा किये विना नही रह सकते थे। जितने भी क्रान्तिकारी उन्हे मिल सके, उनसे वे अवश्य मिले थे। यही नही, वे रुपये-पैसेसे उनकी मदद भी करते थे। कम-से-कम तीन साल तक उन्होने जेनेवासे निकलनेवाले एक क्रान्तिकारी पत्रको पाच सौ फ्राककी वार्षिक सहायता दी थी। जिस समय रूसी

क्रान्तिकारी प्रिन्स क्रोपाटकिन जेलसे भागकर यूरोप चले आये थे, उस समय तुर्गनेवने एक प्रस्ताव किया था कि इस सुअवसरपर उन्हे एक भोज देना चाहिए।

प्रिन्स क्रोपाटकिनने अपने आत्म-चरितमे लिखा है—"मेरे मित्र पी० एल० लैवरोफसे तुर्गनेवने कहा, मुझे क्रोपाटकिनसे मिलाओ। मेरे रूसके जेलखानेसे सही-सलामत भाग निकलनेके उपलक्षमे उन्होने मुझे भोज भी दिया, जिसमे थोडेसे मित्र एकत्रित हुए थे। मैंने बडी श्रद्धापूर्वक तुर्गनेवके कमरेमे पैर रखा, क्योकि मै उन्हे अपना पूज्य मानता था। उन्होने अपनी पुस्तक शिकारीके भ्रमण-वृत्तान्त द्वारा रूसकी दासत्व-प्रथाके दोषोका भडाफोड करके मातृभूमिकी बडी सेवा की थी। रूसी स्त्रियोका चरित्र-चित्रण करनेमे तो उन्होने कमाल कर दिखलाया है। रूसी स्त्री-समाजके हृदय और मस्तिष्कमे कौन-कौन अद्भुत शक्तियाँ छिपी हुई हैं और वे पुरुषोको कितना अधिक प्रोत्साहित कर सकती है, यह बात उन्होने अपने उपन्यासोमे अच्छी तरह दरसा दी है। मुझपर और मेरे साथी सहस्रो ही रूसी नवयुवकोपर उनके उपन्यासोमे वर्णित रूसी स्त्रियोके चरित्रोका जो अमिट प्रभाव पडा है, वह स्त्रियोके अधिकारोपर लिखे हुए अच्छे-से-अच्छे लेखो द्वारा भी नही पड सकता था।. .एक बार तुर्गनेवने मुझसे पूछा था—'तुम मिश्किन नामक अराजकवादीको जानते हो? मै उसके बारेमे पूरा-पूरा हाल जानना चाहता हूँ। वह एक आदमी था, जिसमे निराशावादका नामोनिशान नही था।' मिश्किनपर रूसी सरकारने सन् १८७८ मे मुकदमा चलाया था। हमारे साथी अराजक-वादियोमें उसका व्यक्तित्व बडा जबरदस्त था। उन्नीसवी शताब्दीके औपन्यासिकोमे कलाकी दृष्टिसे इतनी अधिक श्रेष्ठता किसीने प्रदर्शित नही की, जितनी तुर्गनेवने। उनकी गद्य-रचनाएँ हम रूसी आदमियोके लिए सुन्दर-से-सुन्दर सगीतकी अपेक्षा भी अधिक मधुर तथा कर्णप्रिय है।"

कहा जाता है कि तुर्गनेवने अपने पास उन रूसी क्रान्तिकारियोके

चित्रोका सग्रह कर रखा था, जिन्हे ज़ारकी सरकारने फाँसीपर लटका दिया था।

तुर्गनेवके जीवनमें सबसे सुन्दर बात हमें उनकी साहित्य-सेवियोकी सहायता करनेकी प्रवृत्ति प्रतीत होती है। कितने ही नवयुवक लेखकोको प्रोत्साहित करके उन्होने आदमी बना दिया। वे अपने साथी लेखकोकी कीर्तिके लिए भरपूर प्रयत्न करते थे और कभी-कभी तो इसके वास्ते उन्हे अपनी गाँटसे भी बहुत-कुछ खर्च करना पड़ता था। कभी किसी लेखकका विदेशी पुस्तक-प्रकाशकोसे परिचय कराते थे, तो कभी किसीकी पुस्तककी भूमिका लिखते थे। कभी अनुवाद करते थे और कभी मित्रोके किये हुए अनुवादोका सशोधन करते थे। अनेक ग्रन्थकारोको उन्होने इस उम्मीदपर कि आगे चलकर उनकी पुस्तक बिकनेपर हमारे रुपये वापस मिल जायँगे, बहुतसा रुपया उधार दे दिया था। ग्रन्थकारोके साथ उनकी इतनी अधिक व्यापक सहानुभूति थी कि वे न केवल रूसी साहित्य-सेवियोकी ही, बल्कि फ्रेंच और जर्मन साहित्य-सेवियोकी भी उसी नि स्वार्थ भावसे सहायता करते थे। यूरोपके भिन्न-भिन्न भाषाओके लेखको और भिन्न-भिन्न देशोके प्रकाशकोमे वे एक प्रकारके अन्तर्राष्ट्रीय अवैतनिक दलाल बन गये थे, यही नही, बल्कि कभी-कभी तो अपनी गाँठसे पैसा खर्च करके वे यह काम किया करते थे। उनकी उस अनुपम सेवाका कारण यही था कि वे सच्चे-साहित्य-प्रेमी थे, हृदयके उदार थे और ईर्ष्या तो उनके स्वभावको छू तक नही गई थी। इसके सिवा एक बात और थी, वह यह कि उनके मुँहसे किसीको 'ना' नही निकलती थी। फ्रेंच लेखक मोपासाँको उन्होने बहुत-कुछ सहायता दी थी। उन्होने किसी फ्रेंच लेखककी फरासीसी पुस्तकका अनुवाद रूसी भाषामे कराया और उसका स्वय ही सशोधन किया। जब कोई रूसी प्रकाशक उस पुस्तकको छापनेके लिए राज़ी न हुआ तो आपने ग्रन्थकार महोदयको अपने पाससे एक हज़ार फ्राक दे दिये। किसी-किसी लेखकको वे बड़े विचित्र ढगसे मदद देते थे।

वे उनके लेखको किसी पत्रके पास भेजते और उस पत्रके सम्पादकको अपने पाससे रुपये भी भेज देते और यह कह देते कि ये लेखक महोदयको पत्रकी ओरसे पुरस्कारके रूपमे भेज दिये जायँ। एक फ्रेंच लेखक बडे कष्टमे थे। आपने उनकी पुस्तकका अनुवाद रूसी भाषामें किया और जो कुछ रुपया पुरस्कारमे मिला, उसे लेखकको दे दिया !

क्याही अच्छा हो यदि हमारी मातृभाषाके साधन-सम्पन्न साहित्य-सेवी तुर्गनेवके इस गुणका अनुकरण करे।

तुर्गनेव और टाल्सटायके स्वभावमे वडा अन्तर था। तुर्गनेवके लिए सर्वोच्च वस्तु कला थी, टाल्सटायके लिए जीवन-सुधार। महाकवि अकवरके शब्दोमे—"सखुन उनसे सँवरता है, सखुनसे मै सँवरता हूँ" वाली वात थी। अपनी युवावस्थामें टाल्सटायका जीवन भी वहुत काफी असयमी रहा था, पर पीछे उन्होंने अपनेको बड़ी खूबीसे सम्हाला। तुर्गनेवका जीवन सदा शाहाना ढगका ही रहा। तुर्गनेव उम्रमे टाल्सटायसे वडे थे। युवावस्थामें टाल्सटायके जीवनपर भी तुर्गनेवकी रचनाओंका काफी प्रभाव पडा था। खुद अपने लडकोको टाल्सटायने यही सलाह दी थी कि तुम तुर्गनेवके उपन्यास पढो, उनसे बढ़िया किसी दूसरी चीजकी सिफारिश मै नही कर सकता। तुर्गनेव भी टाल्सटायके बड़े प्रशसक थे, पर इन दोनोके वीच मित्रताका सम्बन्ध स्थापित नही हो सका। दूरसे तो वे एक-दूसरेके प्रति प्रेम रख सकते थे, पर मुलाकात होते ही दोनोमे झगड़ा हो जाता था। इस झगडेका कारण दोनोकी प्रकृतिकी भिन्नताके सिवा टाल्सटायका झक्कीपन भी था। युवावस्थामे टाल्सटायके स्वभावमें एक बड़ी त्रुटि यह थी कि वे बैठे-ठाले दूसरोसे झगड़ा मोल लिया करते थे। टाल्सटाय तथा तुर्गनेव दोनोके जीवन-चरितोमे इन झगड़ोका विस्तृत-वृत्तान्त पाया जाता है; पर अन्तमें दोनोमें फिर मेल हो गया था। जव तुर्गनेव पेरिसमे मृत्युशय्यापर पड़े हुए थे, टाल्सटायने उन्हे निम्न-लिखित पत्र भेजा था—

"आपकी बीमारीकी खबरसे मुझे बडी व्याकुलता हुई। जब मैंने सुना कि आपकी बीमारी भयकर है तब मेरी समझमे यह बात आई कि कितनी अधिक आपके प्रति मेरी श्रद्धा है। यदि आपकी मृत्यु मेरे सामने हुई तो मुझे बडा ही दुख होगा। शायद मैं ऐसी बाते अपनी मानसिक बीमारीके कारण ही सोचता होऊँ, या सम्भवत वे डाक्टर ही, जो आपकी बीमारीको भयकर बतलाते हैं, झूठ बोलते हो। परमात्मा करे कि हम लोग फिर एक-दूसरेको मिल सके। जब पहले-पहल मैंने आपकी भयकर बीमारीका वृत्तान्त सुना तो मैंने आपके पास पेरिस आनेका विचार किया। आप स्वय लिख सके तो स्वय, नही तो किसी दूसरेसे ही अपनी बीमारीका पूरा-पूरा हाल लिखाके भेजना। मै आपका अत्यन्त कृतज्ञ होऊँगा। प्यारे तुर्गनेव! मेरे पुराने मित्र, मै यहाँसे तुम्हारा आलिंगन करता हू।"

जब यह चिट्ठी तुर्गनेवके पास पहुँची, उस समय वे अत्यन्त निर्बल हो गये थे। बस, दिन गिन रहे थे। फिर भी उन्होने काँपते हुए हाथसे पेन्सिल पकडकर नीचे लिखी चिट्ठी टाल्सटायको लिखी—

"प्यारे लिओ निकोलेविच,*

मैंने तुम्हे बहुत दिनोसे कोई चिट्ठी नही भेजी, क्योकि मै बीमार रहा हूँ और सच बात तो यह है कि मै अपनी मृत्यु-शय्यापर लेटा हुआ हूँ। अब मुझे आराम हो नही सकता, इसलिए इस बारेमे खयाल करना ही फिजूल है। बस, मै एक बात तुमसे कहना चाहता हूँ, वह यह कि मै इस बातमे अपना बडा सौभाग्य समझता हूँ कि मै तुम्हारा समकालीन रहा। आज मै एक आखिरी प्रार्थना तुमसे करूँगा। मेरे मित्र, तुम अपने साहित्यिक कार्यको फिरसे हाथमे ले लो। तुम्हारी यह प्रतिभा उसी परमात्माकी देन है, जो ससारकी सभी वस्तुओका स्रोत है। यदि

---

*टाल्सटायका नाम।

मुझे कोई यह विश्वास दिला सके कि मेरी प्रार्थनाका तुमपर प्रभाव पडा तो न जाने मुझे कितनी अधिक प्रसन्नता होगी।

मै तो अब खतम हो चुका! डाक्टरोको तो अबतक इस बातका भी पता नही लग सका कि मुझे बीमारी क्या है। न चल-फिर सकता हूँ, न खा सकता हूँ और न सो सकता हूँ। इन बातोके लिखनेमे भी मुझे थकावट आती है। मेरे मित्र! रूस देशके महान् लेखक, तुम मेरी इस अन्तिम प्रार्थनाको स्वीकार करो। इस चिट्ठीकी पहुँच देना। आओ, आज एक बार फिर तुमसे, तुम्हारी पत्नीसे और तुम्हारे घरवालोसे हृदयसे लगाकर मिल लूँ। अब नही लिख सकता! थक गया।"

रूसके दो सर्वश्रेष्ठ साहित्य-सेवियोके ये पत्र वास्तवमे बडे हृदयवेधक है। सच्चे साहित्यिक ही इनके करुणरसका मूल्य समझ सकते है।

तुर्गनेव स्वभावके बडे नरम थे। हुक्म चलाना तो वे जानते ही नही थे। एक वार बडे जरूरी कामसे उन्हे अपने एक मित्रके यहाँ जानेकी आवश्यकता हुई। उन्होने गाडीवानसे कहा—"गाडी तैयार करो!" गाडी तैयार हुई। तुर्गनेव उसमें बैठ गये। थोडी दूर चलकर गाडी अकस्मात् खडी हो गई! तुर्गनेव चक्करमे पडे कि मामला क्या है! गाडीके भीतरसे सिर निकालकर देखा तो हजरत कोचवान गाडीके ऊपर बैठे हुए अपने एक साथीके साथ ताश खेल रहे है! तुर्गनेवने यह दृश्य देखकर झट अपना सिर गाडीके भीतर कर लिया। ताशका खेल यथापूर्वक चलता रहा। जब खेल खतम हुआ तब गाडी वहाँसे चली!

तुर्गनेवकी रचनाओमे उनके कोमल हृदयकी झलक स्पष्टतया दीख पडती है।

तुर्गनेवके स्वभावमे क्रियाशीलताकी अपेक्षा करुणा-मिश्रित निराशाका प्राबल्य था। वे आराम-पसन्द विचारक थे, उच्चकोटिके कलाकार थे, पर कर्मयोगी नही थे। हाँ, कर्मयोगियोके लिए उनके हृदयमे अत्यन्त

श्रद्धा अवश्य थी। किसी प्रकारकी भी कट्टरताको वे बहुत नापसन्द करते थे। अलौकिक बातोमे उनका विश्वास नही था। मानुषिकतामें उनकी श्रद्धा थी और दूसरोकी मानुषिक कमजोरियोके प्रति वे सहिष्णु थे। टाल्सटायने एक बा कहा था—

"तुर्गनेवने अपने ग्रन्थोमें अपना हृदय खोलकर रख दिया है। उनके स्वभावको समझनेके लिए उनके ग्रन्थोका पढना अत्यन्त आवश्यक है।"

प्रिन्स क्रोपाटकिन लिखते है—"तुर्गनेव शरीरके लम्बे-चौड़े और कदके ऊँचे थे। सिर कोमल भूरे बालोंसे लदा रहता था और देखनेमें बडे सुन्दर लगते थे। आँखोसे बुद्धिमत्ता टपकती थी और उनमे कुछ हास्यकी भी झलक प्रतीत होती थी। उनके रग-ढगमें बनावटका नामोनिशान नही था। उनके विशाल मस्तिष्कसे प्रतीत होता था कि उनकी दिमागी ताकत काफी विकसित हो चुकी है। उनकी मृत्युके बाद उनका दिमाग तोला गया तो वह उन सब दिमागोसे, जिनकी तौल तबतक हो चुकी थी, इतना अधिक भारी निकला कि तोलनेवालोको अपनी तराजूपर ही आशका होने लगी। उन्होने फिर दूसरी तराजूपर उसे तोला, फिर भी वह उतना ही यानी सबसे भारी निकला।"

तुर्गनेवके अन्तिम दिवस बडे कष्टप्रद सिद्ध हुए। उनके कई मित्र उनसे पहले चल बसे थे। स्वय उन्हे लम्बी बीमारी भुगतनी पडी। महीनो तक खाटपर पडे रहकर मृत्युकी प्रतीक्षा करनी पडी, पर उन्होनें अपनी परोपकारिता और सहृदयता मरते दम तक न छोडी। जब उनके बचनेकी कोई उम्मीद नही थी, एक नवयुवक लेखक उनके पास पहुँचा। आपने उसी समय उसकी पुस्तककी सिफारिशमे एक चिठ्ठी किसी प्रकाशक-को लिखा दी और कहा—"इस चिठ्ठीके साथ अपनी किताब भेज दो, छप जायगी।"

तुर्गनेवकी भयकर बीमारीकी खबरे पेरिससे रूसको बराबर जाती

थी और वहाँके निवासियोके हृदयमे उनके लिए बडी चिन्ता उत्पन्न हो गई थी।

सितम्बर सन् १८८३ में रूसका यह महान् लेखक इस ससारसे विदा हो गया। ससारकी भिन्न-भिन्न भाषाओंमें अनेक उपन्यास-लेखक हुए है और होगे, पर मानवी भावोका ऐसा सूक्ष्म विश्लेषण करनेवाले प्रतिभाशाली औपन्यासिक विरले ही होगे। सच्चा कलाकार किसे कहते है और उपन्यास किस चीजका नाम है, यदि आप यह जानना चाहते है तो तुर्गनेवके ग्रन्थोको पढिये।

: ६ :

रोमाँ रोलाँ

"पेरिस महानगरीके एक पुराने मकानके पाँचवे तल्लेपर दो छोटे-छोटे कमरे है। नीचे निकटस्थ सडकपरसे जब कोई भारी मोटरकार निकल जाती है तो मकान हिल जाता है और मेजपर रखे हुए काँचके बर्तनको भी कम्पनका अनुभव होने लगता है। कमरेमे किताबोके ढेर-के-ढेर रखे हुए है। कुछ दीवारके किनारेसे सटी हुई है और कुछ फर्शपर ही पडी हुई है, कुछने कुर्सीपर आसन जमा रखा है, तो कुछ मेजपर भी डटी हुई है। केवल दो कुर्सियाँ है, एक स्टोव चूल्हा है, आरामकी कोई चीज नही। ऐसी किसी भी वस्तुका अभाव ही समझिए, जिससे किसी आगन्तुकका मन यहाँ विरम सके। एक परिश्रमी विद्यार्थीकी कुटी कहिए या मेहनती कैदीकी कोठरी। इस तल्लेपर कोई दूसरा व्यक्ति नही—कोई भी पडोसी नही। हाँ, एक बुढिया नौकरानी जरूर है, जो वक्त-बेवक्त आनेवाले दर्शकोसे इस साधककी रक्षा करती है। पुस्तकोके बीचो-बीच एक विनम्र व्यक्ति बैठा हुआ है। पोशाक किसी धार्मिक आदमी-जैसी सीधी-सादी है। बदन छरछरा, ऊँचाई पर्याप्त, चेहरेमे कोमलता टपक रही है। रगपर कुछ पीलापन है, जिससे प्रकट होता है कि यह भलामानस मुक्त पवनमे भ्रमण नही कर रहा! मुखपर कुछ झुर्रियाँ नजर आ रही है, जिससे स्पष्ट है कि इसके रात्रिके भी अनेक घटे परिश्रम करते हुए बीतते है। भौहोपर कुछ सफेदी आने लगी है। वह बोलता कम है। चलता धीरे-धीरे है। किसी ऊपरसे देखनेवाले व्यक्तिको यही खयाल होगा कि यह आदमी बहुत ही थका हुआ है, लेकिन ज्योही इस तपस्वीकी

आँखोका सामना होगा, उसका भ्रम दूर हो जायगा। उन तेजस्वी आँखोंकी कोरपर कुछ लालिमा है और साथ ही शुद्ध निर्मल जलकी तरहकी नीलिमा—वह पारदर्शी नीलिमा, जो उसके किसी फोटोमे प्रकट ही नही हो पाती।

यह है एक साहित्यिक भिक्षुकी मठी, जो अपनेको भिन्न-भिन्न देशोकी भाषाओके साहित्यके सम्पर्कमे रखता है। उनके इतिहास, दर्शनशास्त्र, कविता और गानविद्या सभीके प्रति उसकी रुचि है। उसके पास देश-विदेशसे चिट्ठियाँ, लेख और पत्र-पत्रिकाएँ आती रहती हैं। पाँच घटेसे अधिक वह सोता नही, टहलने वह कभी-कभी ही जाता है और इस पँच-तल्लेपर आनेका कष्ट शायद ही कोई मित्र उठाता हो। जब विश्राम करनेकी तबियत होती है तो वह कोई दूसरा काम हाथमे ले लेता है और उससे भी थक जानेपर पियानो बजाने लगता है। वह एकान्तमे ही रहता है, पर उसके एकान्तका अर्थ है ससारसे सम्बन्ध।"

यह है उस रेखा-चित्रका एक अश, जो स्टीफन ज्विगने अपने साहित्यिक बधु रोमाँ रोलाँका खीचा था।

जिस महान् ग्रन्थ 'जाँ क्रिस्तफ' पर रोमाँ रोलाँको नोबेल-प्राइज मिली थी, वह उनकी पन्द्रह वर्षव्यापी साधनाका फल था। उसकी कल्पना उन्होने सन् १८९५ में की थी, प्रथम भाग सन् १९०२ मे प्रकाशित हुआ था और अन्तिम सन् १९१२ मे। आइए, उस महान् साहित्यिक तपस्वीके जीवनपर एक दृष्टि डाल लें।

रोमाँ रोलाँका जन्म २९ जनवरी, १८६६ को क्लामेसीमें हुआ था। उनके पिताजी वहाके एक सुप्रसिद्ध वकील थे और माताजी बडी धार्मिक तथा गम्भीर प्रकृतिकी थी। रोमाँ रोलाँके एक छोटी बहन भी थी, जो अभी जीवित है और जिनका शुभ नाम है मैंडेलीन। रोलाँ काफी कोमल स्वास्थ्यके बालक थे और इसलिए मातजीको उनकी देख-रेखमें बहुत-सा समय व्यय करना पड़ता था। पिताजीकी अपेक्षा वे स्वभावतः माताजी

पर ही अधिक स्नेह रखते थे। माताजीकी मृत्यु सन् १९१९ मे हुई थी और जब उसके १७ वर्ष बाद इन पक्तियोके लेखक ने रोमाँ रोलाँसे पूछा—"आपके जीवनकी सबसे बडी दुर्घटना कौन-सी थी ?" तो उसका उत्तर देते हुए उन्होने लिखा था—

"मेरे जीवनमे सकटोकी भरमार रही है और यह बतलाना मेरे लिए कठिन है कि उन सकटोमें मेरे लिए सबसे अधिक कष्टप्रद कौन रहा। मेरे कितने ही प्रिय स्वजनोका देहान्त हो चुका है और मेरे अनेक मित्रोने मेरे साथ विश्वासघात किया है; लेकिन जिस दुःखकी सबसे अधिक कसक मेरे हृदयको अनुभव होती है, वह है मेरी पूज्य माताकी मृत्यु, जो सन् १९१९ में हुई। वे मेरे लिए मातासे भी अधिक थी। वे मेरे सकटोकी साथिन थी, मेरी बातोको सुननेवाली थी और मेरी सर्वोत्तम मित्र भी थी।"

थोडे दिन अपने स्थानके विद्यालयमे शिक्षा पाकर रोमाँ रोलाँने पेरिस जानेका निश्चय किया। इस अवसरपर उनके माता-पिताने बडे त्याग तथा साहसका परिचय दिया। पिताजीने अपनी चलती हुई वकालत और स्वाधीन वृत्ति छोडकर पेरिसके एक बैंकमे नौकरी करना स्वीकार कर लिया और माताजी ने भी घरके शान्तिमय जीवन तथा विश्रामयुक्त व्यवस्थाको छोडकर पेरिस जाना ही तय किया, क्योकि वे अपने प्रिय पुत्रकी उन्नति के लिए अत्यन्त चिन्तित थी और उस महानगरीमें उसे अकेला नही छोडना चाहती थी !

रोमाँ रोलाँको गान-विद्यासे बडी रुचि थी और शेक्सपियरके भी वे अनन्य भक्त बन गये थे। उनका बहुत-सा वक्त इन दोनोके अध्ययनमे ही बीता। नतीजा यह हुआ कि नार्मल स्कूलकी प्रवेशिका-परीक्षामे वे दो बार फेल हुए। सन् १८८६ मे उन्होने जब तीसरी बार इम्तहान दिया तो उसमे वे बडी योग्यतापूर्वक उत्तीर्ण हो गए। दर्शनशास्त्रकी ओर उनकी विशेष रुचि थी और उनके मुख्य विषय थे इतिहास और भूगोल।

शिक्षक लोग उनकी प्रतिभा तथा परिश्रमशीलतासे विशेष प्रभावित हुए। स्कूलमें दो वर्ष व्यतीत करनेके बाद उन्हे एक छात्रवृत्ति मिली और वह थी रोममे ऐतिहासिक अन्वेषण करनेके लिए। पर इटलीके कलामय वातावरणने उनको इतना प्रभावित किया कि उन्होने अपनी थीसिस या निबन्धका काम छोडकर उस देशके भिन्न-भिन्न स्थानोकी यात्रा करना प्रारम्भ कर दिया।

इटलीमे ही सत्तर वर्षकी एक वृद्ध जर्मन महिला मलविदा मेसनबर्गसे उनकी मैत्री हो गई और यह सम्पर्क उनके जीवनके लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ। इस महिलाका घनिष्ट परिचय वागनर, नीट्से, मेजिनी तथा हर्जन इत्यादि महापुरुषोसे रहा था और उसमे जबरदस्त आकर्षणशक्ति थी। मलविदाने ही रोलाँके उर्वर मस्तिष्कमे विश्वकी एकताके बीज बोए और उन्ही दिनो एक दिन टहलते हुए उन्होने अपने महान् ग्रन्थ 'जाँ क्रिस्तफ' की कल्पनाकी थी। रोमाँ रोलाँ नित्यप्रति उनके यहाँ जाया करते थे और पियानो बजा-बजाकर उन्हे सुनाया करते थे। रोमाँ रोलाँने आगे चलकर अपने एक लेखमे लिखा था कि जिन दो महिलाओने विशेष रूपसे उनके जीवनको प्रभावित किया, उनमे एक तो थी उनकी पूज्य माताजी और दूसरी यही जर्मन महिला।

इटलीसे लौटनेके बाद वे अपने नार्मल स्कूलमें ही गानविद्याके इतिहासके शिक्षक हो गए और तत्पश्चात् सौर्बोनमे भी उन्होने अध्यापन-कार्य ही किया। पेरिसमे उनका परिचय भाषा-विज्ञानके अध्यापक माइकेल ब्रील नामक सज्जनसे हुआ और उनकी पुत्रीके साथ उनका विवाह भी हो गया, पर यह सम्बन्ध क्षणस्थायी ही सिद्ध हुआ। रोमाँ रोलाँको अपनी वृद्धावस्था तक एकाकी जीवन ही व्यतीत करना पडा। हाँ, सत्तर वर्षकी उम्रमे उन्हे अपने शेष जीवनके लिए एक सहचरी अवश्य मिल गई थी, जो अब भी उनकी कीर्त्ति-रक्षाके लिए प्रयत्नशील है। पेरिसमें

रहते हुए रोमाँ रोलाँने वहाँके समाजका विधिवत् अध्ययन किया, जो आगे चलकर उनके लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ।

उन्ही दिनो रोमाँ रोलाँ और उनके मित्रोने एक पत्रिका निकाली। उसका नाम था Cahiers de la Quinzaine और यह पन्द्रह वर्ष तक चली। रोमाँ रोलाँ बिना एक पैसा लिए इस पत्रिकाके लिए लिखते थे और उनके कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ—'जाँ क्रिस्तफ' इत्यादि—इसी पत्रिकामे पहले-पहल प्रकाशित हुए थे। यद्यपि यह पत्रिका आगे चलकर बन्द हो गई, तथापि इससे रोमाँ रोलाँके व्यक्तित्त्वके विकासमे बडी सहायता मिली। यह पत्रिका फराँसीसी युवकोकी अदम्य आदर्शवादिता और पारस्परिक सहयोगकी एक उज्ज्वल प्रतीक थी।

फ्रान्समे उन दिनो बडी राजनीतिक उथल-पुथल का जमाना था। ड्रेफस-अभियोगने सम्पूर्ण फ्रान्समे हलचल मचा दी थी और सारा वातावरण अशान्त बन गया था। साहित्यिक प्रगति रुकी हुई थी। अपनी पत्रिकाके बन्द हो जाने, मित्रोके तितर-वितर हो जाने और पत्नीसे विवाह-विच्छेद हो जानेके कारण स्वय रोमाँ रोलाँका गृह-जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो चुका था। बस, ऐसे सकटमय अवसरपर उस तेजस्वी युवकने साहित्यिक भिक्षु बननेका घोर सकल्प कर लिया और इस सकल्पको उन्होने जीवनपर्यन्त निबाहा भी। इस लेखके प्रारम्भमे उनकी कुटीका जो रेखाचित्र स्टीफन ज्विगने उपस्थित किया है उससे पाठकोको उनकी साधनाका पता लग सकता है।

सन् १९१० मे रोमाँ रोलाँ एक मोटर दुर्घटनामें मरते-मरते बचे। फिर भी उनके बडी गहरी चोट आई थी, हड्डियाँ टूट गई थी और आराम होनेमे काफी समय लग गया था। यदि दुर्भाग्यवश उस दिन उनकी मृत्यु हो गई होती तो शायद पेरिसके किसी पत्रमे एकाध पैरा उनके बारेमे छप जाता, जिनका आशय यही होता कि गान-विद्याके एक अध्यापक मोटरसे कुचलकर स्वर्गवासी हुए। पेरिसके लाखो निवासियोमे दस-

वीसके लिए ही वह दुर्घटना दु खप्रद सिद्ध होती ! अपनी विश्वव्यापी कीर्त्तिके दो वर्ष पहले तक रोमाँ रोलाँ स्वय अपने देशमें ही कितने कम प्रसिद्ध थे ! और आश्चर्यकी वात यह है कि उनके दस-वारह नाटक तथा जीवन-चरित और 'जाँ क्रिस्तफ' की आठ जिल्दें तवतक प्रकाशित हो चुकी थी !

रोमाँ रोलाँने कभी कीर्त्ति प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न नही किया। उन्होने कभी कोई साहित्यक पार्टी नही वनाई और न किसी दलवन्दीसे काम लिया। सस्कृतके किसी कविने कहा है—"कीर्त्ति-रूपी कन्या सदा क्वारी ही रही है। जिसे वह चाहती है, वह उसे नही चाहता और जो लोग कीर्त्तिके इच्छुक होते है, उन्हे वह स्वय नही चाहती।" रोमाँ रोलाँको जो कीर्त्ति प्राप्त हुई, वह उनकी अनवरत साधनाका ही परिणाम थी। रोमाँ रोलाँके समस्त ग्रन्थोका सक्षिप्त परिचय देनेके लिए भी यहाँ स्थान नही है और स्वय हमे उनके तीन-चार ग्रन्थ ही पढनेका सुअवसर मिला है—(१) 'जाँ क्रिस्तफ', (२) 'आइ विल नौट रेस्ट', (३) 'फोर-रनर्स' इत्यादि। हाँ, उनके विपयमे लिखे हुए कई निवन्ध, जो यत्र-तत्र प्रकाशित हुए थे, हमने ध्यान-पूर्वक पढे है। स्टीफन ज्विग-द्वारा लिखित उनका महत्त्वपूर्ण जीवन-चरित तो पन्द्रह वर्षसे हमारा एक प्रिय ग्रन्थ रहा है। श्रीयुत दिलीप-कुमार रायने अपनी पुस्तक 'एमग दि ग्रेट' मे रोमाँ रोलाँका एक वहुत ही चित्ताकर्षक चित्र खीचा है। 'माडर्न रिव्यू' में वह वातचीत भी प्रकाशित हुई थी, जो नेताजी सुभाषचन्द्र वोस और रोमाँ रोलाँके वीच हुई थी। रोमाँ रोलाँने उस वातचीतके सिलसिलेमें कहा था—"मै तो किसान-मजदूरोका समर्थक हूँ और यदि महात्मा गान्धी भी उनके हितोका खयाल न रखते तो मै उनका भी विरोध करता।" विश्वभारती द्वारा 'रोलाँ एण्ड टैगोर' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित हुई है, जिसमें रोलाँके वाईस पत्रोका संग्रह किया गया है। रोमाँ रोलाँ भारतीय विचारधारासे काफी प्रभावित थे और उन्होने रामकृष्ण परमहस तथा महात्मा गान्धीके

जीवन-चरित भी लिखे थे। कवीन्द्र रवीन्द्र तथा ऋषि अरविन्दके भी वे अत्यन्त प्रशसक थे।

रोमाँ रोलाँकी रचनाओमे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है उनके पत्र। स्टीफन ज्विगने अपने आत्मचरित 'दि वर्ल्ड आफ यस्टरडे' में लिखा है—"यद्यपि मै रोमाँ रोलाँके ग्रन्थोका बहुत प्रशसक हूँ, तथापि मेरा यह विश्वास है कि उनकी रचनाओमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान उनके पत्रोको ही मिलेगा, क्योंकि उनमे उस मनुष्यताके साक्षात् दर्शन हो सकते है, जो उनके करुणापूर्ण हृदयमे निकली थी, अथवा जिसे उनके भावनापूर्ण मस्तिष्कने जन्म दिया था।"

रोमाँ रोलाँके जो एक-से-एक बढिया हजारो ही पत्र समस्त ससारमे यत्र-तत्र बिखरे पडे है, उनकी प्रेरणा उन्हे महान् कलाकार टाल्सटायसे मिली थी। सन् १८८७ की बात है। रोमाँ रोलाँ तब २१ वर्षके थे। हाल ही मे उन्होने टाल्सटायकी पुस्तक 'What is to be done' ('हमें क्या करना चाहिए ?') पढी थी। उस पुस्तकसे उनके मनमें अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हो गया और उन्होने तुरन्त ही एक चिट्ठी टाल्सटायके नाम रूसको भेज दी। उन्हे यह बिल्कुल उम्मीद नही थी कि वह महान् ग्रन्थकार इस पत्रका उत्तर देगा। वे इस पत्रकी याद भी भूल गये थे। एक दिन वे अपने कमरेमे लौटे तो क्या देखते है कि उनकी डाकमे एक पैकेट भी है, जिसपर रूसकी मुहर है। वह पैकेट क्या था, टाल्सटायका विस्तृत पत्र था। कहाँ वह अन्तर्राष्ट्रीय कीर्त्तिप्राप्त ग्रन्थकार और कहाँ यह अपरिचित फ्रासीसी युवक!

टाल्सटायने अपने १४ अक्टूबर, १८८७ के उक्त पत्रमें लिखा था—"प्रिय मित्र, तुम्हारा प्रथम पत्र मुझे मिला। उसने मेरे हृदयको स्पर्श किया है और सजल नेत्रोसे मैंने उसे पढा।"इसके बाद टाल्सटायने अपने कला-सम्बन्धी विचारोपर प्रकाश डालते हुए लिखा था—"वही चीज वास्तवमें कीमती है, जो मनुष्योमे पारस्परिक सद्भावना उत्पन्न करती

है, उनके हृदयोको मिलाती है। और सच्चा कलाकार वही है, जो अपने विश्वासोके लिए बलिदान करता हो, किसी भी सच्ची वृत्तिके लिए सबसे पहली और अनिवार्य शर्त कलाके प्रति प्रेम नही है, बल्कि मानव-समाजके प्रति प्रेम है। जिनके हृदयमें मानव-प्रेम लबालब भरा हुआ है, वही कलाकारके कर्त्तव्यको कभी पालन करनेकी उम्मीद कर सकते हैं।"

कहनेकी आवश्यकता नही कि आगे चलकर इस महत्त्वपूर्ण पत्रने रोमाँ रोलाँके साहित्यिक जीवनपर गम्भीर प्रभाव डाला। लेकिन उस समय जिस बातने रोमाँ रोलाँको सबसे अधिक प्रभावित किया, वह थी टाल्सटायकी अनुपम सहृदयता, जिससे प्रेरित होकर उन्होने एक अपरिचित युवकको ढाँढस बँधानेवाला पत्र लिखा था। कहाँ तो वह विश्वविख्यात महान् लेखक और कहाँ पेरिसकी किसी मामूली गलीका निवासी यह बाईस-वर्षीय अपरिचित युवक! और टाल्सटायको उस लम्बे खतके लिखनेमे पूरा एक दिन तो लगा ही होगा——शायद दो दिन! रोमाँ रोलाँके लिए यह एक ऐसी अमूल्य शिक्षा थी, जिसे वे जिन्दगी-भर नही भूले। जिस दिन उन्हे टाल्सटायका वह महत्त्वपूर्ण पत्र मिला, उसी दिन उन्होने यह प्रतिज्ञा कर ली कि यदि भविष्यमें कभी कोई भी व्यक्ति अपने धर्म-संकटमे मेरी सहायता या परामर्श माँगेगा तो मै भी इसी प्रकार उसकी सेवा करूँगा। कलाकारका प्रथम नैतिक कर्तव्य है किसी भी आत्माकी पुकार-पर सहायता देनेके लिए सर्वदा उद्यत रहना, यह बात उनके हृदयगत हो गई और तत्पश्चात् अन्तर्द्वन्द्वसे प्रेरित किसी पत्रप्रेषकको उन्होने निराश नही किया! टाल्सटायका वह ऐतिहासिक पत्र मानो वटवृक्षका एक बीज ही था। उसके परिणाम-स्वरूप रोमाँ रोलाँके पत्र-व्यवहारका वह महान् वट उत्पन्न हुआ, जिसकी शाखाएँ तथा पत्र विश्व-भरमे बिखरे हुए हैं। सन्तप्त हृदयोको आश्रय तथा सान्त्वना देनेवाला वह पत्र-समूह ससारमे अद्वितीय ही होगा।

रोमाँ रोलाँके तीन कृपा-पत्र मेरे पास भी सुरक्षित है और मै उन्हे अपने सग्रहालयकी अमूल्य निधि मानता हूँ। मैने उनसे पूछा था—'क्या अहिंसामे आपका विश्वास कुछ शिथिल हो रहा है ?' उसके उत्तरमे उन्होने लिखा था—" 'सघर्षके पन्द्रह वर्ष' नामक पुस्तकसे, जो पेरिसमे सन् १९३५ मे प्रकाशित हुई थी, मेरे अहिंसा-विषयक विचारोका पता आपको लग जायगा। अहिंसा तबतक वास्तविक रूपसे प्रभावशाली नही बन सकती जबतक किसी सम्पूर्ण देशका उसपर दृढ विश्वास न हो। यूरोपमे केवल थोडी-सी आत्माओको छोडकर और लोगोका विश्वास अहिंसामे नही है। ऐसी परिस्थिति मे सघर्षके मौकेपर अहिंसाका कुछ भी असर नही पड़ेगा। अहिंसा प्रभावहीन तो सिद्ध होगी ही, लेकिन इसके साथ ही एक बात और भी है। वह यह कि मौजूदा हालतमे यूरोपकी जनतासे अहिंसा द्वारा सर्वोच्च बलिदानकी माँग करना अमानुषिक भी होगा, क्योकि उसकी निगाह-मे वह बलिदान निरर्थक तथा सत्यविहीन होगा। इन कारणोसे मै पश्चिमसे यही कहता हूँ कि जब वक्त आए तो जगली, खूनी और दूसरोको गुलाम बनानेवाली फासिस्ट शक्तियोका डटकर मुकाबला करो भरपूर ताकतके साथ, क्योकि फासिज्म हमारी सम्पूर्ण सभ्यताको ही डुबा देना चाहता है।"

रोमाँ रोलाँके जीवनके दर्शनका अध्ययन करनेके लिए उनके सम्पूर्ण साहित्यको ही पढना होगा। एक स्थलपर उन्होने लिखा था—"मै किसी व्यक्तिगत ईश्वरकी सत्तामे विश्वास नही करता—विशेषकर किसी विषादमय ईश्वरमे तो बिल्कुल ही नही। लेकिन मै मानता हूँ कि जो-कुछ अस्तित्वमे है—आह्लादमे, विषादमे, जीवनके नाना रूपोमे, मानव-जातिमे, मनुष्योमे और विश्वमे—एकमात्र ईश्वर है, जो सतत जन्म ले रहा है। प्रतिक्षण नवीन सृष्टि हो रही है। धर्म तो कभी पूरा होता ही नही। अविराम कर्म और प्रयासकी अक्षुण्ण इच्छाका नाम ही धर्म है। वह बहता हुआ झरना है, न कि कोई रुद्ध पोखर।"

मेरे एक अन्य प्रश्नके उत्तरमे रोमाँ रोलाँने लिखा था—"आपने

मुझसे पूछा है कि कष्टोमे कौन-सी चीज मुझे सान्त्वना देती है। मै कहूँगा कि जीवनकी धारा, जिससे मेरी आत्मा लबालब भरी हुई है, जो मुझे निरन्तर नवीन बनाती रहती है, जो मुझसे कोई ऊँची चीज है और जो विश्व-जीवनका एक अग है। अपनी युवावस्थासे लेकर अबतक मेरा एक भी दिन ऐसा नही बीता, जब मैने विश्व-जीवनके साथ अपने निरन्तर सम्पर्कका अनुभव न किया हो।"

रोमाँ रोलाँका व्यक्तित्त्व अत्यन्त सजीव था। यद्यपि कुल मिलाकर देखा जाय तो कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर रोमाँ रोलाँसे कही ऊँचे दर्जेके साहित्यिक सिद्ध होगे—वे तो व्यास और कालिदासकी परम्पराके थे—पर जहाँ तक प्रगतिशील शक्तियोका साथ देनेका प्रश्न है, रोमाँ रोलाँ गुरुदेवसे कही आगे बढ गए थे। ससारमे जहाँ कही भी अन्याय होता—चाहे भारतमे हो या इटलीमे, अमरीकामे हो या हिन्दचीनमे—रोमाँ रोलाँ अपनी आवाज बुलन्द किए बिना न रहते। जीवनके अन्त तक वे प्रतिक्रियावादी शक्तियोसे मोर्चा लेते रहे। रोमाँ रोलाँ समस्त विश्वके नागरिक थे और ससार-भरकी सस्कृतियोके समन्वय करने और इस प्रकार विश्वात्माकी पूजा करनेमे उनका हार्दिक विश्वास था। लश्कर (ग्वालियर) के एक विद्यार्थी श्री परमानन्द पाण्डेयको उन्होने अपने एक पत्रमे लिखा था—"प्रिय पी० पाण्डया, तुम्हारे पत्रने मेरे हृदयको बहुत गहराई से स्पर्श किया है। मेरे भारतीय भाई, तुमने अपना हाथ जो मेरी ओर बढाया है, उसे मै स्नेहके साथ स्वीकार करता हूँ। तुम्हे मालूम ही है कि तुम्हारे देशके ऋषियोके प्रति मै अपनेको कितना सम्बद्ध अनुभव करता हूँ। तुम भी यूरोपके महान् कलाकारो, विचारको और महान् आत्माओको समझनेका प्रयत्न करो। पूर्व और पश्चिमको एक-दूसरेके निकट लानेके कार्यको अपने जीवनका आदर्श बना लो। हमे एक विश्वात्मा बनानी होगी। आज वह विद्यमान नही है, पर एक दिन वह अवश्य होगी।

सप्रेम तुम्हारा—रोमाँ रोलाँ"

रोमाँ रोलाँने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'जाँ क्रिस्तफ' मे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वाक्य लिखा है। उसे प्रत्येक हिन्दी-साहित्य-सेवीको अपने कमरेमे टाँग लेना चाहिए—"प्रतिदिनका जीवन सर्वसाधारणके सम्मुख रखो। वह जीवन समुद्रसे भी अधिक गम्भीर तथा विस्तीर्ण है। तुममेसे छोटे-से-छोटा अपने भीतर अनन्तको धारण किए हुए है। ऐसे प्रत्येक व्यक्तिमे, जिसमे मनुष्य बननेकी सरलता विद्यमान है, अनन्तका निवास है। प्रेमीमे, मित्रमे, उस नारीमे, जो बच्चेके जगमग और गौरवपूर्ण जन्मदिनके लिए प्रसव-पीडा सह लेती है, उस प्रत्येक स्त्री व पुरुषमे, जिसका जीवन ऐसे अन्धकारमय आत्मत्यागका जीवन है, जिसे कभी कोई न जान पावेगा, सभीमे अनन्त निवास करता है। अनन्त जीवनकी वह धारा ही है,-जो एक प्राणीसे दूसरे प्राणीमे वह रही है—जो एक से दूसरेमे प्रवाहित होती है, लौटती है और इस प्रकार परिधि पूरी कर रही है। इन सरल मानवोमेंसे किसी एकके जीवनको चित्रित करो, उसके एकके बाद एक आते दिनो और रातोकी शान्तिपूर्ण गाथा लिखो—दिनो और रातोकी, जो यद्यपि एक समान आते प्रतीत होते है, फिर भी जो एक-दूसरेसे बिल्कुल भिन्न है और जो सृष्टिके आरम्भके प्रथम दिनसे एक ही जननीकी सन्तान है। जीवनको सरलतासे व्यक्त करो —उतनी ही सरलतासे, जितना कि स्वय जीवनका विकास है। शब्दपर, अक्षरपर और व्यर्थकी गम्भीर खोजपर, जिसमे लगकर आजके कलाकारोकी शक्तिका ह्रास हो रहा है, अपनी विचारशक्तिको नष्ट न करो। चूंकि तुम जनताको सम्बोधित कर रहे हो, जनताकी भाषाका प्रयोग करो। कोई शब्द शिष्ट अथवा अश्लील नही है और न कोई शैली विशुद्ध अथवा अपवित्र। शब्दो और शैलियोकी दो ही किस्मे है—एक तो वह, जो उन्हे जो-कुछ कहना है, ठीक-ठीक कह देती है, और दूसरी वह, जो उसे नही कहती। तुम जो कुछ महसूस करना है उसीको महसूस करो। अपनी रचनाओको हृदयके रागसे ओतप्रोत होने दो। शैली ही आत्मा है।"

यद्यपि रोमाँ रोलाँ अपने पिछले वर्षोमे सोवियत रूस और साम्यवादके पूर्ण समर्थक बन गए थे, तथापि वे कठमुल्लापनसे कोसो दूर थे। वे चाहते थे कि प्रत्येक मनुष्य सत्यका स्वय ही अनुसन्धान करे। जो लोग सबको एक ही लाठीसे हाँकनेमे विश्वास रखते है और जिनका यह विश्वास है कि दुनिया-भरकी बीमारियोका इलाज वस हमारे ही सिद्धान्तोमे है, हमारे पास ही रामवाण औषध है—चाहे वे गान्धीवादी हो या कम्युनिस्ट—वास्तवमे कठमुल्ले है और ससारको सबसे अधिक खतरा इन कठमुल्लों से ही है।

रोमाँ रोलाँने अपने एक निवन्ध ('टाल्सटाय—एक स्वतन्त्र आत्मा') मे लिखा था—"अपना पथ स्वय न निर्धारितकर दूसरोके द्वारा सचालित होते रहना बडा सरल काम है, पर यही सारी बुराइयोकी जड है। हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम इस बातके निर्णयका भार दूसरोपर न डाले कि हमारे लिए क्या हितकर है और क्या नही—चाहे वे कितने ही भले, विश्वासपात्र और सर्वप्रिय व्यक्ति क्यो न हो। स्वय हमे ही इस प्रश्नके समाधानके खोजनेकी आवश्यकता है, और यदि जरूरत हो, तो आजीवन अथक धैर्य और तत्परताके साथ इस खोजमें हम लगे रहे। यदि हमने अपनी मेहनतसे आधा सत्य भी जान लिया तो वह दूसरोकी सहायतासे जाने गए पूर्ण सत्यसे कही अधिक मूल्यवान् है। दूसरो द्वारा जाना गया सत्य तो तोता-रटन्त जैसा है। वह सत्य दरअसल सत्य नही है, असत्य है, जिसे हम आँख मूँदकर स्वीकार करते है, जिसे हम सिर झुकाकर आदरके भावसे नत होकर गुलामकी भाँति मजूर कर लेते है। सीधे खडे हो। आँख खोलो और चारो ओर देखो। निर्भीक बनो। किंचित् सत्य भी, जिसे तुम अपनी मेहनतसे पाओगे, वह तुम्हारे लिए प्रकाश-स्तम्भका काम देगा। आवश्यकता इस वातकी नही है कि तुम बहुत-सा ज्ञान प्राप्त करो। जरूरी चीज यह है कि जो भी थोडा-बहुत ज्ञान तुम प्राप्त करो, वह तुम्हारा स्व-अर्जित हो, जिसे तुमने अपना ही रक्त देकर प्राप्त किया और बढाया

हो। आत्माकी स्वाधीनता ही सर्वश्रेष्ठ निधि—सर्वोत्तम खजाना है।"

प्रत्येक सजीव साहित्य-सेवी और प्रगतिशील कलाकारके सामने कभी-न-कभी यह प्रश्न आता है—"क्या मै अपने चारो ओरकी अनाचार-पूर्ण परिस्थितियोको दूर करनेके लिए साहित्य या कला-क्षेत्रको छोड़कर समाज-सेवाके कार्यमे अपने को जुटा दूं?" प्रिस क्रोपाटकिनकी युवावस्थामें यही सवाल उनके सम्मुख उपस्थित हुआ था और उन्होंने अपने महान् वैज्ञानिक जीवनको समाज-सेवाकी बलिवेदीपर चढाकर क्रान्तिकारीका जीवन स्वीकार कर लिया था। पर इसके विपरीत रोमाँ रोलाँ का यह मत था कि हमे अपने समय तथा शक्तिको साहित्य-सेवामे अर्पित करनेके बाद केवल बचे हुए समयमे ही समाज-सेवा करनी चाहिए। जब श्री दिलीपकुमार रायने अपने अन्तर्द्वन्द्वकी बात उनको लिखी थी तो उन्होने श्री दिलीपकुमार रायको यही परामर्श दिया था कि आप अपनी दोनो प्रवृत्तियोमे सामजस्य स्थापित कीजिए। उन्होने बातचीत करते हुए भी श्रीयुत दिलीपजीसे कहा था—"अन्ततोगत्वा हम इसी महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर आते है. 'कलाकारको करना क्या चाहिए?' इस बातसे कोई इन्कार नही कर सकता कि एक उत्तमतर समाज-व्यवस्थाका निर्माण होना चाहिए और वह व्यवस्था जितनी ही जल्दी आवे, उतना ही अच्छा होगा। आज तो अधिकाश मानव-समाज सस्कृतिके शुभ फलोसे बिल्कुल वचित रह जाता है—उन फलोसे, जो आध्यात्मिक जीवनके लिए अनिवार्यत आवश्यक है। यही असली बीमारी है। जहाँ तक इस रोगके निदानका प्रश्न है, हम लोग सहमत है, पर वास्तविक मतभेद रोगके इलाजके बारेमे है। यहाँपर मै आपसे कहूँगा कि अपने सम्पूर्ण जीवनसे मैने एक ही बात सीखी है। वह यह कि किसी भी कलाकार या बुद्धिजीवीका सबसे प्रथम और सर्वोच्च कर्त्तव्य यही है कि वह अपनी अन्तरात्माकी पुकारके प्रति सच्चा और निरन्तर जागरूक रहे। अपने अन्तस्तलकी ज्योतिको कदापि न बुझने दे। अपनी प्रतिभाकी प्रेरणाके अनुसार सृष्टि-

कार्य करे। इतना कर चुकनेके बाद उसके पास जो समय और शक्ति बचे, उसका उपयोग वह समाजके कामोमे कर सकता है। जर्मनीके महाकवि गेटे इसी कार्य-पद्धतिका अनुसरण करते थे। जब उन्हे अपनी रचनात्मक कल्पनाशक्तिमें कुछ शिथिलता आती दीखती तो वे किसी समाज-सेवाके कार्यको करने लगते, पर जहाँ एक बार फिर उनकी प्रतिभा जाग्रत हुई कि उनके लिए दूसरा काम करना असम्भव हो जाता था।"

स्वय रोमाँ रोलाँने उपर्युक्त उपदेशके अनुसार काम किया था। अपने पन्द्रह वर्षके परिश्रमके परिणाम-स्वरूप 'जाँ क्रिस्तफ' पर उन्हे एक लाख बीस हजार रुपएका जो पुरस्कार मिला था, उसे उन्होने रेडक्रास सोसायटीको दे दिया और महायुद्धके दिनोमे डेढ वर्ष तक वे स्विटजरलैण्डकी रेडक्रास सोसायटीके अधीन छ-सात घटे प्रतिदिन क्लर्कीका काम किया करते थे। चिट्ठियोको फाइल करना और उनका जवाब देना यही उनका कार्य था। परस्पर युद्ध करनेवाले भिन्न-भिन्न देशोके खोए हुए सिपाहियोके घरवालोतक उनकी खबर पहुँचानेके लिए उनको सहस्रो ही पत्र लिखने पडे थे। जब युद्ध-क्षेत्रमें सिपाही एक-दूसरेको भयकर आघात पहुँचा रहे थे या उनकी हत्या कर रहे थे तब परदु खकातर रोमाँ रोलाँ अपने आपको इस प्रकार खपा रहे थे। रोमाँ रोलाँने एक जगह लिखा है—"जबतक किसी कलाकारमे दूसरोकी सहायता करनेकी कुछ भी शक्ति विद्यमान है, तबतक उसे कोई अधिकार नही कि वह सेवा-कार्यसे अपनेको अलग रखे।"

पिछले महायुद्धके दिनोमें रोमाँ रोलाँ युद्धके बन्दी बना दिये गए थे। उन दिनो मे उन्होने क्या-क्या लिखा, इसका वृत्तान्त हमें ज्ञात नही। यद्यपि उनका सम्पूर्ण जीवन ही अन्याय तथा अत्याचारके विरुद्ध आवाज बुलन्द करते हुए बीता था, तथापि सरस्वतीकी उपासनासे वे कभी विरत नही हुए। रोमाँ रोलाँसे किसीने पूछा था—"आप किसके लिए लिखते हैं?" उसका उत्तर उन्होने इन शब्दोमें दिया था—"मैं किसके लिए

लिखता हूँ ? उनके लिए जो आगे बढती जा रही सेनाके अग्रगन्ता है, उनके लिए जो महान् अन्तर्राष्ट्रीय सघर्षका आयोजन कर रहे हैं—ऐसे सघर्षका, जिसमे विजय पानेके मानी होगे निस्सीम तथा वर्गहीन मानव-समाजका निर्माण। साम्यवाद (कम्युनिज्म) ही आज ससारव्यापी सामाजिक क्रियाशीलताका वह दल है, 'जो विना किसी सकोच या समझौतेके झडेको आगे वढा रहा है तथा विचारपूर्ण और साहसयुक्त तर्कके साथ उच्च पर्वतोकी विजयको वढता चला जा रहा है। शेष सेना उसके पीछे आयगी, भले ही उसमे से कुछ लोग पीठ दिखा जायें, अथवा सेनाको कई बार पीछे हटना पड़े। हम फिसड्डियोको शीघ्रता करनेके लिए कहते है, पर हमे उनका इन्तजार करनेकी जरूरत नही। यह उनका काम है कि वे हमे पकड लें। वढनेवाला जत्था हर्गिज नही रुकता।"

रोमाँ रोलाँका जीवन सभी साहित्य-सेवियोके लिए शिक्षाप्रद है। यह जरूरी नही कि उनकी देखा-देखी हम भी साम्यवादके समर्थक वन जायें। हाँ, अगर किसीका वही विश्वास हो जाय तो कोई मुजायका भी नही! इतना फर्ज तो हमारा है ही कि अपने देशकी मौजूदा हालतको ध्यानमे रखकर हम भी सघर्षमय जीवन व्यतीत करे।

एक वात निश्चित है। जो भी साहित्य-सेवी विश्वकी वढती हुई विचारधारासे अपनेको अलग रखेगा, वह अपनेको निर्जीव तथा नपुसक बना लेगा और जो अन्याय तथा अत्याचारके विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करनेमें आनाकानी करेगा, वह अपनी मौतका वारण्ट खुद ही लिखा देगा—साहित्यिक मृत्युका। साहित्य-सेवा एक तप है। अपने आपको कसना, सदैव जागरूक रहना, सत्यकी खोज करना और अनुभूतियोको जनताके सामने रखना, वस यही उसका तरीका है।

साहित्य-साधक रोमाँ रोलाँके जीवनका यही सन्देश है।

मार्च १९५०]

: १० :

स्टीफ़न ज़्विग

"स्टीफन ज्विगने तो आत्मघात कर लिया !"

प्रात कालकी चाय पी चुका ही था कि किसीने आकर यह अशुभ समाचार सुना दिया। दिलको जबरदस्त धक्का लगा। ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी आत्मीयकी ही मृत्यु हो गई हो। कई वर्ष पहले से मै उनका प्रशसक था, उनकी रचनाओको मैने खुद कई बार पढा था और दूसरोको भी पढाया था। मैने देखा था कि कई विद्यार्थियोने उनके छोटे-छोटे उपन्यास 'लैटर फ्रोम ऐन अननोन वोमेन' (एक अपरिचित स्त्रीका पत्र) तथा 'एमौक' को अपने हाथसे टाइप कर लिया है और स्वय मैने एकाधिक बार उनकी कहानी 'विराट' का अनुवाद केवल हिन्दी जाननेवाले भाइयोको सुनाया था। न जाने कितनी बार मैने अपने मित्रोसे कहा था—

"सुप्रसिद्ध हॉकी खिलाडी ध्यानचन्द जिस तरह हॉकीकी गेंद को जादूगरीके साथ ले जाते है, उसी प्रकार स्टीफन ज्विग हृद्‌गत भावोका आश्चर्यजनक ढगपर विश्लेषण करते है।" महामानव रोमाँ रोलाँसे मैने ज्विगका पता पूछा था और उन्होने अपने २४ जनवरी १९३७ के पत्रमे लिखा था—

"फेसिस्ट हत्यारोकी धमकियोकी वजहसे स्टीफन ज्विगको आस्ट्रिया छोड देनी पडी है। आज कल उनका पता है—लन्दन हैलम स्ट्रीट ४९, लेकिन वे अक्सर यात्रा पर रहते है।"

मै स्टीफन ज्विगसे पत्र-व्यवहार करनेकी कई बार सोच चुका था, पर प्रमादवश ऐसा न कर सका और अब वे इस ससारमे ही नही रहे ! बडा पश्चात्ताप हुआ।

खबर देने वाले से मैंने पूछा, "कौन कहता था कि ज्विग ने आत्महत्या कर ली ?" उसने कहा, "मधुकर-मैनेजर ने किसी पत्रमें यह समाचार पढा है।" 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के दस-पन्द्रह दिन पहले से लगाकर उस दिन तक के सब अंक छान डाले, पर कही भी यह खबर न मिली।

सारा दिन अत्यन्त उद्विग्न अवस्थामे वीता। दूसरे दिन टीकमगढ पहुँचनेपर पता लगा कि 'वोम्वे क्रानिकल' नामक पत्रके साप्ताहिक सस्करणमे यह समाचार एक लेखमे छपा है! रॉयटरने उस विश्व-विख्यात लेखककी मृत्युका समाचार भेजनेकी आवश्यकता ही न समझी थी! घुडदौडमे दौडनेवाले आगाखाँके घोडोके मुकाविलेमें भला किसी वडे-से-वडे लेखकके जीवन या मृत्यु का महत्व हो ही क्या सकता है?

मुझे रजीदा देखकर एक उच्च पदाधिकारी ने कहा, "आज आप खास तौरपर चिन्तित और उदास क्यो दीख पडते है?"

मैंने उत्तर दिया, "मेरे एक सर्वप्रिय ग्रन्थकार का देहान्त हो गया है।"

"क्या तुम्हारा उनसे घनिष्ट सम्वन्ध था?"

"नही तो, मैं कई वर्षसे उनकी रचनाओका प्रशसक रहा हूँ।" मैंने उत्तर दिया।

"तव तो तुम अजीव आदमी हो! इसमें इतने दुखित होनेकी वात ही क्या है?" उन्होने पूछा। मै उन्हे कैसे समझाता कि किसी लेखकके लिए अपने आराध्यका देहान्त कितना कष्टप्रद हो सकता है!

कलकत्तेकी पिछली यात्रामें पता लगा कि स्टीफन ज्विगका आत्मचरित छप गया है। 'कलकी दुनिया' ('The World of Yesterday') की प्रति मँगा ली और दो महीनेसे उसका निरन्तर स्वाध्याय कर रहा हूँ। अपनी श्रद्धाकी केवल एक वात और कह कर इस श्रद्धाञ्जलिको समाप्त कर दूंगा। अपनी पिछली भयकर वीमारीके दिनोमे मुझे ज्विगके आत्मचरितने जीवित रहनेकी प्रेरणा दी थी। यदि मेरे पास

समय होता तो ज्विगके समस्त ग्रन्थोका अनुवाद करके अपने जीवनको सफल करता।

पाठक इन व्यक्तिगत बातोके लिए मुझे क्षमा करे और अब मेरी निगाहसे उस सच्चे साहित्य-साधकके जीवनकी एक झाँकी देख लें।

× × ×

नवम्बर १९३१

सेल्जवर्ग (आस्ट्रिया) का एक बुड्ढा पोस्टमेन हाँफता हुआ चिट्ठियों, तारो, अखबारो और किताबोके पुलिन्देसे लदा हुआ एक साहबकी कोठीकी सीढियाँ चढ रहा था। वैसे तो उनकी रोजकी डाक ही काफी भारी होती थी, पर आज तो उसने मानो कमर ही तोड दी! बात यह हुई थी कि आज एक आस्ट्रियन लेखककी पचासवी वर्षगाँठ थी। वे जर्मन भाषाके एक महान् ग्रन्थकार थे और जर्मनीके समाचारपत्र अपने कलाकारोकी रजत-जयन्ती वडी शानके साथ मनाया करते थे। इसी कारण आजकी डाक वहुत भारी हो गई थी।

'इसल वरलैग'—नामक प्रकाशन सस्थाने लेखककी सब किताबोकी तथा भिन्न-भिन्न भाषाओमें उनके जो अनुवाद हुए थे, उनकी सूची पुस्तकाकार प्रकाशित करके भेंट-स्वरूप भेज दी थी। उस सूचीमे संसारकी प्राय मुख्य-मुख्य भाषाएँ आ गई थी, यहाँ तक कि अन्धोके लिए भी उनकी किताबें ब्रेली पद्धतिमें लिख दी गई थी! पाठकोको यह वतलानेकी आवश्यकता नही कि जगत्के इस अत्यन्त लोकप्रिय लेखकका नाम था स्टीफन ज्विग। जिन भाषाओमे उनके ग्रन्थोके अनुवाद हो चुके है, उनके नाम सुन लीजिए—

आर्मीनियन	फरासीसी	नार्वेजियन
वलगेरियन	जार्जियन	पोलिश
कैटेलन	यूनानी	पोर्चुगीज
चीनी	हेब्रू	रुमानियन

कोशियन	हुगेरियन	रशियन
ज़ैक	इटैलियन	सर्वियन
डैनिश	जापानी	स्पैनिश
डच	लैटिश	स्वीडिश
अग्रेज़ी	लिथूनियन	अर्केनियन
फिनिश	मराठी	यिड्डिश

एक बार 'लीग आव नेशन्स' (राष्ट्र-सघ) की 'अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक सहयोग' नामक सस्थाने जाँच करके अपनी रिपोर्टमे लिखा था—"इस समय ससारमे सबसे अधिक अनुवादित ग्रन्थकार स्टीफन ज्विग हैं।"

स्टीफ़न ज्विगका जन्म सन् १८८१ में वियनामें हुआ था। उनके पिता मोरावियाके एक यहूदी थे और वे वडे चतुर व्यापारी थे। अपने कौशलके कारण वे अपनी पचासवी वर्षमे करोडपति वन गए थे। ज्विगकी माता इटलीके अनकोना नामक स्थानमें पैदा हुई थी और इटैलियन तथा जर्मन दोनो भाषाओको वखूबी वोल सकती थी। ज्विगके नाना के कुटुम्वी स्विटज़रलैडकी सीमाके निकट रहते थे और वहाँ से वे भिन्न-भिन्न देशोको चले गए थे। कोई फ्रास गए, कोई इटली तो कोई अमरीका। इस प्रकार उस परिवारके बच्चे जन्मसे ही कई भाषाएँ वोल सकते थे। अतएव अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोणको विकसित करना उनके लिए सर्वथा स्वाभाविक था।

वियना नगरी अपने साहित्यिक तथा साँस्कृतिक वातावरणके लिए योरोपभरमें प्रसिद्ध थी। वह दो हजार वर्ष पुरानी थी और कम-से-कम एक हज़ार वर्षसे तो उसकी साँस्कृतिक परम्परा बिना किसी वाधाके उत्तरोत्तर वढती चली आ रही थी।

उदाहरणके लिए वहाँकी काँफीकी दूकानें लीजिए। आने- दो-आने देनेपर वहाँ कोई भी व्यक्ति चाय या काँफी पी सकता था और साथमें वियनाके ही नही, जर्मनी, फ्रान्स, इटली और अमरीका तक के खास-खास

बीसियो अखबार तथा मासिक पत्र भी पढ सकता था। इन दूकानोपर साहित्यिक लोग अनेक विषयोपर वार्तालाप तथा वादविवाद किया करते थे। लिखनेके लिए वहाँ कागज-कलम का प्रबन्ध था और वे अपनी डाक भी वहाँ लिपटा सकते थे। कभी-कभी वे ताश भी खेलते थे। दर-असल इन दूकानोने सार्वजनिक क्लबका रूप धारण कर लिया था। आस्ट्रियाके साँस्कृतिक धरातलको ऊँचा करने और वहाँके निवासियोके दृष्टिकोण को अन्तर्राष्ट्रीय बनानेमे चाय-कॉफीकी इन दूकानोका जबरदस्त हाथ था।

प्रारम्भिक पाठशालामे पढनेके बाद ज्विगको जिमनेशियम नामक विद्यालयमे पढनेके लिए भेजा गया। वहाँकी नीरस पढाईके बोझका मनोरजक ब्यौरा ज्विगके आत्मचरितमे मिलता है। जीवित भाषाओमे फ्रेंच, अग्रेजी तथा इटैलियन तो पढाई ही जाती थी, पर उनके साथ-साथ ग्रीक तथा लैटिनका भी अध्ययन करना आवश्यक था। मातृभाषा जर्मन अलग। रेखागणित और विज्ञान इनके अलावा। ज्विगने उस शुष्क जीवनका जो करुणोत्पादक चित्र खीचा है, वह भारतीय विद्यालयोकी वर्तमान शिक्षण-पद्धतिसे मिलता-जुलता है। यूरोपमें तो परिस्थिति बहुत-कुछ बदल चुकी है। शिक्षा अब वहाँ भार-स्वरूप नही रही, विद्यार्थी समानता के धरातलपर अध्यापकोसे बातचीत करते है और उनकी व्यक्तिगत आकाक्षाओ तथा रुचियोका भी ख्याल रखा जाता है, पर हमारे मुल्क मे तो "वही रफ्तार बेढगी जो पहले थी सो अब भी है।"

उपर्युक्त कृत्रिम वातावरणके होते हुए भी यदि स्टीफन ज्विगने अपनी प्रतिभा का विकास कर लिया तो उसका श्रेय उनके क्लासके विद्यार्थियो की स्पर्धाकी भावना को मिलना चाहिए। एक तो उन दिनो वियनामे नाटक, साहित्य तथा कलाके लिए वैसे ही काफी उत्साह था। समाचार-पत्र खासतौरपर इन विषयोपर लिखा करते थे, नगर की किसी भी साहित्यिक या सास्कृतिक घटनाको वे उपेक्षाकी दृष्टिसे न देखते थे और फिर जिस

कक्षामे स्टीफन ज्विग भर्ती हुए थे, वह विशेष रूपसे कला-प्रेमी और साहित्यानुरागी थी। क्लासमे पढाया कुछ जाता था और छात्र चुरछिपकर पढते कुछ और ही थे। लैटिनके व्याकरणके पृष्ठोके पीछे कविताओके पन्ने जोड दिए जाते थे और गणितकी कापियोपर सुन्दर-से-सुन्दर काव्योकी नकल कर दी जाती थी। शिक्षक शिलरकी कविताओपर लेक्चर देते थे और विद्यार्थी डैस्कमे छिपा-छिपाकर नीत्सेके ग्रन्थ पढते थे। छात्रोमे यह प्रतियोगिता रहती थी कि हमारा ज्ञान अपटूडेट रहे। वे पुस्तक-विक्रेताओकी दूकाने छान डालते थे, नवीन किताबोकी प्रतीक्षा बडी उत्कण्ठासे करते थे, पुस्तकालयोसे ग्रन्थ लाते थे और जो कोई विद्यार्थी नई बातका पता लगा लेता तो वह दूसरे सगी-साथियोको उसे बतलानेमे गौरव अनुभव करता था। उन लोगोमे होड-सी लगी रहती थी कि कौन पहले किसी नवीन चीजका पता लगा ले। इसके सिवा विद्यार्थीयोकी प्रतिभाके विकास पर सबसे अधिक प्रभाव डाला वियनाकी चाय-कॉफीकी दूकानोने, जिनका जिक्र हम ऊपर कर चुके है। सत्रह वर्षकी उम्रमे स्टीफन ज्विगने जिस लगनके साथ साहित्यका अध्ययन किया था, वह लगन अपने जीवनके उत्तर भागमे वे कदापि प्रदर्शित नही कर सके। वाल्ट ह्विटमैन तथा अन्य कवियोकी बीसियो कविताऐ उन्हे कण्ठस्थ थी। आगे चलकर स्टीफन ज्विगको साहित्य-जगत्मे जो विश्व-व्यापी कीर्ति मिली उसकी नीव विद्यार्थी जीवनमे ही पड चुकी थी। उन्होने लिखा है—

"विद्यार्थी जीवनकी साहित्यिक तथा सास्कृतिक जिज्ञासाने मेरे रक्तमे प्रवेश कर लिया था—बौद्धिक प्रेरणा मेरी नस-नसमे व्याप्त हो गई थी और आगे चलकर जो कुछ मैने पढा और सीखा उसका दृढ आधार उन्ही वर्षोका अध्ययन है। यदि बाल्यावस्थामे किसी आदमीका शरीर निर्बल रह जाय तो बडी उम्रमे वह उसकी क्षति-पूर्ति कर सकता है, पर यदि कोई अपनेमे विश्वात्माका अनुभव करना चाहता हो तो उसके लिए यह

अनिवार्य है कि वह यौवनावस्थामे ही आत्माकी ग्रहणशक्ति को विकसित कर ले।"

जब स्टीफन ज्विग केवल उन्नीस वर्षके ही थे, जर्मन-काव्य ग्रन्थोके एक सर्वश्रेष्ठ प्रकाशकने उनकी कविताओका एक संग्रह छापना स्वीकृत कर लिया। उस समय उस नवयुवक कवि को जो हर्ष हुआ, उसका बडा आकर्षक वर्णन उन्होने किया है। उस ग्रन्थकी मुख्य-मुख्य समाचार-पत्रो तथा प्रतिष्ठित कवियोने मुक्त कठसे प्रशंसा की थी और जर्मनीके एक सर्वोत्तम गायनाचार्यने उनकी छ कविताओको स्वरलिपियोमें बद्ध कर दिया था।

पर स्टीफन ज्विग अपनी रचनाओंके विषयमें अत्यन्त सावधान और काफी कठोर रहे हैं। उस काव्यग्रन्थकी एक भी कविता उन्होने अपने बादके सग्रहमे शामिल नहीं की। उन्होने अपने साहित्यिक जीवनका एक सिद्धान्त बना लिया था कि कोई भी अधपकी चीज हमारे हाथसे न निकलने पावे। इसी कारण उन्होने अपने प्रारम्भिक जीवनकी कितनी ही पुस्तकें दुबारा नहीं छपने दी। १९०१ में उनकी प्रथम पुस्तक छपी थी और फरवरी सन् १९४२ में, अपने आत्मघातके पहले, उन्होने अपनी अन्तिम पुस्तक प्रकाशकको भेज दी थी। इस बयालीस-वर्षीय अखण्ड साहित्यिक तपस्याका दृष्टान्त विश्व-साहित्यमें मुश्किलसे ही मिलेगा।

हम पहले बतला चुके है कि ससारकी तीस भाषाओमें ज्विगकी पुस्तकोका अनुवाद हो चुका है। जर्मनी, फ्रास और इटलीमें वे समानरूपसे लोकप्रिय थे। उनके ग्रन्थ लाखोकी सख्यामें छपकर जर्मनीमें घर-घर फैल गये थे। इटलीमें मुसोलिनी उनकी रचनाओके प्रशंसकोमें अग्रगण्य थे और रूसमे मैक्सिम गोर्कीने उनके ग्रन्थोके रूसी अनुवादकी भूमिका लिखी थी। अग्रेजीमे उनके सग्रह ग्रन्थोका अनुवाद हो चुका है। उनकी किसी-किसी किताबकी पचास-पचास हजार प्रतियाँ एक वर्षमें

बिक गई। उनकी कितनी ही पुस्तकोके आधारपर नाटक बनाये गए, कितनी ही पर फिल्मे बनाई गई और बाज-बाज पुस्तक ढाई लाख छपी और फिर ससारका सबसे अधिक अनुवादित ग्रन्थकार होना क्या कम गौरवकी बात है ?

ज्विगने बडी विनम्रताके साथ अपनी इस सफलताका रहस्य आत्मचरितमे बतलाया है। वे लिखते है—

"मुझमे एक बडी भारी कमजोरी है, वह यह कि किसी भी अनावश्यक वाक्य या प्रसगको पढकर मुझे बडी झुंझलाहट होती है, किसी भी अस्पष्ट बातसे मेरा धैर्य छूट जाता है और कोई भी चीज, जो पुस्तकके प्रवाहमे बाधा डाले, मेरे लिए असह्य हो उठती है। बस मेरी यह स्वभावगत कमजोरी ही मेरी सफलताका मूल कारण है।"

ज्विगके लिखनेका तरीका यह था कि पहले तो वे जितना भी मसाला किसी विषयपर मिल सकता, इकट्ठा करते थे और उसके लिए वे कोना-कोना छान डालते थे—क्या मजाल कि कोई चीज उनकी तेज़ निगाहसे छूट जाय—और फिर प्रथम पाण्डुलिपि तैयार कर लेते थे। तब उनका वास्तविक कार्य प्रारम्भ होता था। अगर पहली कापी एक हजार पृष्ठकी होती तो अन्तिममे सिर्फ दो सौ ही पृष्ठ बाकी रह जाते थे। शेष आठ सौको रद्दीकी टोकरीमे फेंक देना कोई आसान काम न था, पर इसमे उन्हे अलौकिक आनन्द मिलता था।

एक बार ज्विग महोदय बडे प्रसन्न दीख पड रहे थे। उनकी पत्नीने उनसे कहा, "मालूम होता है कि आज आपने अपनी किसी रचनाकी काफी काट-छाँट कर डाली है।"

ज्विगने बडे अभिमान के साथ उत्तर दिया—"हाँ, मैने एक पैराग्राफको साफ उडा दिया और घटना-प्रवाहमे और भी गति ला दी।"

'काता और ले दौडे' की नीतिके अनुयायी इससे कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते है।

ज्विग लिखते हैं—

"मैंने तमाम बाहरी सम्मानोको अस्वीकार ही किया है। कभी किसी पद या प्रतिष्ठा अथवा उपाधि इत्यादिको ग्रहण नही किया। न किसी सभाका प्रधान बना और न किसी सोसाइटी या कमेटी अथवा परिषद्से अपना सम्बन्ध रक्खा। भोजोमें शामिल होना मेरे लिए अत्यन्त कष्टप्रद रहा है और किसीसे कुछ माँगनेके पहले ही—चाहे वह प्रार्थना परोपकारार्थ ही क्यो न हो—मेरी जबान सूख जाती है। मै जानता हूँ कि आज की दुनियामे इस प्रकारके ख्यालात दकियानूसी ही माने जावेगे। पद और उपाधि इत्यादिसे एक फायदा तो होता ही है, वह यह कि आदमी धक्कम-धक्केसे बच जाता है। पर मेरे मनमे एक आन्तरिक अभिमान है, जिसे मैंने अपने पिताजीसे पैतृक सम्पत्तिके रूपमे पाया है और उसी अभिमानके कारण मै इन तमाम उपाधि व्याधियोसे बचा रहा हूँ।"

ज्विगके पिताजी करोडपति थे और थे अव्वल नम्बरके स्वाभिमानी। वे किसी का भी अहसान अपने ऊपर नही लेना चाहते थे। उनके लिए मान-सम्मान प्राप्त करना बहुत आसान था, पर आत्माभिमानवश वे उनसे दूर ही भागते रहे। ज्विगने भी इसी नीतिका अनुसरण किया। जिस प्रकार कोई नट बाँसके सन्तुलनके द्वारा रस्सी पर चला जाता है और इधर-उधर नही झाँकता, उसी प्रकार ज्विगने माता सरस्वतीकी आराधनामे कभी कोई आघात नही आने दिया। 'समत्वं योगमुच्यते' योगकी इस परिभाषाके अनुसार ज्विग सचमुच साहित्य-योगी थे।

ज्विगने अपने जीवन-चरितमे नवयुवक लेखकोको एक बडे पतेकी बात बतलाई है। वे लिखते है—

"यदि कोई नवयुवक लेखक अपने लक्ष्यके विषयमे अनिश्चित हो तो उसे मै एक ही परामर्श दूंगा, वह यह कि वह किसी महान् लेखककी छोटी-मोटी पुस्तकका अनुवाद करे या फिर उसके आधारपर कोई ग्रन्थ लिख दे। नवीन लेखक जो भी सेवा आत्म-त्यागकी भावना से करेगा, उसमे

उसे अपनी कृतिकी अपेक्षा सफलता मिलनेकी विशेष सम्भावना रहेगी; क्योकि भक्ति-पूर्वक किया हुआ कोई भी कार्य कदापि निष्फल नहीं होता।"

ज्विगका यह अनुभूत प्रयोग—आजमूदा नुसखा—था और यह हृदयगम करनेकी चीज है। वरहेरन नामक फरासीसी कविकी रचनाओके अनुवादमे उन्होने दो-ढाई वर्ष लगा दिए थे और इस प्रकार अपनी स्थायी कीर्ति की नीव रक्खी थी। अनुवाद इतना बढिया हुआ था कि खुद फ्रेंच भाषाकी अपेक्षा जर्मन-भाषामे वरहेरनका नाम अधिक प्रसिद्ध हो गया।

महाकवि चकवस्तने कहा था, "दीन क्या है, किसी कामिलकी इबादत करना।" अर्थात् योग्योकी पूजा ही वास्तविक धर्म है। ज्विगकी रचनाओ-को देखकर यह निश्चय हो जाता है कि उन्होने भी योग्योकी पूजाको ही अपना साहित्यिक धर्म मान लिया था। यद्यपि ज्विग अच्छे कवि थे, बहुत बढिया नाटककार और यूरोपमें उनके मुकाबलेके आलोचक बहुत ही कम पाये जाते थे, तथापि उनकी कीर्ति मुख्यतया उनके लिखे जीवन-चरितोसे ही चिरस्थायी रहेगी। उनका लिखा रोमां रोलांका जीवन-चरित एक आदर्श ग्रन्थ माना जायगा। इनके सिवाय बालजक, डिकिन्स, स्टेण्डहल, फाउचे, ऐरेसमस, मेरी स्टुआर्ट, मेरी ऐण्टोइनेट और फ्रायड इत्यादि पर लिखे हुए उनके विस्तृत निबन्ध, ग्रन्थ अथवा रेखाचित्र उनकी चरित्र-चित्रणकी असाधारण योग्यताको प्रकट करते हैं। सूखी हड्डियोमे जान डाल देना ज्विगके लिए मानो बाएँ हाथका खेल था। चरित-नायको या चरित-नायिकाओकी अन्तरात्मामे प्रवेश करके उनकी जीती-जागती मूर्ति पाठकोके सम्मुख खडी कर देनेकी कलामे वे अद्वितीय थे।

किसी प्रतिभाशाली लेखकके प्रसिद्धि प्राप्त कर लेनेपर तो उसके सहस्रो प्रशसक मिल जाते हैं। ज्विगकी दूरदर्शिताकी तारीफ करनी चाहिए कि वे छिपे हुए हीरोको प्रकाशमे लाया करते थे। उनका परिचय

रोमाँ रोलाँसे जिस प्रकार हुआ, उसकी कथा बड़ी मनोरजक है। ज्विग महोदय एक बार किसी रूसी महिलाके यहाँ निमन्त्रित किये गए थे। वे स्थापत्य-कलामे विशेषज्ञ थी और मूर्तियाँ बनाया करती थी। ज्विग महोदय ठीक वक्त पर उनके यहाँ पहुँचे, पर श्रीमतीजी गैरहाजिर थी—(रूसी लोग भी हम भारतीयोकी तरह ही समयके गैरपाबन्द होते है!) इसलिए ज्विगने बैठे-बैठे एक पत्रिका हाथमे उठाली। वह रोमाँ रोलाँकी मित्र-मण्डली द्वारा सम्पादित थी और 'जाँ क्रिस्ताफ' नामक उपन्यास, जिसपर आगे चलकर नोबुल पुरस्कार मिला, इसी पत्रिकामें धारावाहिक रूपसे निकल रहा था। उन महिलाके आनेपर ज्विगने उनसे पूछा—"ये रोमा रोलाँ महाशय कौन है?" वे इसका कोई सन्तोष-जनक उत्तर न दे सकी। पेरिस पहुँचकर ज्विगने रोमाँ रोलाँको तलाश करना शुरू किया। पर किसीसे उनके बारेमे पूरा-पूरा पता न चला! आखिरकार ज्विगने अपनी एक पुस्तक रोमाँके नाम भेज दी और उन्होने उत्तरमे लिखा, "आप मेरे यहाँ पधारनेकी कृपा कीजिए।" ज्विग उनसे मिले और दोनो मे जो घनिष्ट मित्रता स्थापित हो गई, वह जीवनके अंत तक रही। १९२१मे उन्होने जर्मन-भाषामे रोमाँ रोलाँका जीवन-चरित प्रकाशित किया, जिसका अनुवाद अँग्रेजीमे भी हो चुका है।

ज्विग ससारके नागरिक थे। अपनी कलमसे उन्होने कभी भी एक भी वाक्य ऐसा नही लिखा जो जातीय विद्वेषको फैलानेमे सहायक होता। यद्यपि राष्ट्रीयताके नक्कारखानेमे उनकी तूतीकी आवाज़ किसीने नही सुनी, तथापि वे अपने निर्दिष्ट मार्गसे कभी विचलित नही हुए। जिन्होने प्रथम महायुद्धमे (१९१४ से १९१८ तक) विचार-स्वातन्त्र्यका झण्डा ऊँचा रखा और जो घृणा तथा विद्वेषके वातावरणसे ऊँचे उठ सके, ऐसे यूरोपियन लेखकोमें रोमाँ रोलाँ तथा स्टीफन ज्विग अग्रगण्य थे और इस पिछले महायुद्धका दुष्परिणाम दोनोको ही भयकर रूपसे भोगना पडा। दोनो ही हिटलरशाहीकी बलिवेदीपर बलिदान हो गये!

यदि किसी लेखकको नाज़ीवादके अत्याचारोको सबसे अधिक मात्रामे-सहन करना पडा तो वे स्टीफन ज्विग ही थे। उनकी किताबे लाखोकी सख्यामें जर्मनीमें फैली हुई थी। वे सब ज़ब्त कर ली गईं, जलवा दी गईं और बची-खुची तालोमें बन्द कर दी गईं। उन्हे एक मुल्कसे दूसरे मुल्कको भागे-भागे फिरना पडा। उनका लाखोकी कीमतका साहित्यिक सग्रहालय, जिसकी गणना ससारके सर्वश्रेष्ठ प्राइवेट म्यूज़ियमोमे की जानी चाहिए, छिन्न-भिन्न हो गया और उनके पारिवारिक कष्ट भी पराकाष्ठाको पहुच गए। अपनी पूज्य वृद्धा माताकी अन्तिम बीमारीके दिनोमे वे उनकी मृत्युशय्याके पास भी न पहुँच सके। ज्विग आस्ट्रियन थे, यहूदी थे, ससारके नागरिक थे, उनका दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय था और वे शान्तिवादी थे। इसमेसे एक ही चीज़ उनकी अनुभूतियोको कष्टमय बनानेके लिए पर्याप्त थी, पर उसमे तो ये सभी एकत्र हो गई थी। इसलिए उन्हे भरपूर मात्रामें कालकूटका पान करना पडा—ज़हरके एक-दो प्याले नही, घडे-के-घडे पीने पडे!

इस सक्षिप्त लेखमें हम ज्विगके आत्मचरितका शताश भी नही दे सकते। उनके लिए तो एक लेख-माला ही लिखी जानी चाहिए। यहाँ हम उनका अन्तिम पत्र प्रकाशित करते है, जो उन्होने अपनी पत्नीके साथ विषपान करनेके पूर्व २२ फरवरी, सन् १९४२ को लिखा था।—

निवेदन

"स्वेच्छासे और अपने होश-हवाशकी दुरुस्तगीमें अपने प्राण-त्याग करनेके पहले मै अपना अन्तिम कर्तव्य-पालन करना चाहता हूँ। मैं ब्रेज़िल देशकी आश्चर्य-जनक भूमिको, जिसने मुझे प्रेमपूर्ण आश्रय दिया, हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। इस भूमि-खडके प्रति मेरे हृदयमे श्रद्धा दिनो-दिन बढती ही गई है और यदि कोई ऐसा देश है, जहाँ मै अपना जीवन पुन: प्रारम्भ कर सकता था तो वह ब्रेजील ही है, क्योकि मेरी मातृ-भाषा

की भूमि मेरे लिए समाप्त हो चुकी है और मेरी आध्यात्मिक मातृ-भूमि यूरोपने आत्मघात कर लिया है।

"लेकिन अब मैं साठ वर्षसे ऊपरका हो चुका और अब बिल्कुल नवीन जीवन प्रारम्भ करनेके लिए असाधारण शक्तिकी आवश्यकता है। जो शक्ति मुझमे थी, वह वर्षोंतक लामकान होकर इधर-से-उधर भागे फिरनेमे खर्च होचुकी है। इसलिए मै यही ठीक समझता हूँ कि इस जिन्दगीका खात्मा कर दिया जाय। जिस जीवनमे मुझे बौद्धिक परिश्रमसे सबसे अधिक आनन्द मिला और जिसमे मैने व्यक्तिगत स्वाधीनताको ही ससारकी सर्वोच्च वस्तु समझा, उसकी समाप्ति ठीक समय पर, जबकि मै तनकर खड़ा हो सकता हूँ, हो जानी चाहिए। सम्पूर्ण मित्रमण्डलको मै नमस्कार करता हूँ। ईश्वर करे कि दीर्घ रात्रिके बाद उषाके दर्शन करनेका सौभाग्य उन्हे प्राप्त हो। मैं तो अपना धैर्य खो चुका हूँ, इसलिए उसके पहले ही विदा होता हूँ।

पैट्रोपोलिस —स्टीफ़न ज्विग

२२–२–१९४२

जहाँ तक हृदयकी कोमल भावनाओके विश्लेषण और चित्रणका सम्बन्ध है, ज्विगकी गणना ससारके सर्वश्रेष्ठ लेखकोमे कवीन्द्र रवीन्द्र और रोमाँ रोलाँ के साथ ही की जायगी, पर जहाँ लेखन-प्रवृत्तिकी वफ़ादारी का प्रश्न है, ज्विग निस्सन्देह अद्वितीय थे। जिन्दगीके जो उतार-चढाव उन्होने देखे, जिस तरह बेघरबारके होकर उन्हे एक देशसे दूसरे देशको भागना पडा, यहूदी होनेके कारण उन्हे घृणाका जितना अधिक शिकार बनना पडा और अपनी कोमल भावनाओ पर जितने जबरदस्त आघात सहने पडे, उनके मुकाबलेमें ससारके बडे-से-बडे साहित्य-सेवियोकी तपस्या फीकी पड जायगी। ज्विग दु.खोके विश्वविद्यालयमें से आचार्य होकर निकले थे, जबकि दूसरे लोग केवल प्रवेशिका परीक्षा पास कर पाते है या हद-से-हद स्नातक ही बन पाते है!

सम्भवत कुछ महानुभाव ज़्विगके आत्मघातके महत्वको न समझ सकेगे। उनसे हमारा अनुरोध है कि वे उनके विस्तृत आत्मचरितको पढे। वीणाके तार भला घनकी चोटोको कबतक सहन कर सकते थे ?

यद्यपि हिटलरशाही तथा नाजीवादको खासी करारी चोटे सहनी पडी ह और दोनो ही आज धराशायी होकर धूल चाट रहे है, तथापि जो मर्मान्तिक चोट ज़्विगने अपने इस आत्मचरितसे दी है, उसकी कसक सबसे अधिक व्यापक होगी।

ज़्विगका आत्म-चरित और आत्मबलिदान इस बातका प्रमाण है कि सहस्रो वायुयान तथा लाखो बम जो काम नही कर सकते, वह एक दृढ-प्रतिज्ञ आत्मा कर सकती है। विशालकाय हाथीके क्षुद्र चीटी द्वारा मारे जानेकी बात सच है या नही, हम नही जानते, पर नाज़ीवादके भूतके लिए ज़्विगकी जीवनी शिवकी विभूति है। एक साहित्य-साधक सतीकी तरह साधना करके और अपनी समस्त शक्तियोको केन्द्रित करके कितना ऊँचा उठ सकता है, ज़्विगका जीवन इसका एक उज्ज्वल दृष्टात है।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम तथा विश्वव्यापी शान्तिके जिन सिद्धान्तोके लिए ज़्विग जिये और मरे, वे सिद्धान्त आज भी ससारमे स्थापित नही हो पाये और आज भी जगत्के आकाशमे घृणा तथा विद्वेषकी घटाएँ छाई हुई है। पर यह अन्धकारमय रात्रि बहुत दिनो तक नही रहेगी और जिस उषाका स्वप्न ज़्विगने देखा था, उसके कभी-न-कभी दर्शन अवश्य होगे।

जिस महामानवने अपनी जीवन-ज्योति द्वारा द्वेषके अन्धकारको दूर करने और प्रेमके प्रकाशको लानेके लिए भरपूर प्रयत्न किया और फिर जिसने अपनी इस जीवन-ज्योतिको नाटकीय ढगसे बुझाकर उस पर्देकी वीभत्स कालिमाके पूर्ण रूपसे दर्शन करा दिये, उस अद्वितीय

साहित्य-साधक स्टीफन ज्विगकी स्मृतिमें हमारी यह श्रद्धांजलि अर्पित है।

ज्विग अमर है और वह दिन शीघ्र ही आनेवाला है, जब यूरोपकी तरह भारतवर्षमें भी उनके ग्रन्थ लोकप्रिय बनेंगे और उन्हे अक्षय कीर्ति प्राप्त होगी। कीर्तिर्यस्य स जीवति।

: ११ :

पतिव्रता जयिनी

"बहन, यह खयाल मत करना कि इन छोटे-छोटे कष्टोके कारण मै हिम्मत हार वैठी हूँ। मुझे यह अच्छी तरह मालूम है कि मै अकेली ही तकलीफमे नही हूँ। दुनियामें लाखो आदमी मुझसे कही अधिक कष्ट पा रहे है, बल्कि मै तो यह कहूँगी कि इन तमाम दु खोके होते हुए भी मै बडी सौभाग्यशालिनी हूँ। दर-असल मै अपनेको बहुत सुखी मानती हूँ, क्योकि मेरे प्रिय पति, जो मेरे जीवनके आधार है, बराबर हर वक्त मेरे साथ है। पर एक बात है, जिसके बोझसे मेरी अन्तरात्मा दबी जा रही है और जिससे मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है, वह यह कि मेरे पतिको इतनी अधिक चिन्ता करनी पडती है और इतनी तकलीफ उठानी पडती है। अत्यन्त भयकर दु खमय स्थितिमे भी वे आत्म-विश्वास नही खोते, भविष्यके लिए आशा करते है, हमेशा हँसमुख बने रहते है और हँसी-मज़ाक करते रहते है। मुझे प्रसन्नचित्त देखकर उन्हें बडी खुशी होती है, और जब वे प्यारे बच्चोको मेरे चारो ओर किलकारियाँ मारते हुए देखते है तो उनका हृदय प्रफुल्लित हो उठता है।"

साम्यवादके प्रवर्तक कार्ल मार्क्सकी धर्मपत्नी जयिनीने उपर्युक्त पत्र अपनी एक सहेलीको लिखा था। अब उन 'छोटे-छोटे' कष्टोका भी हाल सुन लीजिए, जो इस दम्पतिको उठाने पड रहे थे।

उन दिनो कार्ल मार्क्स लन्दनमे रह रहे थे। डीन स्ट्रीट न० २८के दो छोटे-छोटे कमरोमें अत्यन्त निर्धन आदमियोकी बस्तीमे अपने तमाम बाल-बच्चोके साथ छ वर्ष तक उन्हे रहना पडा था। एक शयन-गृह और

दूसरा बैठकखाना, रसोईघर और पढ़ने-लिखनेके कमरेका काम देता था। आर्थिक संकटका क्या कहना! कार्ल मार्क्सके जीवन-चरितमें ई० वी० कार नामक लेखकने लिखा है—"कितने ही अवसर ऐसे आते थे, जब कि घरमें एक पेनी भी नहीं रहती थी और बाल-बच्चोंके साथ भूखों मरनेकी नौबत आ जाती थी। मकान-मालिक और दुकानदारोंके तकाज़ोंके मारे नाकोदम थी। हर घड़ी कोई-न-कोई खड़ा रहता था। दरवाज़ेपर आवाज़ आती रहती थी—'मार्क्स, ओ मार्क्स. हमारे दाम अभी तक नहीं पहुँचे, हिसाब कबतक साफ करोगे?' बच्चे भी इस स्थितिको समझ गये थे और वे यह जवाब देना भी सीख गये थे—'मिस्टर मार्क्स घरपर नहीं है, कहीं बाहर गये हुए हैं।' कभी इस दुकानदारसे रुपया उधार लाते, तो कभी उससे। कभी किसी दोस्तका दरवाज़ा खटखटाते, तो कभी किसी बोहरेके यहाँ अपनी स्त्रीका गहना गिरवी रखने जाते! एक चिट्ठीमें कार्ल मार्क्सने लिखा था—

"For the last fortnight I have had to run about for six hours a day in order to raise six pence for some food."

अर्थात्—"पिछले पन्द्रह दिनोंमें मुझे नित्यप्रति छ:-छ: घंटे इधर-उधर दौड़ना पड़ा है, जिससे कहींसे छः आने पैसे जुटाकर अपने बाल-बच्चोंके तथा अपने पेटमें कुछ डाल सकूं।" कभी-कभी तो उन्हें लिखनेके लिए कागज़ लानेके वास्ते अपना ओवरकोट भी गिरवी रखना पड़ता था!"

फ़रवरी सन् १८५२में कार्ल मार्क्सने अपने परम मित्र ऐंजिल्सको लिखा था—"पिछले हफ्ते-भरसे मेरी हालत बड़े मजेकी रही है। सर्दीके मारे घरसे निकला नहीं जाता, क्योंकि ओवरकोट तो गिरवी रखे हुए हैं और गोश्त भी खानेको नहीं मिलता, क्योंकि कसाईने उधार देनेसे इन्कार कर दिया है! . . .इस बीचमें एक ही खुशखबरी सुनाई दी है, वह यह कि आखिर मेरे चचिया ससुर साहब बीमार हैं। सालीकी चिट्ठीमें

यह शुभ समाचार आया है। अगर ये मनहूस चल बसे तो मेरी स्त्रीको कुछ पैसा मिल जायगा और मेरा इस सकटसे उद्धार हो जायगा।"

पर चचिया ससुर साहबको अपने भाईके दामादकी इस प्रकार सहायता करनेकी जल्दी नही थी।

सारे कुटुम्बके भूखो मरनेकी नौबत आ गई थी। कभी-कभी उन्हें भोजनके लिए केवल रोटी ही मिलती थी, और उसमें भी मार्क्सको अपना भाग छोड देना पडता था, जिससे बच्चोको भर-पेट भोजन मिल सके। भूख और जाड़ेसे चेतनाहीन-से होनेपर भी कार्ल मार्क्स ब्रिटिश म्यूजियममे जाकर अध्ययन करते थे और सामयिक पत्रोके लिए लेख लिखकर, जिनका पारिश्रमिक बहुत थोडा मिलता था, वे कुछ पैसा कमा लेते थे और अपनी गुजर करते थे। निर्धनतासे अत्यन्त तग आकर उन्होने रेलके दफ्तरमे क्लर्कीके लिए अर्जी दी; पर हस्ताक्षर खराब होनेके कारण वह भी नामजूर हो गई। बादमे वे 'न्यूयार्क ट्रिब्यून'के लन्दनके सवाददाता नियुक्त हुए। इससे उन्हे एक पौंड प्रति सप्ताह मिल जाता था। वर्षों तक इसी अल्प आयपर सारे परिवारको गुजर करनी पडी थी। लन्दन-जैसे महानगरमे एक पौंडकी नाममात्रकी आमदनीसे क्या हो सकता था, इसका अनुमान पाठक खुद ही कर सकते है।

श्रीमती जयिनी मार्क्सने अपने एक पत्रमे लिखा था—"हम लोगोके विषयमे कोई यह नही कह सकता कि हमने वर्षों तक जो त्याग किये थे, अथवा जो-जो बाते सही है, उनका कभी ढिढोरा पीटा हो। हमारे व्यक्तिगत मामलो और दिक्कतोकी खबर बाहर बिलकुल नही गई, अथवा यदि गई भी तो बहुत थोडी। अपने पत्रका राजनैतिक सम्मान बचानेके लिए और अपने मित्रोके नागरिक सम्मानकी रक्षाके लिए मेरे पतिने सारा बोझ अपने कन्धोपर उठा लिया। उन्होने अपनी सारी आय खर्च कर दी और विदा होते समय सम्पादकोका वेतन तथा अन्य बिल चुकाये, और वे जबरदस्ती अपने देशसे निकाल बाहर किये गए। तुम जानते

हो कि हमने अपने लिए कुछ नही रखा। मैंने फ्राकफुर्त जाकर अपने चाँदीके अन्तिम वर्तन गिरवी रखे थे और कोलोनमें अपना फर्नीचर वेचा था।....तुम लन्दनकी और वहाँकी अवस्थाको काफी अच्छी तरह जानते हो। तीन बच्चे थे और चौथा उत्पन्न होनेवाला था! केवल किरायेमे प्रतिमास ४२ थेलर चले जाते थे। हमारी जो-कुछ थोडी जमा-पूँजी थी, वह शीघ्र ही विला गई। दूध पिलानेवाली धायके रखनेका सवाल कल्पनासे परे था, इसलिए मैंने अपना ही दूध पिलाकर बच्चेका पालना निश्चय किया, यद्यपि मेरी छाती और पीठमे बराबर भयानक दर्द रहता था। परन्तु उस नन्हे-से बच्चेने चुपचाप मेरी चिन्ताओंको इतना अधिक पी लिया था कि पैदाइशके दिनसे ही वह बीमार-सा था। वह दिन-रात पीडासे व्यथित पडा रहता था।....इस प्रकार एक दिन मै बैठी हुई थी कि इतनेमे अचानक मकानवाली आई। उसे हम जाडेमे २५० थेलर दे चुके थे और अब यह करार हुआ था कि भविष्यमें हम लोग किराया मकान-मालिकको दिया करेंगे। उसने इस इकरारसे इन्कार कर दिया और पाँच पौण्ड जो किरायेके थे, माँगने लगी। चूँकि हम लोग उसी समय किराया न दे सके, इसलिए दो कान्सटेबिल घुस आये। उन्होंने हमारी बची-खुची चीजोंको—चारपाई, कपडे, बिछौने, यहाँ तक कि मेरे छोटे बच्चेका पालना और मेरी दोनो लडकियोंके, जो पास खड़ी हुई फूट-फूटकर रो रही थी, खिलौने तक—कुर्क कर लिया। उन्होंने यह भी धमकी दी कि दो घटेके भीतर वे प्रत्येक वस्तु उठा ले जायँगे। मै कठोर भूमिपर अपने सर्दीसे गलते हुए बच्चोको लिये पड़ी थी।.... दूसरे दिन हमे घरसे निकलना पड़ा। पानी वरस रहा था, ठड पड रही थी और चारो ओर मनहूसी छाई थी। मेरे पति सवेरेसे ही कमरोकी तलाशमें गये थे, परन्तु चार बच्चोकी बात सुनकर कोई भी हमे रखनेको राजी न होता था। अन्तमे एक मित्रने मदद की। दवाखानेवाले, रोटी-वाले, मांसवाले और दूधवालेका दाम चुकानेके लिए मैंने अपने विस्तर

बेच डाले। मकानवालीके काण्डसे ये सब डर गये थे और सबने फौरन ही अपने-अपने बिल पेश कर दिये थे। बिछौने फुट-पाथपर लाकर एक गाडीपर लाद दिये गए। हम लोगोंके पास जो-कुछ था, उसे बेचकर हम लोगोने पाई-पाई चुका दी।"

इस भयकर गरीबीकी हालतमे इस दम्पतिके कई बच्चे पैदा हुए। मार्क्स बडे प्रेमी पिता थे। वे कहा करते थे— "Children have to bring up their parents." अर्थात्—"माता-पिता बच्चोंका पालन-पोषण थोडे ही करते है, बल्कि बच्चे माता-पिताका पालन-पोषण करते हैं।" अपने प्यारे बच्चोको वे बडे प्रेमसे पालते थे। हरएक बच्चेका उन्होने प्रेमका नाम रख छोडा था। अत्यन्त सकटमय स्थितिमें भी उन्होंने हिम्मत नही हारी थी, पर गरीबीके कारण जिस मुहल्लेमें उन्हें रहना पडता था, वह अत्यन्त गन्दा था और उसकी आबहवा इतनी खराब थी कि बच्चे हमेशा बीमार ही रहा करते थे। इन बच्चोको भूखी माँ कहाँ तक अपना दूध पिलाती? बिचारे एक-एक करके इस दुखमय ससारसे चलने लगे। इस प्रकार आधे बच्चे अपने माता-पिताको रुलाकर चल बसे। मार्क्सके जीवन-चरित-लेखक मि० जे० स्पारगोने लिखा है— "मार्क्सका चौथा बच्चा हेनरी, जो लन्दनमे उत्पन्न हुआ था, जन्मसे ही दरिद्रताके क्रूर दैत्यके आपका भाजन था और उसे छोटी अवस्थामे ही मृत्यु बदी थी, जो सहस्रो ही बच्चोके भाग्यमे लिखी रहती है। यह पहला ही अवसर था, जब मृत्युने मार्क्सके क्षुद्र घरमे प्रवेश किया था। माता-पिताको यह चोट और भी गहरी लगी, क्योकि वे जानते थे कि उनके नन्हे बच्चेकी, जिसने क्षुधा-पीडित माताके स्तनोका रक्त पिया था, वास्तवमे दरिद्रताने हत्या की थी।"

इसके बाद सन् १८५२की वसन्तऋतुमे इस दुखी दम्पतिकी छोटी कन्या फ्रान्सिस्काकी मृत्यु हो गई। जयिनीकी डायरीमें उस समयकी भयकर दरिद्रताका इस प्रकार उल्लेख है—

"इसी वर्ष ईस्टरमे—१८५२—हमारी बेचारी छोटी फ्रान्सिस्का कठनालीके भयकर प्रदाहसे चल बसी ! तीन दिन तक बेचारी मृत्युसे सघर्ष करती रही। उसका छोटा मृत शरीर पीछेके छोटे कमरेमे पडा था। हम सब आगेके कमरेमे चले आये। रातमें हम लोग उसी कमरेके फर्शपर सोये। मेरी तीनो जीवित सन्तानें मेरे पास लेटी। . . . हमारी बच्चीकी मृत्यु उस समय हुई, जब हमारी दरिद्रताका सबसे बुरा समय था। हमारे जर्मन मित्र हमारी सहायता नही कर सके।.. अन्तमे आत्म-वेदनासे त्रसित होकर मै एक फ्रेंच निर्वासितके पास गई, जो समीप ही रहता था और कभी-कभी हमारे यहाँ आता था। मैंने उससे अपनी दारुण आवश्यकता बतलाई। उसने तुरन्त ही बडी मित्रतापूर्ण सहानुभूतिसे मुझे दो पौण्ड दिये। इसीसे हमने अपनी प्यारी बच्चीके कफन (ताबूत)के दाम चुकाये, जिसमें वह शान्तिपूर्वक सुला दी गई।"

इसके बाद जयिनीका आठ वर्षका इकलौता बेटा एडगर, जिसे मार्क्स प्रेमके नामसे यानी 'मश' कहकर पुकारा करते थे, मन्द ज्वरसे चल बसा। इस भयकर वज्रपातको मार्क्स भी, जो स्वभावत· बडे धैर्यशाली थे, सहन नही कर सके। मार्क्स कभी किसीके सामने अपना दुखडा नही रोते थे, पर पुत्र-शोकने उनको भी विचलित कर दिया। उन्होने उसकी मृत्युके तीन महीने बाद अपने एक मित्रको लिखा था—

"Bacon says that men of real worth have so many relations with nature and the world, so many objects of interest, that they easily get over any loss. I am not one of these men of worth. The death of my child has profoundly shattered my heart and brain, and I feel the loss just as fresh as on the first day. My wife is also quite broken down."

अर्थात्—"बेकनने लिखा है कि जो आदमी वास्तवमे सुयोग्य होते है, उनके प्रकृति तथा ससारसे इतने अधिक सम्बन्ध होते है और उनकी रुचि इतनी अधिक वस्तुओमे होती है कि किसी भी क्षति या हानिको वे आसानीसे सहन कर लेते है; पर मै तो उन सुयोग्य व्यक्तियोमेंसे नही हूँ। लडकेकी मृत्युने मेरे हृदय तथा मस्तिष्कको बिलकुल ही चकनाचूर कर दिया है और आज भी वह क्षति मेरे लिए उतनी ही ताजी है, जितनी कि पहले दिन थी। मेरी स्त्रीका भी स्वास्थ्य बिलकुल नष्ट हो गया है।"

इस दुर्घटनाने जयिनीको तो बिलकुल पागल-सा ही बना दिया था। बहुत वर्षो बाद तक उसकी हूक उनके कलेजेमें व्याप्त रही। इस वज्रपातके बीस वर्ष बादके एक पत्रमे जयिनीने बडे ही करुणाजनक ढगसे लिखा था •

"मै इस बातको खूब अच्छी तरह जानती हूँ कि इस प्रकारके भयकर वज्रपातोको सहन करना कितना कठिन है और फिर इनके बाद अपने मस्तिष्कको ठीक-ठिकाने लानेमे कितनी देर लग जाती है। उस समय जीवनकी छोटी-छोटी प्रसन्नताओ, बडी-बडी फिक्रो, नित्यप्रतिके घरेलू काम-धन्धो और दैनिक झझटोसे पीडित व्यक्तिको बडी मदद मिलती है। तत्कालीन छोटे-छोटे कष्टोकी वजहसे वह महान् दु ख थोडी देरके लिए सो जाता है, और बिना हमारे पहचाने उसकी पीड़ा दिनोदिन मन्दतर होती जाती है। यह तो मैं नहीं कहूँगी कि घाव भर जाता है। घाव तो कभी नहीं भरता—खास तौरसे माँके हृदयका घाव तो कभी नहीं पूरता। लेकिन क्रमश हृदयमे एक प्रकारकी नवीन ग्रहणशक्ति उत्पन्न होने लगती है, नवीन कष्टो और नवीन प्रसन्नताओके स्वागतके लिए एक भावना-सी पैदा होने लगती है। इस प्रकार उस पीडित व्यक्तिके दिन-पर-दिन बीतते जाते है। उसका हृदय घायल तो रहता ही है, पर उसमें नवीन आशाओका सचार निरन्तर होता रहता है।

अन्तमें सारा मामला शान्त हो जाता है और अनन्त शान्ति मिल जाती है।"

संसारके निर्धन पीडित व्यक्तियोको जयिनीके उपर्युक्त वाक्योंसे अवश्य ही बडी सान्त्वना मिल सकती है।

जयिनीका जीवन-चरित्र किसी उपन्याससे कम मनोरंजक और हृदय-वेधक नहीं है। उनका जन्म एक बडे साधन-सम्पन्न परिवारमें हुआ था। उनका पिता प्रशियामें एक अत्यन्त उच्च पदपर था। वह मार्क्सकी बड़ी बहन सोफीके साथ एक स्कूलमें पढती थी, इसलिए कभी-कभी सोफीके पास घर आया करती थी। बस, यहींसे प्रेमका अंकुर उगना शुरू हुआ। जयिनीकी उम्र बाईस वर्षकी थी, जबकि कार्ल मार्क्स कुल अठारह वर्षके ही थे! कुछ दिनो तक तो यह प्रेम छिपा रहा और लोग यही समझते रहे कि जयिनी अपनी सहेली सोफीके पास यों ही आती-जाती है; पर प्रेमकी आँखें कबतक छिपाये छिप सकती है? मार्क्सके माता-पिताको इस बातका पता लग गया, लेकिन जयिनीको इतनी हिम्मत न हुई कि वह अपने माता-पितासे इस बातका जिक्र करती। इसके बाद कार्ल

" I know only too well how hard it is and how long it lasts before one finds one's balance after such losses. Life comes to our help with its little joys and its big cares, with all its little daily drudgeries and daily vexations, the greater pain is dulled by the little suffering of the hour, and without our noticing it the ache grows fainter. Not that the wound is ever healed, especially not in a mother's heart But little by little there awakes again in the spirit a new receptiveness and a new feeling for fresh suffering and fresh joy, and so one lives on and on with a wounded yet always hoping heart, until at last all is quiet and there is peace for ever"

मार्क्सको र्बालन जाना पडा । वहन सोफीने इस अवसरपर दूतीका काम किया । कार्ल मार्क्सकी चिट्ठी जयिनीके पास पहुँचाना उसीका काम था । और तो और कार्ल मार्क्सके पिता भी, जो अपने पुत्रको अत्यन्त प्रेम करते थे, इस मामलेमें काफी दिलचस्पी लेने लगे थे । उन्होंने अपनी एक चिट्ठीमे मार्क्सको लिखा था—

"मेरे प्रिय कार्ल, तुम यह वात जानते हो कि कभी-कभी मै ऐसे मामलोमें फँस जाता हूँ, जो मुझे इस उम्रमें शोभा नही देते और जिनके कारण मुझे वडी परेशानी उठानी पडती है। तुम्हारी ज ने मुझपर असीम विश्वास करना प्रारम्भ कर दिया है और अपने दिलकी प्रत्येक वात वह मुझसे कह देती है । प्यारी भोलीभाली लडकी सदा इस चिन्तामें ग्रस्त रहती है कि कही उसकी वजहसे तुम्हारे भावी कार्यमे वाधा न पडे और कही तुम सामर्थ्यसे अधिक परिश्रम न करने लगो। उसे सबसे वडी फिक्र इस वातकी लगी रहती है कि उसके माता-पिता इस वारेमें कुछ भी नही जानते, वल्कि मै तो यह कहूँगा कि वे इस वारेमें कुछ भी जानना नहीं चाहते । यह वात खुद जयिनीकी समझमें नही आती कि वह, जो अपनेको वडी सुलझी हुई और समझदार लडकी समझती है, इस प्रेम-पाशमें वँध कैसे गई ?"

•

अव यह मुश्किल सवाल सामने था कि जयिनीके माता-पिताको इस घटनाकी सूचना कौन दे ? इस वातको जयिनी जानती थी कि जव मेरे माता-पिता सुनेंगे कि मैंने गरीव घरके एक लडकेसे, जो मुझसे उम्रमें भी चार वर्ष छोटा है, प्रेम कर लिया है, तो उनके दिलको वडा धक्का लगेगा । कहाँ प्रशियाके एक उच्च पदाधिकारीकी लड़की और कहाँ एक साधारण यहूदी वकीलका लडका ।

आखिर कार्लने यह सोचा कि मै ही इस कार्यको करूँगा । यह निश्चित हुआ कि वह वर्लिनसे पत्र द्वारा अपने भावी ससुरको इस वातकी सूचना दे । जयिनी डरके मारे थरथर काँपती थी कि न-जाने उसके माता-

पिता इस घटनासे कितने पीडित होगे, इसलिए उसने यह अनुरोध किया कि चिट्ठी डाकमें डालनेसे आठ दिन पहले मुझे खबर मिल जानी चाहिए, ताकि मै उस अग्नि-परीक्षाके लिए तैयार हो जाऊँ! दुर्भाग्यसे कार्ल मार्क्सका वह पत्र सुरक्षित नही रहा, और न हमे इस बातका पता लगता है कि आखिर सास-ससुरने उस पत्रका किस प्रकार स्वागत किया, पर प्रतीत ऐसा होता है कि सास-ससुरने होनहार प्रबल समझकर इस प्रस्तावको सहन कर लिया।

हृदय-क्षेत्रमे प्रेमके इस प्रवेशने कार्ल मार्क्सके नीरस हृदयमे कवित्वका सचार कर दिया। पाठकोको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि साम्यवादके आचार्य कार्ल मार्क्सकी प्रथम रचना शिक्षित जनताके सम्मुख कविताके रूपमे आई। आगे चलकर श्रीमती जयिनी बड़े अभिमानसे अपने यहाँ आनेवालोसे कहा करती थी—"कभी वह भी ज़माना था, जब मेरे ये दार्शनिक और अर्थशास्त्री पति मेरे प्रेमके कारण कवि बन गये थे!"

१२ जून सन् १८४३को—जबकि उनकी सगाई हुए छ.-सात वर्ष हो गये थे—मार्क्सने जयिनीका पाणिग्रहण किया। २ दिसम्बर सन् १८८१ तक, जबकि सती-साध्वी जयिनीने इस लोकसे प्रयाण किया, यानी ३८ वर्ष तक, यह जुगल जोडी ससारके हितके लिए अनन्त दु.ख सहती रही।

विवाहके बाद मार्क्स भोग-विलासमे नही पड़ गये। विवाहके बादके तीन महीनोमे कार्ल मार्क्सने राजनैतिक, आर्थिक तथा विधान-सम्बन्धी इतिहासके एक सौ ग्रन्थ पढे और तीन लम्बी-लम्बी कापियोमे उनके नोट लिये।

विवाहके १८ वर्ष बाद जयिनीने अपनी एक सहेली श्रीमती वेडमेयरको ११ मार्च सन् १८६१के पत्रमें लिखा था—

"यहाँ हमारे जीवनके आरम्भिक वर्ष बड़े कटु थे, परंतु आज मै उन दुःखदायिनी स्मृतियोपर, अपने कष्टो और दु.खोपर अथवा अपने

प्यारे स्वर्गीय बच्चोपर—जिनके चित्र हमारे हृदयमे गहरे शोकसे अकित है—कुछ नही लिखना चाहती। ..फिर पहला अमेरिकन सकट आया और हमारी आय "न्यूयार्क ट्रिब्यून'से काटकर आधी कर दी गई। एक वार फिर हमे अपने पारिवारिक व्ययको सकुचित करना पडा और हमपर कर्ज भी हो गया। अव मै अपने जीवनके सवसे उज्ज्वल अशपर आती हूँ। जो हमारे अस्तित्वमे प्रकाश और प्रसन्नताकी एकमात्र किरण थी—वह थी हमारी लडकियाँ। हमारी लडकियाँ अपने स्वार्थहीन और मधुर स्वभावसे हमे सदा आनन्दित किया करती है, परन्तु उनकी छोटी वहन तो घर-भरके लिए प्रेमकी मूरत हो रही है। मुझे वडा भयंकर बुखार आया और डाक्टर बुलाना पडा। २० नवम्बरको डाक्टर आया, उसने मुझे अच्छी तरह देखा और वडी देरतक चुप रहनेके वाद वोला—'श्रीमती मार्क्स! मुझे अफसोससे कहना पडता है कि आपको चेचक निकली है—बच्चोको फौरन घरसे हटा दीजिए।' उसके इस फैसलेपर घर-भरको कैसा दुख हुआ और हम कैसी मुसीवतमे पडे, इसकी तुम कल्पना कर सकती हो। मै मुश्किलसे चारपाई छोडनेके योग्य हुई थी कि इतनेमे हमारे प्यारे कार्ल बीमार पड गये। सव तरहकी चिन्ताओ, फिक्रो और अत्यधिक आशकाओने उन्हे चारपाईसे लगा दिया। परन्तु ईश्वरको धन्यवाद है कि चार सप्ताहकी बीमारीके बाद वे अच्छे हो गये। इस बीचमे फिर 'ट्रिब्यून'ने हमारा वेतन आधा कर दिया था।... मेरी प्यारी सखी, तुम्हें मेरा प्रेमपूर्ण अभिवादन है। ईश्वर करे, परीक्षाके इन दिनोमें तुम वीर बनी रहो। ससार साहसी व्यक्तियोका है। वरावर अपने पतिको दृढता और हृदयसे सहायता देती रहो तथा शरीर और मनको सदा सहिष्णु बनाये रखो। .. तुम्हारी हार्दिक मित्र—जेनी मार्क्स!"

आर्थिक दुर्दशाकी हद हो गई थी। शनिवारका दिन था। घरमे एक पैसा भी न था, न किसी मित्रसे कुछ उधार मिला और न किसी दुकान-

दारने सामान उधार दिया ! कल इतवारको सवेरे खाना कैसे बनेगा, इसकी फिक्र थी। आखिर जयिनीने कहा—"और तो कुछ है नही, मेरे मायकेके ये ठोस चाँदीके चम्मच है, इन्हे कही गिरवी रखके कुछ दाम लाओ।" कार्ल मार्क्स उन्हें ही लेकर दुकानदारके पास पहुँचे। दुकानदारने देखा कि उन चाँदीके चम्मचोके ऊपर अर्जिलके ड्यूकका राजचिह्न है। उसे शक हुआ और उसने सोचा कि हो न हो, इस विदेशी भिखमगेने इस चीज़को कहीसे चुराया है ! चोरीका माल समझकर उसने पुलिसके सिपाहीको बुलाया। मार्क्सने बहुत समझाया-बुझाया कि इन्हे मेरी पत्नी अपने मायकेसे लाई है; पर उनकी कौन सुनता है ? पुलिसवाला कार्ल मार्क्सको पकडकर थानेपर ले गया। वहाँ उन्हें जाकर हवालातमे बन्द कर दिया और कह दिया कि जब तक जाँच न हो जाय, तबतक यही बैठो। सोमवारको सवेरे जाकर पता लगा कि ये महाशय कौन है और तब वे छोड दिये गए।

सकटके दिन आये और एकके बाद दूसरी आपत्तियाँ आईं। जयिनी कभी-कभी बडी निराश हो जाती थी। मार्क्सने अपने एक पत्रमे लिखा था—

"My wife tells me every day that she wishes that she and the children were in the grave, and I cannot really blame her, for the humiliations, torments and abominations which we go through in our situation are simply indescribable."

अर्थात्—"मेरी स्त्री मुझसे प्रतिदिन यही कहा करती है कि 'इस दुर्दशासे यही अच्छा होता कि मै अपने बच्चोके साथ कब्रमें चली गई होती।' पर मै अपनी पत्नीको दोष नही देता, क्योकि जैसी अपमानजनक स्थितिमें हमे रहना पडता है, जो अत्याचार और कष्ट हमे सहने पडते है, जिस प्रकार पग-पगपर हमे जलील होना पडता है, उसका बयान नही किया जा सकता।"

कार्ल मार्क्सने अपने किसी-किसी पत्रमे जयिनीके चिड़चिडे स्वभावकी आलोचना की है, पर अनुमान तो कीजिए उस बेचारी पत्नीका, जिसका पति नित्यप्रति बारह-बारह घटे पुस्तकालयमे बिताता हो, जो अपने बच्चोको सूखी रोटी खिलानेमें असमर्थ हो और जो घरके लिए नोन-तेल-लकडीकी फिक्र छोडकर भावी ससारके प्रश्नोपर दार्शनिक विचार करनेमें मग्न हो ! भला, इस विकट परिस्थितिमे किस पाठक-पाठिकाकी सहानुभूति जयिनीके साथ न होगी ?

यह बात ध्यान देने योग्य है कि जयिनी अपने पति मार्क्ससे उम्रमें चार वर्ष बडी थी, इसलिए बुढापा उसपर और भी जल्दी आ गया था। छ बच्चे उसके हो चुके थे और गरीबी तथा बच्चोकी मृत्युने उसके शरीरको अत्यन्त निर्बल और मस्तिष्ककी स्नायुओको और भी कमजोर कर दिया था। सबसे बडी चिन्ता जयिनीको अपनी लडकियोकी रहती थी। ये लडकियाँ पढने-लिखनेमे बडी तेज थी और क्लासमे सदा अव्वल रहा करती थी । जयिनी एक काम करती थी, वह यह कि पतिकी थोडी-सी आमदनीमे से लडकियोकी फीस पहले निकाल लेती थी। उसे सबसे बडी फिक्र इस बातकी थी कि कही घरकी निर्धनताके कारण मेरी लडकियोको स्कूलमें ज़लील न होना पडे, पर निर्धन माता-पिताकी इन पुत्रियोको अपनी सखी-सहेलियोके सामने आत्म-सम्मानकी रक्षा करना अत्यन्त कठिन हो रहा था। माता और पुत्रियोमें कभी-कभी झगडा हो जाया करता था। ऐसे मौकोपर मार्क्स पुत्रियोका पक्ष लेते थे। मार्क्सको उस समय बड़ा दुःख हुआ था, जब उनकी लडकीको मजबूर होकर एक अग्रेज़ कुटुम्बमें दिन-भर बच्चोकी देखभाल करने और पढानेकी नौकरी करनी पडी थी। कार्ल मार्क्सने उन दिनो अपने एक मित्रको लिखा था—'मेरी स्त्री इतने चिडचिडे स्वभावकी हो गई है कि हमेशा बच्चोको लिये-दिये रहती है। मुझे लडकीकी नौकरी करना निहायत नापसन्द आया, पर वह बेचारी माँके व्यगोंसे तो बची रहेगी।"

यद्यपि मार्क्स अपनी पत्नीके इस चिडचिड़े स्वभावसे, जिसके लिए वे कम जिम्मेवार न थे, कभी-कभी तंग आ जाते थे, पर हृदयसे उसके प्रति श्रद्धा रखते थे। एक पत्रमें उन्होने जयिनीको लिखा था—

"प्रियतमे,

तुम्हारी चिट्ठीसे मुझे बडी खुशी हुई। मुझसे हृदयकी सब बात खोलकर कहनेमें तुम्हे कभी सकोच नही करना चाहिए। प्रियतमे, जब तुम्हे कठोर वास्तविकताका इतना अधिक सामना करना पड़ता है, तो कम-से-कम इतना फर्ज मेरा भी है कि तुम्हारे कष्टोको मै अपने हृदयसे अनुभव तो करूँ। मै इस बातको खूब अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम्हारी सहनशक्ति अनन्त है और छोटी-से-छोटी अच्छी खबरसे तुममे फिर जान आ जाती है। मुझे आशा है कि तुम्हें इस सप्ताह फिर पाँच पौण्ड भेज सकूँगा। इस सप्ताह नही तो सोमवार तक जरूर भेज सकूँगा।"

निस्सन्देह जयिनीमे अनन्त सहनशीलता थी।

अपने सकटके दिन कितने धैर्यके साथ इस दम्पतिने काटे, उसका विस्तृत वृत्तान्त लिखनेके लिए यहाँ स्थान नही है। जब कभी वे थोडा भी निश्चित होते तो एक-दूसरेका हाथ पकड़कर कमरेमें इधर-उधर टहलते और जर्मन भाषाके प्रेमके गीत गाया करते थे, ठीक उसी प्रकार, जैसे वे अपने देशमें, यौवनके आरम्भमे वसन्तऋतुमे, पुष्पोसे लदे वृक्षोंके नीचे गाया करते थे।

भोजन-वस्त्रके अभावमे इस प्रकार प्रसन्न रहना अत्यन्त कठिन काम था। एक बार कार्ल मार्क्सके किसी मित्रने जयिनी तथा उसकी दो लड-कियोंके लिए सुन्दर कपडे भेज दिये थे। उनको धन्यवाद देते हुए जयिनीने लिखा था—"आपको यह सुनकर हर्ष होगा कि लडकियाँ आपकी भेजी हुई पोशाकको पहनकर बडी मनोहर लगती है। इन कपडोमे उनके चेहरे कैसे मधुर, कैसे हास्यमय लगते है और कैसी ताज़गी उनसे टपकती है! आपने मेरे लिए जो कपड़े भेजे है, उन्हें पहनकर मै भी बडी शानदार जँचती

हूँ। जब मैं उन्हे पहनकर अभिमानके साथ अपने कमरेमे टहलने लगी तो छोटी बच्चीने पीछेसे चिल्लाकर कहा—'अम्मा-अम्मा, मोर-जैसी अम्मा !' अगर आज भयकर सर्दी न होती तो मैं तुम्हारे भेजे हुए इन्ही वस्त्रोको पहनकर वाहर निकलती, जिससे पास-पडोसके अभिमानी आदमियोपर कुछ रोव तो गँठता !"

जयिनीका शरीर अत्यन्त जीर्ण हो चुका था। सन् १८८१ मे जयिनी अपने पतिके साथ पेरिस गई और अपनी दोनो लडकियोमे जो विवाहके वाद पेरिसमें वस गई थी, जाकर मिली। पेरिससे लौटकर मार्क्स अत्यन्त वीमार हो गये। जयिनी तो पहलेसे ही अत्यन्त निर्वल थी। ऐसा प्रतीत हुआ कि वे दोनो साथ-ही-साथ इस ससारसे कूच करेगे, पर कार्ल मार्क्सकी तवियत कुछ सुधर गई और जयिनीकी मृत्युके समय वे उपस्थित थे। जब जयिनी विलकुल मरणासन्न थी, कुछ घटे ही मरनेमें वाकी थे, तव 'Modern Thought' (आधुनिक विचार) नामक पत्रसे किसी व्यक्तिका लेख, जो मार्क्सकी प्रशसामें लिखा गया था, उसे सुनाया गया था। विलायतमें यह पहला ही लेख था, जो मार्क्सकी तारीफमें लिखा गया था। पतिव्रता जयिनीने इस लेखको सुनकर सन्तोपकी एक साँस ली।

२ दिसम्वरको जयिनी स्वर्ग सिधारी। मार्क्स इसके वाद पन्द्रह महीने और जीवित रहे और अपनी पत्नीकी वरावर याद करते रहे। वे कहते थे—"जयिनी मेरे जीवनके सर्वोत्तम भागकी सहधर्मिणी थी।" १४ मार्च १८८३ को कार्ल मार्क्सका देहान्त हुआ और दोनोकी समाधि एक ही स्थलपर है।

लाला हरदयालका यह कथन वास्तवमें सत्य है कि युग-युगान्तर तक इस दम्पति—जयिनी-मार्क्स—की कष्ट-गाथा साधारण जनताको प्रोत्साहित करती रहेगी और भविष्यके वन्धनमुक्त मजदूरोके लिए वह वाइविलका काम देगी।

सितम्वर १९३६]

: १२ :

समाज-सेवी कागावा

मई १९१४

कोवेका एक गिरजाघर आज खूब सजा हुआ है। पादरी डाक्टर मेयर्स और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मेयर्स बड़ी खुशीसे इधर-से-उधर घूम रहे है। आज उनके एक जापानी शिष्य और मित्रका विवाह है। गिरजेमे सुन्दर-से-सुन्दर पुष्प इकट्ठे किये गए है। फूल बेचनेवाली लडकियाँ रग-बिरगे कपडे पहने हुए एक पक्तिमे खडी है। वह देखिए, दूल्हा और दुल्हिन भी आ पहुँचे। वैवाहिक शपथकी क्रिया समाप्त हुई। बाजे बजने लगे। चारो ओर हर्षका साम्राज्य है। दूल्हेके चेहरेसे प्रकट होता है कि वह दृढप्रतिज्ञ पुरुष है और दुलहिनके मुखपर विनम्रता तथा आज्ञाकारिता झलक रही है। दो रिक्शा-कुली इस दम्पतिको घर पहुँचानेके लिए बुलाये गए।

दूल्हेने रिक्शावालोसे कहा—"चलो भाई, ले चलो शिकावा बस्तीको।"

रिक्शेवालोके आश्चर्यकी सीमा न रही! उन्होने एक बार सुशिक्षित दूल्हेको देखा और फिर दुलहिनको और तब सोचने लगे—"कहाँ ये भले आदमी और कहाँ शिकावाकी गन्दी बस्ती, जहाँ निर्धन मजदूर, वेश्याएँ, चोर, उठाईगीरे और उचक्के रहते है! मामला जरूर कुछ गडवड़ है।" रिक्शेवालोने एक दूसरेकी ओर देखा और साफ मना कर दिया! पर यह दम्पति शिकावाको ही गये। दूल्हेका नाम था कागावा और दुलहिनका स्प्रिग (वसन्ती देवी)।

श्रीमती वसन्ती देवीने आकर पतिकी कोठरी देखी। उसका विस्तार

था ६ फीट लम्बाई, ६ फीट चौडाई ! और उनकी सुसरालमे कितने व्यक्ति थे ? ७० वर्षका एक बूढा और ६०–६५ वर्षकी एक बुढिया, ११ वर्षका एक अपराधी लडका, एक अनाथ माता और उनके चार बच्चे और एक भिखारिन ! वहाँ तो खडे होनेको भी जगह नही थी। कहनेकी आवश्यकता नही कि यह सारा कुटुम्ब 'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्ब-कम्' के सिद्धान्तके अनुयायी कागावाका परिवार था। किसी नई बहूके सामने ऐसी जटिल समस्या शायद ही उपस्थित हुई हो !

कागावाकी आमदनी कुलजमा तीन पौण्ड यानी करीब पैंतालीस रुपये थी और इतने ही मे ११ प्राणियोका पेट भरना था ! सबसे पहला काम वसन्ती देवीने यह किया कि बाजारसे सस्ते-से-सस्ते दरके चावल लाई और बिना मॉड निकाले उन चावलोको सस्ती तरकारियोंके साथ भोजनके समय देना प्रारम्भ किया। अब जरा शिकावा बस्तीका हाल भी सुन लीजिये। चारो तरफ गन्दगी और दुर्गन्धिका राज्य था। पाखाना एक था और उसका प्रयोग सौ आदमियो द्वारा होता था ! कपडोको एक छोटी-सी गलीमे धोना पडता था और उनके सुखानेके लिए कोई जगह नही थी। खटमलोकी भरमार थी और वे अमर थे—जितने ही मारो, उतने ही बढते थे !

भिखारी हरवक्त दरवाजेपर खडे ही रहते थे। कभी कोई गुडा शराब पिये उधरसे आ निकलता था तो कभी कोई बदमाश छुरी खीचकर कहता था कि इतने रुपये धर दो, नही तो तुम्हारा अभी खात्मा करता हूँ ! कागावाके लिए उन लोगोको समझाना-बुझाना कठिन हो जाता था और वे कुछ दे-दिलाकर अपना पिंड छुडाते थे। अतिथियोका क्या पूछना! कभी कागावा किसी गरीबको अपने घर ले आते तो कभी किसी बीमारको, कभी कोई अपराधी बालक आता, तो कभी जेलसे छूटी हुई कोई चिडिया, कभी बीमार वेश्याएँ आश्रय लेती तो कभी कोई पागल आ विराजता। एक मुश्किल और भी थी। कागावा पूर्णतय शाकाहारी है और

दूसरे जापानी उनके इस सिद्धान्तके अनुयायी नहीं थे। पर पतिव्रता वसन्ती देवीने कभी चूँ तक नहीं की और सहृदयतापूर्वक वे अपना सारा काम करती रहीं। वे आसपासके ग़रीब पड़ोसियों के घरपर जाती, बीमारोंकी सेवा-शुश्रूषा करती, प्रसूतिके समय माताओंकी मदद करती, नन्हें-नन्हे बच्चोंकी देखभाल करती और इसके सिवा समय-समयपर उन्हें उपयोगी सलाह-मशविरा भी देती। वसन्ती देवी यद्यपि पढ़ी-लिखी थीं; पर उनको उच्चशिक्षा प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। अब उन्होंने इस कमीको पूरा करनेका प्रयत्न किया। कागावा दो मजदूर विद्यार्थियोंको प्रातःकालमें ६ से ७ बजे तक और शामको ५ से ६ बजे तक अंकगणित, रेखागणित, बीजगणित तथा अन्य विषय पढ़ाते थे। श्रीमती कागावा इस कक्षामें शामिल हो गईं और तीसरे पहरको कोबे-स्त्री-समाजके स्कूलमें जाकर बाइबिल पढ़ने लगीं। आगे चलकर उन्होंने बड़ी उम्रमें मैट्रिक परीक्षा पास की और याकोहामामें तीन वर्ष अध्ययन करके ग्रेजुएट बन गईं। उन्होंने दो पुस्तकें भी लिखी हैं। एकमें तो उन्होंने फैक्टरीमें काम करनेवाली लड़कियोंका हाल लिखा है और दूसरीमें गन्दे मुहल्लोंका चित्र खींचा है। इन गन्दे मुहल्लेमें जो भयंकर वेश्यावृत्ति चलती है, उसके विषयमें उन्होंने एक लेख किसी पत्रमें लिखा था। इससे किसी वेश्यालयके स्वामीको क्रोध आ गया और मौका देखकर वह कागावाके घरपर आया और श्रीमती कागावाको अकेली पाकर खूब पीटा!

अपने जीवनके पन्द्रह वर्ष कागावाने इस कोठरीमें बिताये थे और उसका परिणाम जो हुआ, वह भी सुन लीजिए। कागावाके ग्रन्थोंको पढ़कर, उनके व्याख्यानोंको सुनकर और उनके जीवनको देखकर जापानकी जनताका ध्यान इन गन्दे मुहल्लोंकी ओर आकर्षित हुआ। सन् १९२६ में जापान-सरकारने यह निश्चय किया कि २ करोड़ ६० लाख रुपये खर्च करके जापानके ६ बड़े-बड़े नगरोंके (टोक्यो, ओसाका, याकोहामा, कोबे, क्योटो और नागोयाके) गन्दे मुहल्लोंको साफ कर दिया जाय। आज

इन नगरोमेंसे किसीमे गन्दे मुहल्लोका नामोनिशान नही रहा। कागावाकी वह ६ वर्गफीटकी कोठरी चली गई और अपने साथ ही ६ महा-नगरोके गन्दे मुहल्लोको भी लेती गई। उस महान् साधकका, जिसकी तपस्याने यह सब सम्भव किया, पुण्यचरित सक्षेपमे पाठकोको सुनाया जाता है।

कागावाका जन्म १० जुलाई सन् १८८८ को कोवेमें हुआ था। उनका पूरा नाम है टोयोहिको कागावा। उनके पिता पहले अव। प्रान्तमें उन्नीस गाँवोके मुखिया थे और बादमें बढते-बढते वे प्रिवी कौन्सिलके सेक्रेटरी बना दिये गए। उनका यह पद उतना ही उच्च समझा जाता था, जितना मन्त्रिमडलके किसी सदस्यका। इस पदपर रहते हुए उनका परिचय बडे-बड़े लोगोसे हुआ, पर भाग्यके वे ओछे थे। थोडे दिनो बाद उन्होने व्यापार करना शुरू किया और परिणाम-स्वरूप पासकी जमा-पूँजी भी गँवा बैठे। कागावाका चरित्र उस जमानेके बडे आदमियोकी तरहका था। पच मकारके वे बडे प्रेमी थे। उन्होने अपनी पत्नीको तो घरपर रख छोडा था और कोवेमें कई औरते रख ली थी। इन रखेलियोमें एक स्त्री बडी सुन्दर थी। इससे उनके चार सन्ताने हुई, जिनमें एकका नाम पडा टोयोहिको। टोयोहिको बड़ा होनहार बालक था, इसलिए पिताजीने उसे जारज सन्तान बनाये रखना पसन्द न किया और कानूनन गोद ले लिया। भोग-विलासपूर्ण जीवनका जो परिणाम होना था, वही हुआ। जब यह बालक चार वर्षका ही था कि पिताजीका देहान्त हो गया और माता भी उसी समय चल बसी। कागावा अपनी बडी बहनके साथ अपनी सौतेली माँ तथा दादीके पास रहनेके लिए गाँवको भेज दिये गए।

ये दोनो स्त्रियाँ बिलकुल एकान्तमे नीरस जीवन व्यतीत कर रही थी। घर क्या था, उजडा हुआ बगीचा था। पुत्रहीन माँ और विधवा पत्नीकी दशा दयनीय थी। उन दोनोको इन भाई-बहनका आना भार-स्वरूप प्रतीत होने लगा। सौतेली माँ तो कभी कागावासे बोलती ही नही थी

और दादीकी गाली-गलौजके मारे दोनो बच्चोकी जान आफतमे थी। कभी कागावा सोतेमे बिस्तरपर ही पेशाब कर देता था। इसके लिए बेचारे चार वर्षके बच्चेकी काफी पिटाई होती थी और किसी गरम चीजसे वे झुलसाये भी जाते थे, जिससे उनकी यह आदत छूट जाय। बहन कुछ झक्की-सी थी। घरके पिछवाडे कोनेमे बैठे-बैठे आँसू बहाना उसका नित्य-प्रतिका काम था। वह निरन्तर बीमार रहा करती थी। कागावाको बेचारी प्रेम भी क्या कर सकती थी! दादी उसे मजदूरनी समझकर कठोर-से-कठोर काम लेती थी और हर रोज उसे पीटती भी थी। बहनको निर्दयतापूर्वक पिटते देखकर कागावाका हृदय विचलित हो उठता था, नतीजा यह होता था कि दादी उसे घरके बाहरकी अँधेरी कोठरीमे बन्द कर देती थी! उन जेलखानोकी याद कागावाको इतने दिनो बाद भी आ जाती है। उन दिनो बेचारा कागावा घरसे भागकर पासके वेणु-कुजमें आश्रय लेता अथवा नदी-तटपर घूम-घूमकर अपना वक्त काटता। हाँ, जब कभी कोई अतिथि घरपर आता तो सौतेली माँ और दादी दिखा-वटके लिए उनके सामने कागावाको बडा प्रेम करने लगती! उस समय तो वे दयाका अवतार बन जाती! कागावाके अन्धकारमय जीवनमें तब प्रकाशकी एक किरण झलक जाती।

चार वर्ष नौ महीनेकी उम्रमे वे एक प्रारम्भिक पाठशालामे भर्ती कराये गए और वहाँ अन्य बच्चोके साथ पढने लगे। चूँकि घरपर उनके साथ अत्यन्त कठोरताका बर्ताव किया जाता था, इसलिए उनके हृदयमें अपनेको अत्यन्त क्षुद्र समझनेकी भावना इतनी छोटी उम्रमे ही पैदा हो गई थी, जिसका परिणाम यह हुआ कि वे अन्य बच्चोके साथ हिल-मिल नही सके। हाँ, एक किसानके लड़केसे, जो उनसे उम्रमे दो वर्ष बडा था, उनकी मित्रता अवश्य हो गई। इस लडके का पिता कागावाकी जमीनपर ही खेती करता था और वही एक कच्चे मकानमे रहता भी था। यद्यपि सासारिक पोजीशनके खयालसे दोनोमे महान अन्तर था; पर

आत्माओंके राज्यमें इस प्रकारकी असमानताका अस्तित्व ही नही रहता। कनफ्यूशिसके ग्रन्थ पढनेके लिए वे बौद्ध मन्दिरोमे भेजे जाते थे और उनके जीवनपर इस शिक्षाका काफी प्रभाव पडा है।

जब कभी कोई बौद्ध त्यौहार आता तो उन्हे एकाध पैसा मिल जाता। आज भी कागावा उस प्रसन्नताका स्मरण कर लेते है, जो उन्हे पैसा मिलने पर होती थी। वे भागते हुए मन्दिरपर जाते और कोई खिलौना खरीद लेते। बच्चोको मिठाईका शौक हुआ ही करता है, कागावा-को भी था। इसलिए वे चोरीसे दियासलाईकी डिबियामे शक्कर भरकर ले जाते और किसी खेतमें जाकर खाते। यद्यपि कागावाको स्कूलकी पढाईका काम पसन्द था, पर उनकी रुचि खेतीकी ओर थी और धानकी बुआईके वक्त वे बराबर किसानोके लडकोके साथ ही रहते थे। धानकी कटाईके समय भी छोटा-सा हँसिया लिये हुए वे बराबर मौजूद रहते थे। धानके पौधोसे वे खडाऊँ बनाते थे और अपने पहननेके लिए कपडा भी बुन लेते थे। मछली पकडना और पक्षियोका पालना भी उनके ही सुपुर्द था। घरके घोडेके लिए घास खोदनेको कागावा ही भेजे जाते थे और यह काम उन्हे पसन्द भी था। घोडेसे उन्हे प्रेम था और सिरपर घासका गट्ठा लादे हुए जब वे घर लौटते थे तब उनके मनमे स्वभावत. यह इच्छा उत्पन्न होती थी कि शाबाशीका एक शब्द भी उन्हे माता या दादीके मुँहसे सुननेको मिल जाता, पर वहाँ तो इसका भी टोटा था!

इन दिनो कागावाके जीवनमें एक ऐसी दुर्घटना हुई कि उसकी याद वे अभी तक नही भूले। पडोसकी एक लडकीके कही जोरकी चोट आ गई थी और वह उसकी वजहसे मृत्यु-शय्यापर लेटी हुई थी। गाँववालोंने झूठमूठको कागावाका नाम ले दिया! इस सोलह आने असत्य समाचारसे —अनभ्र वज्रपातसे—कागावाके हृदयको बडा धक्का लगा। उनके कोमल हृदयमें मानो किसीने पैनी कटारी चुभा दी। उन्हे पता लग गया कि घरवाले ही नही गाँववाले भी उनसे घृणा करते है। एक दिन तो

उन्होंने खाना छुआ भी नही और तीन दिन तक बराबर रोते रहे। कागावाके पास उस समय सात-आठ रुपये थे, सो उन्होने जाकर उस लडकीको दे दिये, यद्यपि वे जानते थे कि वे सर्वथा निरपराध है। लड़कीके मातापितासे उन्होने क्षमा-याचना भी की। कागावा उस समय दस-ग्यारह वर्षके थे; पर अडतीस-उन्तालीस वर्ष पहलेकी यह दुर्घटना उन्हे आज भी याद है। बेकसूर होनेपर जो इलजाम उनपर लगाया गया था, उसने उनके हृदयको घायल कर दिया और आज भी वह घाव पुरा नही है।

कागावाके एक बड़ा भाई भी था, पर वह ज़मीदारीके व्यसनोमें फँसा हुआ था और थोडे ही दिनोमे उसने सारी ज़मीन-जायदाद फूंक डाली। कागावाने अपने भाईसे कहा—"मुझे आज्ञा दीजिए कि मै इस ग्रामको छोडकर बाहर जा सकूँ। यहाँ मेरा मन नही लगता।" आज्ञा मिलनेपर कागावा निकटके टोकूशिमा नामक नगरको चले आये।

अवा छोडकर कागावा टोकोशिमाके मिडिल स्कूलमे भरती हो गये। भी उन्हे कठिनाइयोका सामना करना पडा। उनकी उम्र अन्य लडकोंके देखे कई वर्ष कम थी, इसलिए उन्हे मजाकका पात्र बनना पडता था। बड़े लड़कोंकी चारित्रिक कमज़ोरियोको देखकर उनके हृदयमें घृणाका संचार हो गया। कागावाने सोचा था कि स्कूलमें नये-नये लडकोसे मित्रता करनेका सौभाग्य प्राप्त होगा और इस प्रकार उनकी आत्मामें प्रेमकी जो भूख वर्षोंसे लगी हुई थी, उसकी तृप्ति कुछ अशोमे तो हो ही जायगी, पर यहाँ मामला उल्टा ही हुआ! अपने ग्रामपर उन्हे प्रकृति माताकी गोदमें रहनेका अवसर तो प्राप्त होता था, यहाँ वह भी हाथसे चला गया और छात्रालयके लड़कोसे भी प्रेमपूर्ण सम्बन्ध भी स्थापित न हो सका। यह काल कागावाके जीवनमे अत्यन्त निराशाका था।

इन दिनो कागावाका परिचय अपने स्कूलके ईसाई शिक्षक श्री काटायामासे हुआ, और कुछ दिनों बाद उनका सम्बन्ध डाक्टर मायर्स

और डाक्टर लौगनसे हो गया। दोनो पादरियोने कागावाके जीवनमे एकदम क्रान्ति ही कर दी। इन दोनो पादरियोके यहाँ कागावाका हृदयसे स्वागत होता था। पादरी साहव वड़े प्रेमके साथ उन्हे चाय पिलाते, रोटी खिलाते और गाना भी सुनवाते। कहाँ तो छात्रालयका शुष्क जीवन और कहाँ पादरियोके घरका प्रेमपूर्ण व्यवहार! यहाँ कागावा वाइविल भी पढने लगे। जव यह समाचार उनके चाचाको लगा (कागावा अव उन्हीके अतिथि थे), तो उन्होने कागावाको वहुत समझाया-वुझाया, डराया-धमकाया कि अगर तुम ईसाइयोके चक्करमे पड़े तो पिताकी वची खुची जायदादसे भी वचित कर दिये जाओगे। पर कागावाने उनकी एक न सुनी और चाचाने उन्हे अपने घरसे निकाल दिया!

सन् १९०५ में कागावा टोक्योके प्रेसवीटेरियन कालेजमें भर्ती होगये। उन्हे पढनेका खब्त था और दो वर्ष के भीतर उन्होने कालेजकी लाइब्रेरीके प्राय सभी महत्वपूर्ण ग्रन्थ पढ डाले! क्लासमें उनकी उपस्थितिसे अनेक शिक्षक घवराते थे, क्योकि कई विषयोपर उनका ज्ञान अनेक अध्यापकोकी अपेक्षा अधिक था। कागावाके साथी विद्यार्थी तो उन्हे देखकर आश्चर्य करते थे। कागावा जुगी आदमी थे। जिस विषयसे प्रेम होता उसे पढते और जिस विषयके प्रति रुचि न होती उसे छोड देते। नतीजा यह होता कि किसी-किसी विषयमें वे क्लासमे फिसड्डी रह जाते। इसके सिवा कागावामे एक झक और भी थी। जो सद्भाव उनके मनमे आते, उन्हे वे कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए भी उद्यत रहते थे। कहीपर एक बिल्लीका बच्चा मोरीमें डूव रहा था। आप उसे उठा लाये और नहलाकर उसे अपने कमरेमे रख लिया! एक मरघिल्ले कुत्तेको भी, जो न घरका था और न घाटका, आपने अपनी सरक्षकतामें ले लिया! जव साथके छात्रोने इस पागलपनका विरोध किया तो आपने कहा—"किसी सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट कुत्तेको तो चाहे जो प्रेम कर सकता है, पर इस अभागे लेंड़ी कुत्तेकी चिन्ता कौन करेगा?" कुत्ते और बिल्ली तक

तो गनीमत थी; पर अबकी बार कागावाने एक और भी अधिक आपत्तिजनक काम किया। आप रास्तेपरसे एक भिखारीको ले लाये और उसे अपने कमरेमे स्थान दे दिया और उसे अपने पाससे भोजन भी कराने लगे मानो वह उनका भाई ही हो! जो थोडे से रुपये उन्हे मिलते थे, उनमे से भी वे दान देते थे, यहाँ तक कि अपने जूते और कपड़े भी दे डालते थे। अपनेसे भी गरीब विद्यार्थियोंकी सेवा करनेके लिए वे सदा उद्यत रहते थे।

टाल्सटायके ग्रन्थोको पढकर कागावा अहिंसावादी बन गये। उन दिनो रूस-जापानका युद्ध हो रहा था। कालेजकी मीटिंगमे कागावाने युद्धका विरोध और शान्तिका समर्थन किया। नतीजा यह हुआ कि साथी विद्यार्थियोने उन्हे देशद्रोहीकी उपाधि दे डाली और उनसे सब सम्बन्ध तोड दिया। विद्यार्थियोको यह आशा थी कि कागावा दब जायँगे; पर वे दबनेवाले नही थे। आखिर उन्होने एक षड्यन्त्र किया। रातके वक्त वे कागावाको भरमाकर कालेजके बाहर खेलनेकी जगह पर ले गये और वहाँ बीस विद्यार्थियोने उनकी अच्छी तरह मरम्मत की। "इस विश्वासघाती, 'देशद्रोही', 'शान्तिवादी' की अच्छी तरह खबर लो।" कहकर जब उनके साथी उनपर घूसोंकी बौछार कर रहे थे, उस समय कागावा हाथ जोडे हुए खडे थे और कह रहे थे—"परमपिता! इन्हें क्षमा करो, क्योंकि ये नही जानते कि ये क्या कर रहे है?" इन पीटनेवालोमे धर्म-विज्ञान-कक्षाके विद्यार्थी भी थे!

कालेजमें जब वे द्वितीय वर्षमे थे तब उन्हे क्षयकी बीमारी हो गई। मुंहसे खून गिरने लगा, इसलिए उन्हे कालेज छोड़कर समुद्रतटके एक ग्राममे जाकर रहना पडा। वहाँ रहते हुए उन्होने अपने प्रथम उपन्यास का प्रारम्भ किया। इस उपन्यासने आगे चलकर उन्हे जापानके सर्वश्रेष्ठ लेखकोकी श्रेणीमे बिठला दिया। वह अत्यन्त निर्धनताकी दशामें लिखा गया था, यहाँ तक कि उस समय उनके पास लिखनेके लिए कागज

भी नही था। पुराने रद्दी मासिक पत्रो के पृष्ठोपर कूचीसे यह उपन्यास लिखा गया था। अपनी दृढ इच्छा-शक्तिके कारण ही कागावा क्षय-जैसी भयकर बीमारीके चक्करसे छूट सके।

सन् १९०९ का बडा दिन कागावाके जीवनका एक महत्वपूर्ण दिवस है। उस दिन उन्होंने अपनी गठरी उठाकर गाडीपर रख दी और कालेजसे सीधे शिकावाकी गन्दी वस्तीकी ओर चल पडे। जिस कोठरीको उन्होंने अपना निवास-स्थान बनाया, उसका क्षेत्रफल था ३६ वर्गफीट, यानी वह दो गज लम्बी थी और दो गज चौडी। उस कोठरीमें कुछ दिन पहले एक खून हो चुका था। लोगोमे यह भी अफवाह फैली हुई थी कि उसमे भूत रहते है और वह इसलिए खाली पडी हुई थी। व्यापारमे मन्दी आजानेके कारण भिखमगोकी सख्या और भी बढ गई थी। उन्होंने कागावाको घेरना शुरू किया। कैसे-कैसे आदमियोको कागावाने आश्रय दिया, उनका ब्यौरा भी सुन लीजिए

एक लडकेके तमाम शरीरपर खुजली हो रही थी। उसने शरण ली। कागावाने उसे अपनी कोठरीमें रख लिया। नतीजा यह हुआ कि कागावाको भी खुजली हो गई।

एक शराबी आदमी कई महीने इस कोठरीमे रहा।

एक हत्यारा था, जो जेल भी काट चुका था और जिसके दिलमे यह भय बैठ गया था कि मेरे द्वारा मारा हुआ आदमी भूत बनकर मेरा पीछा कर रहा है। यह कागावाके पास ही सोता था और डरके मारे कागावाका हाथ किचकिचाकर पकड लेता था।

एक आदमीने आकर कहा कि कई दिनसे मुझे पानीके सिवा कुछ भी नही मिला। उसे भी कागावाने आश्रय दिया।

इस प्रकार कागावाके कुटुम्बमें चार आदमी हो गये। उन्हें अपने धर्म-विज्ञान-कालेजसे कुल-जमा २२ शिलिंग यानी सोलह रुपये प्रतिमास-का वजीफा मिलता था, उसमे चार आदमियोकी गुजर करना मुश्किल

हो गया। इसलिए उन्हे १५) महीनेपर लालटेन साफ करनेका काम करना पड़ा।

एक बार तो इस कोठरीमे दस आदमी आ घुसे! कही बैठनेको भी जगह नही रही। आखिर एक दीवार तोड डाली गई। एक आदमी तो उनमे क्षयके रोगसे पीडित था और उसके कपडे कागावा खुद अपने हाथसे धोते थे। एकका दिमाग ठिकाने नही रहा था, गोकि वह काफी पढा-लिखा था, पर उसके घरवालोने तथा दोस्तोने भी उसे छोड दिया था। एक बीमार वेश्या थी, जिसे सिफलिसका रोग था।

एक भिखारी था, जिसकी आँखोमे ट्रेकोमाकी बीमारी थी। कागावाको भी यह भयकर बीमारी लग गई और इससे उनकी दृष्टि अत्यन्त मन्द पड़ गई है!

एक भिखारीने आकर कहा—"तुम बडे ईसाई बनते हो! मै तब जानूं, जब तुम अपना कुरता मुझे दे दो!" कागावाने उसे अपना कुरता दे दिया। दूसरे दिन अपना कोट और पाजामा भी उसके हवाले कर दिया।

किसीने यह झूठी खबर फैला दी कि कहीसे कागावाको बहुत-सा रुपया गरीबोकी सेवामे खर्च करनेको लिए मिला है। बस, फिर क्या था, जुआरियोके सरदारने उनकी कोठरी पर धावा बोल दिया और ४५ रुपये माँगे। कागावा कुछ बहाना बनाकर बाहर निकले और वहाँसे भागे। उस धूर्तने पाँच गोली कोठरीके दीवारमे दागी और एक भिखारीसे कहा—"जब कागावा लौटकर आवे तो कह देना कि मैं व्यर्थकी धमकी नही देता था।"

एक बार कागावा बुरी तरह फँस गये। एक गुण्डेने कहा—"तीस शिलिंग दो, नही तो अभी तुम्हारे प्राण लेता हूँ।" कागावाने ३० शिलिंग देकर जान बचाई।

कागावाके आसपासकी कोठरियोमें दुराचारोके अड्डे थे। उन्हें

वेश्यालय कहना अधिक उपयुक्त होगा। कागावाने वेश्यागमनके विरुद्ध व्याख्यान देना शुरू किया। कई वेश्याओंने पश्चात्ताप किया और अपना पेशा छोड़ मेहनत-मजूरी करनेका वचन दिया। जिन धूर्तोंको इन वेश्यालयोंसे लाभ होता था, वे बडे नाराज हुए और एकने आकर कागावाको धमकाया और उनके खाने-पीनेके सारे बर्तन ही तोड डाले।

शिकावाकी गन्दी बस्तियोंमें जिन्दगीका कोई मूल्य ही नही था। हत्या कर डालना तो एक मामूली-सी बात थी। जो हत्या कागावाकी कोठरीमे उनके आनेके पूर्व हुई थी, उसका कारण थी सिर्फ पाँच आनेकी रकम। कागावाको पहले वर्षमें ही सात हत्याएँ अपने आसपास देखनी पडी। एक हत्या मुर्गीके बच्चेके लिए की गई थी। दो आदमियोंमें औरतके लिए झगडा हुआ। एक कहता था मेरी है, दूसरा कहता था मेरी। इसीमें एकका कत्ल हो गया। तेरह बरसके एक बच्चेने इसी उम्रके दूसरे बच्चेको मार डाला।

इन गन्दी बस्तियोंका अधिक विवरण देनेकी आवश्यकता नही। इनमें प्राय रिक्शा खींचनेवाले, सडक खोदनेवाले, मजदूर, कुली, सस्ती मिठाई बेचनेवाले, छोटे-मोटे ज्योतिषी, हत्यारे, वेश्याएँ और उनके दलाल रहा करते थे। चोरों और जुआरियोंके अड्डे भी यहीं थे।

कागावाने जब २१ वर्षकी उम्रमे शिकावाकी गन्दी बस्तीमें प्रवेश किया, उस समय उन्होने अपने मनमें कहा था—'मुझे किसी बातका डर नहीं है; न बीमारीका, न मारे जानेका और न चोर-डकैतोंका। आखिर मरना तो है ही, मेरी उम्र भी ज्यादा नही होगी, भय किसका करूँ?' एक अहिंसावादी वीर योद्धाकी भाँति वे इस क्षेत्रमे उतर पडे और उनके १५ वर्ष तक युद्ध करनेका जो परिणाम हुआ, उसे पाठक पढ ही चुके है।

अपनी अनुभूतियोंको कागावाने लिखना प्रारम्भ किया। क्षयरोगसे पीडित अवस्थामें उन्होंने जो उपन्यास लिखा था, उसे उन्होंने कैजो नामक मासिक पत्रके प्रकाशकको दिखलाया। प्रकाशक महोदयको उसमें प्रतिभाके

चीज दीख पड़े और उन्होंने उसे २५० पौण्डमे खरीद लिया। पहले तो वह मासिक रूपमे निकला और फिर पुस्तकाकार छपा। पुस्तककी लोकप्रियताका इसीसे अनुमान हो सकता है कि थोड़े समयमे ही उसकी ढाई लाख कापियाँ बिक गई।

कागावाने अपनी ४५वी वर्ष तक (यानी १९३२ तक) कितना साहित्यिक कार्य किया था, इसका अनुमान निम्न-लिखित अकोसे किया जा सकता है।

तबतक वे पचास ग्रन्थ लिख चुके थे और उनकी बारह लाख प्रतियाँ खप चुकी थी। तीस पुस्तिकाएँ उन्होंने लिखी थी और ३५ पर्चे, जिनमे पहलेकी तीन लाख और दूसरेकी ५० लाख प्रतियाँ निकल चुकी थी। दस किताबे उस समय उनके सामने थी, कोई आधी लिखी हुई, कोई तिहाई तो कोई चौथाई। इन पुस्तकोके विषय है—धर्म, दर्शनशास्त्र, कविता, अर्थशास्त्र, राजनीति, मजदूर-आन्दोलन, जीव-विज्ञान इत्यादि। उनके कई ग्रन्थोने तो खपतके क्षेत्रमें सबसे ऊँचा स्थान पाया है—

'Across the Death line' की ढाई लाख प्रतियाँ बिकी,
'The Shooter at the Sun' की एक लाख ग्यारह हजार,
'Passing from Star to Star' की एक लाख,
'A Grain of Wheat' की एक लाख।

कागावाकी सफलताका मुख्य कारण यह है कि वे जो-कुछ लिखते है, हृदयसे लिखते है, दिल खोलकर लिखते है और एक उच्च उद्देश्यको लेकर लिखते है। अपने भाषणोके सग्रहकी भूमिकामे उन्होने लिखा था—

"मेरी पुस्तकोके पढनेवाले बहुतेरे है, पर ग्रन्थ-रचना ही मेरे जीवन का उद्देश्य नही। मै तो एक सिपाही आदमी हूँ और सर्वसाधारणके अन्त करणको जाग्रत करनेके लिए आन्दोलन करना ही मेरा काम है। मेरे ग्रन्थोमे मेरी अन्तरात्मा रोती है और उसके रोनेको जो कोई सुनता है, वही मेरा सच्चा मित्र है।

"जापानके साढे पाँच सौ वेश्यालयोको दफन करना है, १५ करोड पौण्डकी शराबकी धाराको रोकना है, ९४ लाख मजदूरोका उद्धार करना है और २ करोड किसानोको स्वाधीन बनाना है। यही मेरे जीवनकी आशा है और इसी आशामे मै अपनी पुस्तक सर्वसाधारणकी सेवामे अर्पित कर रहा हूँ।

"मनुष्यकी आत्मा ही राजनीति है, अर्थशास्त्र है, शिक्षा है और विज्ञान है, इसलिए अन्तरात्माको सुसस्कृत बनाना ही सबसे अधिक आवश्यक है। यदि हम अन्तरात्माको सुसस्कृत बना ले तो राजनीति, अर्थशास्त्र, शिक्षा और विज्ञानके प्रश्न स्वय ही हल हो जायेंगे। मेरे ये भाषण अन्तरात्माकी पुकार है।"

यद्यपि कागावाको अबतक तीन लाख रुपयेसे अधिक अपनी पुस्तकोसे रायल्टीके रूपमें मिल चुका है, पर उन्होने उसका पैसा अपनी तीन सस्थाओपर ही व्यय किया है। अपना खर्च उन्होने नही बढाया। इस वक्त वे सौ रुपये महीनेमे अपनी स्त्री तथा तीन बच्चोका पालन-पोषण करते है। यह कहनेकी आवश्यकता नही कि इसमें सिर्फ कुटुम्बकी गुजर ही हो पाती है। टोक्यो महानगरीके एक बाहरी स्थानपर उन्होने अपने हाथसे काठका एक मकान बना लिया है। जब जापानमें महान भूकम्प आया था, उस समय निराश्रित लोगोके लिए जो कामचलाऊ मकान बने थे, उन्हीके बचे-खुचे काठ-कबाडको खरीदकर ढाई सौ रुपयेमे उन्होने अपने हाथसे अपना मकान तैयार कर लिया है। टोक्योका ही नही, जापानका सर्वश्रेष्ठ नागरिक सस्ते-से-सस्ते काठके मकानमें रहता है। यद्यपि कागावाको अपने ग्रन्थोसे कभी-कभी ३० हजार रुपये सालकी आमदनी हो जाती है, पर वे अपने ऊपर उसे खर्च नही करते। जीवन-निर्वाहके विषयमे उनके विचार सुन लीजिए—

"जीवन-निर्वाहका सर्वोत्तम तरीका यह है कि आदमी इतनी सादगीके साथ रहे कि उसे किसी दूसरेकी सेवा न लेनी पडे, अपनी सेवा वह

कर सके। यदि कोई आदमी अपने हाथसे बनाई हुई झोंपड़ीमे रहे, स्वय ही उसमे अपना रसोईघर बनावे, अपने हाथसे उगाई हुई तरकारियाँ खावे, अपने करघेपर बुना हुआ कपडा पहने और सादगीके साथ अपने घरका प्रबन्ध खुद ही करे, तो उसे कितनी स्वाधीनता मिल सकती है! इस प्रकारके जीवनमे मनुष्य न तो किसीको अपना गुलाम बनाता है और न किसीको अपना शासक। वह खुद ही अपना शासक, रसोइया, कलाकार और मजदूर बन जाता है। इस प्रकारके जीवनसे दुनियाके उलझे हुए प्रश्न सुलझ सकते है। यदि कोई मनुष्य किसी तालाबके किनारे मित्रतायुक्त वृक्षोकी सघन छायामें अपनी झोपडी बनावे और पशु-पक्षी और वृक्ष-जगतसे अपना नित्यप्रतिका सम्बन्ध रखे, तो उसके लिए असह्य शोरगुलवाले नगरोके जीवनका क्या आकर्षण रह सकता है?"

गन्दी वस्तियोमे काम करते-करते कागावाके मनमे यह खयाल आया कि समाज-सेवाके कार्यमे अन्य लोगोने जो-जो प्रयोग किये है, उनका अध्ययन करनेकी ज़रूरत है। इसी विचारसे सन् १९१४में वे अमेरिकाके लिए रवाना हुए और दो वर्ष तक प्रिंसटन-विश्वविद्यालयमे अमेरिकाकी सामाजिक सेवा करनेवाली सस्थाओका अध्ययन करते रहे। इन दो वर्षोमे उनके जापानके स्कूलकी तीन लड़कियाँ फुसलाकर वेश्याएँ बनादी गईं और तीस लडके गठकटे बन गये, जिसके कारण उन्हे जेलकी हवा खानी पडी। गम्भीर विचार करनेके बाद कागावा इस परिणामपर पहुँचे कि जबतक मज़दूरोको स्वाधीनता नही मिलती तबतक गन्दी वस्तियोका प्रश्न हल हो ही नही सकता।

जापानमे मज़दूरोके लिए एक सस्था कायम हो चुकी थी, जिसका नाम था 'मजदूर-हितकारिणी सभा'। कागावाने पहले इस सस्थाको विकसित कराके 'जापान-मज़दूर-सघ'की स्थापना कराई और तब अपने स्थानके मज़दूरोकी समितिको उसकी शाखा बना दिया। सन् १९२१मे कोबेके ३० हजार जहाजी मजदूरोने हडताल कर दी। कागावाने

उनका नेतृत्व ग्रहण किया। पुलिसने यह हुक्म जारी कर दिया था कि मजदूर लोग सभा न करे। कागावाने पुलिसकी आज्ञाका उल्लघन करके मजदूर-यूनियनकी स्थापना की। जापानकी यह पहली ही मजदूर-यूनियन थी। कागावाकी इस कारंवाहीसे पुलिसको वडा क्रोध आया और खुफिया-विभागके आदमी निरन्तर उनका पीछा करने लगे। वे पकडे गये। पुलिसके एक आदमीने उनका कपडा फाड डाला और उनके दो-चार डडे भी जमा दिये। उनको हथकडियाँ पहनाई गई और विना टोपीके नगे पाँव वे थानेपर ले जाये गए। जज साहव रहमदिल आदमी थे उन्होने कागावाको सिर्फ तेरह दिनकी सजा दी। इन तेरह दिनोमे उन्होने अपने एक नवीन उपन्यासका पूरा-पूरा प्लाट अपने मस्तिष्क-पटलपर लिख डाला।

तेरह दिन बाद जब कागावाका जेलसे छुटकारा हुआ तो उन्होने उसका उत्सव वडे विचित्र ढगसे मनाया। अपनी वस्तीके १०० गरीब बच्चोको वे समुद्र-तटपर दिन-भरके लिए हवा खिलाने ले गये। वहाँ वडी दिल्लगी रही। कुछको अपनी माँकी याद आई और रोने लगे। कितने ही कूदते-फाँदते फिरे और पेट भरके खाना तो सभीने खाया।

गन्दी वस्तियोके प्रश्नोको हल करते समय कागावाका ध्यान किसानोके सवालोकी ओर गया। कागावाका मस्तिष्क वैज्ञानिक ढगपर काम करता रहा है और वे उन वस्तियोको अपनी प्रयोगशाला समझते रहे है। कागावा-को तुरन्त ही पता लग गया कि गन्दी बस्तियोके अधिकाश निवासी ग्रामोसे आते है। खेतीसे गुजर न होनेके कारण बेचारे वडे-वडे शहरोमे आते है और यहाँ धक्के खा-खाकर आखिर उन वस्तियोमे जा पडते है। कागावा-को वेश्यागमनका स्रोत भी ग्रामोमे ही मिला। वेश्यालयोके लिए मालिक खास तौरसे किसान लडकियोको ही बहका-बहकाकर शहरोमे लाते है, और फैक्टरियोके मालिक भी इन्हीको अपना शिकार बनाते है। जापानमे

जो ८ लाख ५० हजार क्षयके रोगी है, उनमेंसे अधिकांश ग्रामोके ही निवासी है। सन् १९२१में कागावाके घरपर किसान-सभाकी स्थापना हुई और उसकी शाखाएँ जापानके भिन्न-भिन्न स्थानोमें खोली गई। जमीदारोके साथ किसानोके जो झगडे होते थे, उनमे इस सभाके द्वारा किसानोकी सहायता की जाती थी। उन्ही दिनो 'भूमि और स्वाधीनता' नामक एक मासिकपत्र भी निकाला गया। सन् १९२१के अन्तमे 'अखिल जापानी किसान-सघ'का अधिवेशन हुआ। इससे जापान-सरकार तथा जमीदारोके कान खडे हो गये। कागावाने किसानोके हितके लिए देश-भरमें घूमना शुरू किया। कही-कही तो उन्हें बोलने ही नही दिया गया और अनेक स्थलोपर उनके भाषणोकी रिपोर्टपर पुलिसने अपनी कैंची चलाई। एक जगहपर तो पुलिसने उन्हे पकडकर हिरासतमे रख दिया। कागावाने किसानोकी जो महत्त्वपूर्ण सेवा की है, उसका विस्तृत वर्णन करनेके लिए यहाँ स्थान नही।

कागावाके मतानुसार बीसवी शताब्दीकी बीमारियाँ तीन है: (१) बडे-बडे नगरोमे बहुसख्यक आदमियोका जमघट। (२) मशीनोका बाहुल्य और मनुष्यपर मशीनोका प्रभुत्व। (३) पूँजीका थोडेसे आदमियोके हाथमें केन्द्रित रहना। कागावा लिखते है:

"पहली बीमारी—नगरोमें जनसख्याकी बढतीके साथ-ही-साथ मनुष्यके लिए शारीरिक, नैतिक और मनोवैज्ञानिक खतरे भी बढ जाते है। उन स्थानोमे दृढ व्यक्तित्व और बुलन्द आवाजवाले आदमी पैदा ही नही हो सकते, जहाँ मनुष्योको मित्रतायुक्त वृक्षोके ससर्गसे वचित रखा जाता है, जहाँ वे नई ताजी घासकी सुगन्धिसे अपने दिमागको तरोताजा नही कर पाते, जहाँ वे कीट-पतगोकी मधुर ध्वनिको सुन नही पाते और जहाँ शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन उन्हे अपना सगीत नही सुना सकती। जहाँ मनुष्य शान्तिपूर्ण जलाशयोके निकट रहकर एकान्तमे उनके स्वास्थ्यप्रद सम्पर्कमें नही आ सकता, जहाँ वह घाटियो, पहाडियो और पर्वततटीपर

फैलनेवाली धूपमे स्नान नही कर सकता और जहाँ वह प्रकृतिकी रहस्य-वादी छटाओके साथ हार्दिक सम्बन्ध स्थापित नही कर सकता, वहाँ दृढ व्यक्तित्वका विकसित होना सम्भव नही।

"नगरोकी आबादी अधिक-से-अधिक चालीस हजार होनी चाहिए और दो लाखसे ऊपरकी आबादीके नगर तो मानव-समाजके लिए अत्यन्त भयकर है।"

दूसरी बीमारी—मनुष्यपर मशीनोका प्रभुत्व है। इससे आदमीकी क्रियात्मक शक्ति नष्ट हो जाती है और वह खुद मशीन बन जाता है। इससे उसमें स्वय सोचकर किसी कार्यको प्रारम्भ करनेकी शक्ति नही रहती, एक-दूसरेसे आगे बढनेका उत्साह नष्ट हो जाता है, उन्नतिकी इच्छाका विनाश हो जाता है और अन्ततोगत्वा मशीन बनकर आदमी महकमा बेकारीमे जा पडता है।

तीसरी बीमारी है—थोडेसे आदमियोके हाथमे पूँजीका इकट्ठा होना। इससे धनका उपयुक्त विभाजन नही होता, गरीबो और निर्बलोका शोषण शुरू हो जाता है और निर्धनता बढ़ती जाती है।

सैकडो मीटिंगोमे कागावा इस बातको कह चुके है, "सबसे अधिक आवश्यक कार्य है किसानके जीवनका पुनर्निर्माण।"

कागावाका जीवन भारतीय युवकोके लिए आदर्श है। जिन लोगोको अपनी अस्वस्थतासे कुछ निराशा उत्पन्न होती हो, वे इस बातपर विचार कर सकते है कि कागावा आधे अन्धे है, उनको गुर्देकी बीमारी है, फेफडे उनके कमजोर है और दिल वक्त-बेवक्त फेल करनेकी धमकी दिया करता है। पर कागावा क्षत्रिय है। वे कहते है—"कई बार मै मरते-मरते बचा। अब जो जिन्दगी मुझे मिली है, वह तो मुनाफेमे है। खाटपर पडकर मै नही मरना चाहता। दौडके आखिरी मील तक मै चलता ही रहूँगा, बीचमें नही बैठनेका। रेलपर सफर करते हुए या समुद्र-यात्रामे

परलोकसे मुझे बुलावा आवेगा, यह मै नही जानता। मेरा काम निरन्तर चलना है। बाकी बात ईश्वरके हाथमे है।"

कागावासे बहुतसे लोगोने कहा कि वे मजदूर दलकी ओर से पार्लमिण्टकी मेम्बरीके लिए खडे हो जायँ, पर उन्होने इसे सदा अस्वीकार ही किया है। मजदूर दलकी एकताके लिए वे तन-मन-धनसे प्रयत्न करते है। जो कुछ पैसा उनके पास बचता है, वे उसे इस दलको दे देते है; लेकिन जब मेम्बरीके लिए कहा जाता है तो वे यही उत्तर देते है—"शक्तिशाली पुरुषोकी पंक्तिमे मै नही बैठना चाहता, क्योकि उससे मेरे और गरीब आदमियोके बीचमे, जिनकी मै सेवा करना चाहता हूँ, एक दीवार खडी हो जायगी।"

जब सन् १९३०-३१मे टोक्योके मेयरने उन्हे दो हजार रुपये मासिक वेतन (और मोटरकार अलग) पर समाज-सेवा करनेका अनुरोध किया तो उन्होने कहा, "मै बिना वेतनके ही काम करूँगा। नगर पर मै अपने वेतनका बोझ नही डालना चाहता।" और उन्होने अवैतनिक ही कार्य किया। उस समयकी उनकी बनाई हुई योजनाएँ देश-भरके लिए आदर्श सिद्ध हुई। कागावाके जीवनका सबसे आकर्षक गुण उनका भोलापन है। घरसे ओवरकोट पहने हुए निकले है, रास्तेमे कोई भिखारी मिल गया। उसने सर्दीसे बचनेके लिए कपडा माँगा, आपने ओवरकोट दे दिया! इस प्रकार न-जाने कितने ओवरकोट वे दान कर चुके है। वे कहते है—"छोटे-छोटे बच्चे नक्षत्रोसे बातचीत करते है, पुष्पोसे मित्रता करते है, तालाबोकी अन्तरात्मासे सम्भाषण करते है, वृक्षोको अपना दोस्त बनाते है और टिड्डियाँ तथा तितलियाँ उनपर खास तौर पर कृपाभाव रखती हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि मै एक बार फिर वैसा ही बालक बन जाऊँ!" और दरअसल कागावा अब भी बालक ही बने हुए हैं—४९ वर्षके बालक!

निस्सन्देह कागावा जापानकी ही नही, ससारकी एक विभूति है। अधिक क्या कहे—

विद्या-विलास-मनसो धृतशीलशिक्षा :
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः ।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिताः ये
धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः ॥

अगस्त १९३७]

: १३ :

सम्पादकाचार्य सी० पी० स्कॉट

पत्रकार-जगत्‌में मुख्यतया दो प्रकारके पत्रकार पाये जाते है. एक तो आदर्शवादी और दूसरे व्यापारिक मनोवृत्तिवाले। पहलेके लिए जहाँ जनताकी सेवा करना, भ्रमपूर्ण मार्गपर जानेसे उसे बचाना तथा उसे ठीक-ठीक मार्ग बतलाना मुख्य कर्तव्य है, वहाँ दूसरेका मुख्य लक्ष्य इस व्यापारमे आर्थिक सफलता प्राप्त करना ही है। जबकि पहला राजनैतिक अथवा सामाजिक तूफानोमें चट्टानोकी तरह स्थिर रहकर भूली-भटकी जनताके लिए प्रकाश-स्तम्भका काम देता है, वहाँ दूसरा 'जैसी बहै बयार पीठ तब तैसी दीजै'की नीतिका अनुसरण करता है। दुर्भाग्यसे ससारमें दूसरे प्रकारके पत्रकारोकी सख्या अधिक है और दिनो-दिन बढती ही जाती है। श्रद्धेय गणेशजीने 'पत्रकार-कला' नामक पुस्तक-की भूमिकामें लिखा था

"क्या यह ठीक होगा कि इस समय ससारके अन्य बडे देशोमें समाचारपत्रोके चलनेकी जो लकीर है उसका हम अनुकरण करे या यह कि हम अपने आदर्शके सम्बन्धमें अधिक सजगता और सतर्कतासे काम ले ? मै यह धृष्टता तो नही कर सकता कि यह कहूँ कि संसारके अन्य सब बडे पत्र गलत रास्तेपर जा रहे है और उनका अनुकरण नही होना चाहिए, किन्तु मेरी धारणा यह अवश्य है कि ससारके अधिकाश समाचारपत्र पैसे कमाने और झूठको सच और सचको झूठ सिद्ध करनेके काममें उतने ही लगे हुए है, जितने कि ससारके बहुतसे चरित्र-शून्य व्यक्ति। अधिकाश बडे समाचारपत्र धनी-मानी लोगो द्वारा

संचालित होते हैं। इसी प्रकारके संचालन या किसी दल-विशेषकी प्रेरणा ही से उनका निकलना सम्भव है। अपने संचालको या अपने दलके विरुद्ध सत्य बात कहना तो बहुत दूरकी वस्तु हैं, उनके पक्ष समर्थनके लिए वे हर तरहके हथकण्डोसे काम लेना अपना नित्यका आवश्यक काम समझते हैं। इस काममें तो वे इस बातका विचार रखना आवश्यक नही समझते कि सत्य क्या है। सत्य उनके लिए ग्रहण करनेकी वस्तु नहीं है, वे तो अपने मतलबकी बात चाहते हैं। संसार भरमें यही हो रहा है। इने-गिने पत्रोको छोडकर, सभी पत्र ऐसा कर रहे हैं। जिन लोगोने पत्रकार-कलाको अपना काम बना रखा है, उनमें बहुत कम ऐसे लोग हैं, जो अपने चित्तको इस बातपर विचार करनेका कष्ट उठानेका अवसर देते हो कि हमें सचाईकी भी लाज रखनी चाहिए केवल अपनी मक्खन-रोटीके लिए दिन-भरमें कई रंग बदलना ठीक नही है। इस देशमें भी दुर्भाग्यसे समाचारपत्रो और पत्रकारोके लिए यही मार्ग बनता जाता है। हिन्दी पत्रो और पत्रकारोके सामने भी यही लकीर खिचती जा रही है। यहाँ भी अब बहुतसे समाचारपत्र सर्वसाधारणके कल्याणके लिए नही रहे, सर्वसाधारण उनके प्रयोगकी वस्तु बनते जा रहे है।"

ऐसी परिस्थितिमे संसारके एक आदर्शवादी पत्रकार सम्पादकाचार्य सी० पी० स्काँटका जीवन-चरित हमारे लिए शिक्षाप्रद सिद्ध होगा।

सी० पी० स्काट (चार्ल्स प्रेस्टविच स्काट) का जन्म अक्टूबर सन १८४६ मे हुआ था। उनके पिताका नाम था रसेल स्काट और माताका इसाबेला। स्काट नौ भाई-बहन थे, जिनमें सात स्काटसे बडे थे और एक छोटा। इन भाई-बहनोके साथ स्काटकी बाल्यावस्था बडे आनन्दमे बीती। लडकपनमें स्काट काफी अभिमानी थे। उनसे जो बच्चा छोटा था, उसकी मृत्यु हो गई। इसलिए वे ही सबसे छोटे रह गये थे। शायद भाई-बहनो और माता-पिताके लाड-प्यारके कारण उनमे अभिमानकी

यह मात्रा आ गई थी। बड़े होनेपर स्कॉटने कहा था—"हाँ, लड़कपनमे मैं बड़ा सुन्दर छोटा बच्चा था। मै कहता फिरता था, 'देखो तो सभी प्यारे चार्लीको (मुझे) प्यार करते है', क्या ही घमडी बालक मैं रहा होऊँगा।"

बाल्यावस्थामें स्काटको फूलोसे बड़ा प्रेम था और उनका यह प्रेम जिन्दगी-भर कायम रहा। वृद्ध होनेपर वे कहा करते थे—"मेरे जीवनके सबसे अधिक सुखी वर्षोमे सन् १८५७ की गणना करता हूँ, जबकि मै ग्यारह वर्षका था। उस वर्ष मुझे अपने घरवालोके साथ एलजियर्स जाना पड़ा था। उस समय मैंने अपने भाई लारेन्सके साथ जगलोमे घूम-घूमकर दो हजार तरहके जगली फूल इकट्ठे किये थे। यह सग्रह अब भी मौजूद है।"

स्काटकी शिक्षाका प्रारम्भ ब्राइटनमें हुआ और उसके बाद वे क्लैफम ग्रामर स्कूल (Clapham Grammar School) और आइल ऑव वइट (Isle of Wight) मे पढनेके लिए भेजे गये। जब वे पिछले स्थानमे पढते थे, तभीमे वे अपने पिताजीके साथ सार्वजनिक प्रश्नोपर पत्र-व्यवहार किया करते थे। उनके पिताजीमें एक बडा गुण था, वह यह कि वे यह हर्गिज नही चाहते थे कि हमारा लडका किसीका अन्धानुकरण करे। विरोधी विचार रखनेवालोके लिए उनके हृदयमें काफी सहिष्णुता थी। स्कॉटके लिए उनका यही आदेश था—"सब प्रश्नोपर स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी बुद्धिसे विचार करो।"

स्कॉटकी सत्रहवी वर्षगाँठके अवसरपर उन्होंने एक चिट्ठी स्कॉटको भेजी थी, जिसका निम्न-लिखित अश काफी महत्त्वपूर्ण है.

"One thing more I will just say, for unfortunately time presses—that is, if in the formation of your opinions, you should be led to the adoption of views materially different from mine, it will be to me a matter of but

slight regret, provided only I can feel a perfect conviction that your views, whatever they may be, are fairly arrived at That no fear of the world's opinion, or even of the world's scorn, no deference to a majority, no shadow of influene from considerations of what may be most conducive to your own interest, your own advancement, or even to your own opportunities of being useful, has consciously or unconscioully, determined them."

अर्थात्—"हाँ, एक बात मुझे और कहनी है (दुर्भाग्यवश वक्तकी मुझे लगी है), वह यह कि यदि अपनी राय कायम करते समय तुम ऐसी सम्मति निर्धारण करो, जो मेरी सम्मतियोसे काफी भिन्न हो तो इससे मुझे बहुत कम रज होगा, बशर्ते कि मुझे इस बातका पूर्ण विश्वास हो जाय कि तुमने अपनी सम्मतियोके निर्माण करनेमे न्याय और ईमानदारीसे काम लिया है। मै इस बातकी दिलजमई चाहता हूँ कि ससारकी सम्मतिके डरसे अथवा लोकनिन्दाके भयसे या बहुमतके रौबमे आकर तुमने सम्मति नही बनाई। यही नही, बल्कि मै तो यह भी कहूँगा कि मै इस बातका विश्वास चाहता हूँ कि तुम स्वार्थकी प्रेरणासे, अथवा अपनी उन्नतिको ध्यानमे रखकर, या अपनेको उपयोगी बनानेके अवसरोकी प्राप्तिके खयालसे, जान-बूझकर अथवा बिना जाने, अपनी सम्मतियोका निर्माण न करोगे।"

इससे प्रकट होता है कि रसेल स्कॉट 'प्राप्तेषु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्' की नीतिका अनुसरण करनेवाले थे।

सन् १८६५ में स्कॉट आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटीमें पढनेके लिए गये। वहाँ वे एक वर्ष ही पढने पाये थे कि उनकी बुआके लडके मि० जॉन एडवर्ड टेलरने, जो 'मैनचेस्टर गार्जियन' के सचालक थे, उनसे अपने पत्रके सम्पादकीय विभागमे काम करनेके लिए पत्र-व्यवहार करना शुरू कर दिया।

टेलरने अपने ममेरे भाईके कुछ निबन्ध पढनेके लिए मँगाये, जो उन्हे खूब पसन्द आये और उन्होने स्कॉटको लिख भेजा कि तुम हमारे पत्रमे काम करनेके लिए चले जाओ। सन् १८७१ मे, जब वे २५ वर्षके ही थे, तब उन्होने 'मैनचेस्टर गार्जियन' मे काम करना शुरू किया था।

सबसे पहला काम जो मैनचेस्टरमें आनेपर उन्होने किया, वह था अपने लिए एक अच्छा मकान तलाश करना। चार पौण्ड प्रतिमास किराये-पर एक सुन्दर मकान मिल गया, जो आफिससे दो मीलके फासलेपर था। फिर उन्होंने इस बातका निश्चय किया कि मैनचेस्टरकी आब-हवा को अपने उपयुक्त बनाऊँगा। इसके लिए उन्होने अपना जीवन बिल्कुल नियमित कर लिया और नियमानुकूल व्यायाम करना भी शुरू कर दिया। टेनिस वे खूब खेला करते थे। आफिसको वे बराबर पैदल जाते थे और वहाँसे पैदल ही लौटते थे। उन दिनो उनका कार्यक्रम यह था.

७॥ बजे उठना, कलेवा करना और 'मैनचेस्टर गार्जियन' शुरूसे आखिरतक पढना, फिर पैदल चलकर दस बजे आफिस पहुँचना और आफिसमें दिन-भर काम करके ६ बजे टहलते हुए घर लौटना। उसी समय भोजन करना और तत्पश्चात् कुछ लिखना पढना और करीब दस बजे रातको सो जाना। इसके सिवाय सप्ताहमें दो-एक बार तीसरे पहर इधर-उधर टहलनेका प्रोग्राम भी उन्होंने रखा था।

उन दिनो मैनचेस्टरमे गरीबोके मकान बड़ी दुर्दशामे थे। स्कॉटका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। ३ दिसम्बर सन् १८७१ की चिट्ठीमें उन्होंने अपने पिताको लिखा था—"हम लोग गरीबोके मकानोके सुधारके लिए पहले आपसमे दस हजार पौड इकट्ठा कर लेना चाहते है, इसके बाद जनतासे अपील करेंगे। मेरी अपनी इच्छा है कि इस आन्दोलनमे यथाशक्ति अधिक-से-अधिक चन्दा दूं। मै चाहता तो यह हूँ कि अपनी पैतृक सम्पत्तिमें से ५०० पौण्ड इस कार्यके लिए दे दूँ, पर शायद यह रकम आपको ज्यादा प्रतीत होगी। मै इस काममे दिलोजानसे लग जाना चाहता

हूँ, और मुझे उम्मीद है कि इस तरहसे मैं जनताका अधिक-से-अधिक शारीरिक तथा नैतिक हित कर सकूंगा।"

जनवरी सन् १८७२ में स्कॉट 'मैनचेस्टर गार्जियन'के प्रधान सम्पादक नियुक्त हो गये। उस समय उनकी उम्र लगभग २६ वर्ष की थी। उस समय जो लोग उनके अधीन काम करते थे, वे उनसे उम्रमें काफी बड़े थे। कोई-कोई तो स्कॉटके जन्मके पहलेसे भी इस पत्रमें काम कर रहे थे और ऐसे लोगोको काम करनेका आदेश देना सरल कार्य नही था; पर एक तो स्कॉटका चेहरा बड़ा गम्भीर था, दूसरे उन्होंने दाढी रख ली थी और इन दोनोकी सहायतासे वे अपने साथियोपर यथोचित शासन कर सकते थे। अपने आफिसमें वे कठोर शासक समझे जाते थे, पर बाहरवालोकी समझमे यह बात मुश्किलसे आ सकती थी कि दर-असल स्कॉट कठोर शासक है।* पर इसके साथ स्कॉटमें यह दुर्लभ गुण भी था कि वे स्वय भी अथक परिश्रम करनेवाले थे। 'मैनचेस्टर गार्जियन' का हित ही उनके हृदयमे सर्वोच्च स्थान रखता था और इसी बातकी आशा वे अपने सहयोगियोसे भी करते थे। निरन्तर ५८ वर्ष तक वे अपने पत्रके लिए घोर परिश्रम करते रहे। ८० वर्षकी उम्रमें स्कॉट कितना परिश्रम करते थे, इसका वृत्तान्त सुन लीजिए। शामके समय आकर दैनिकके लिए अग्रलेख लिखा। रातकी गाडीसे मैनचेस्टरसे लन्दनके लिए रवाना हुए। प्रातःकाल प्रधान-मन्त्री लायड जार्जके साथ कलेवा किया। फिर कई घंटे मिस्टर वेनीज़ेलसके साथ बालकनके प्रश्नोपर बातचीत की। तत्पश्चात् लार्ड सेसिलके साथ भोजन किया। तीसरे पहरकी गाड़ीसे मैनचेस्टरको वापस आये और फिर आकर अपने पत्रके लिए अग्रलेख लिखा!

---

*स्वर्गीय श्रद्धेय गणेशजीके विषयमें भी उनके सहयोगी यही बात कहते है। स्वय गणेशजी घोर परिश्रमी थे।—लेखक

स्कॉटको विलायतके प्रधान कार्यकर्ताओसे निरन्तर मिलना पडता था और बीसियो आदमियोसे, जिनकी अधिकारपूर्ण सम्मतियोका महत्व हो सकता था, पत्र-व्यवहार भी करना पडता था, क्योकि विना ऐसा किये न तो वे स्वय समयकी गतिके साथ चल सकते थे और न उनका दैनिक पत्र ही अप-टू-डेट रह सकता था। इसके सिवा अपने सहकारी सम्पादकोको सैकडो ही विषयोपर उन्हे आदेश या परामर्श देना पडता था। कभी बाइसिकलोके विषयमे नोट लिखनेका आदेश दे रहे है तो कभी घरपर डबल रोटी बनानेके विषयमे, कभी यूगोस्लेविकाके मामलेपर तो कभी स्त्रियो के वेतनपर ! और इन सब विषयोके लाखो ही नोट उन्हे अपने जीवनमे लिखने पडे होगे। जो आदमी स्वय कठिन-से-कठिन परिश्रम नही कर सकता, वह न तो ठीक ढगसे दूसरोसे काम ले सकता है और न उनपर शासन ही कर सकता है।

सन् १८७४ मे स्कॉटने अध्यापक जॉन कुककी सबसे छोटी लडकी मिस रचेल कुकके साथ विवाह कर लिया। मिस कुक बडी सुन्दरी थी और बडी योग्य भी। केम्ब्रिज यूनिवर्सिटीसे उन्होने एम० ए० की परीक्षा पास की थी और अरस्तूके विषयमे उन्होने जो निबन्ध लिखा था, उसकी उनके परीक्षकोने बडी प्रशसा की थी और उसे सर्वोत्तम बतलाया था।

स्कॉट भी मिस रिचेलकी योग्यतासे बडे प्रभावित हुए और उनसे-मिलनेके थोडे दिन बाद ही मिस रचेल 'मैनचेस्टर गार्जियन' के लिए पुस्तको की आलोचना लिखने लगी। दोनोकी मित्रता प्रेमके रूपमे परिवर्तित हो गई और २० मई, १८७४ को लन्दनमे उनका विवाह हो गया। मिसेज स्कॉट अपने पतिके सम्पादन-कार्यमे बहुत सहायक सिद्ध हुई। कभी-कभी तो यह होता था कि शामके ६ बजे दोनो व्यक्ति अडे, दूध, रोटी और मक्खन लेकर आफिसको साथ ही जाते और वहाँसे रातके दो बजे लौटते थे। रेलकी लम्बी यात्राओमे मिस्टर और मिसेज स्कॉट दोनो ही लेख लिखते थे और पासके तारघरसे वे लेख तार द्वारा 'मैनचेस्टर

गार्जियन' को भेजे जाते थे। सन् १८७४ से १९०५ तक मिसेज स्कॉट अपने पतिको पत्र-सम्पादन-कार्यमे सहायता देती रही। नवम्बर सन् १९०५ में जब उनका स्वर्गवास हुआ तो मि० स्कॉटके हृदयको बडा आघात पहुँचा, पर बडे धैर्यपूर्वक उसे उन्होने सहा।

अपने नगरके प्रति उनका जो कर्तव्य था, स्कॉट उसे नही भूले। मैनचेस्टरमें वे साठ वर्ष रहे और इन साठ वर्षोमें उन्होने अपने नगरके लिए महान् कार्य किया। गरीबोके घरोके सुधारनेके कार्यमे उन्होने जो भाग लिया था, उसका जिक्र हम पहले कर चुके हैं। स्त्रियोकी उच्च शिक्षाके आन्दोलनमे स्कॉटने काफी सहयोग दिया। सन् १८९० मे विथिगटन गर्ल्स स्कूलकी स्थापना हुई और वे उसके सस्थापकोमें अग्रगण्य थे। चालीस वर्ष तक वे उसकी कौंसिलके चेयरमेन रहे। जब वे अन्य सब कार्योसे त्यागपत्र दे चुके थे, उस समय भी उन्होंने उस सस्थाकी देखरेख नही छोडी। स्त्रियोकी उच्च शिक्षाका यह प्रश्न उनके जीवनका एक मुख्य प्रश्न ही बन गया था और उनका अन्तिम मुख्य लेख (जो १ नवम्बर सन् १९३० के 'मैनचेस्टर गार्जियन' मे छपा था) गर्टनके महिला विद्यालयके लिए आर्थिक सहायताके विषयमें था।

मैनचेस्टर-विश्वविद्यालयके अनेक अध्यापकोमे स्कॉटने मित्रता करली थी और यह मित्रता उनके लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुई। पहले तो मैनचेस्टर-विश्वविद्यालय विशेष प्रख्यात नही था, पर पीछे वह आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज तथा लन्दन विश्व-विद्यालयोका मुकाबला करने लगा था। सम्पादकोके लिए और खासतौरसे दैनिक पत्रोके सम्पादकोके लिए, जिन्हे दिन-रात परिश्रम करना पडता हैं, सजीव विद्वानोका सत्सग कितना आवश्यक है, यह बतलानेकी आवश्यकता नही।

मैनचेस्टरमे जब टाउन हॉल बना, तो उस समय उसके लिए आर्ट-

गैलरी तैयार करानेमे मि० स्कॉटका बडा हाथ था। ब्लेकके चित्रो तथा कलाकार ब्राउनके सग्रहको प्राप्त करनेका श्रेय भी मुख्यतया उन्हीको था। वे ४३ वर्ष तक ओवन्स कालेज तथा यूनिवर्सिटी कोर्टके सदस्य रहे। सन् १९२१ मे मैनचेस्टर यूनिवर्सिटीने उन्हे एल-एल० डी० की उपाधि दी। स्कॉट उपाधियाँ पसन्द नही करते थे और इन व्याधियोसे बचनेका ही प्रयत्न करते थे। सुप्रसिद्ध शिक्षा-विशेषज्ञ सर माइकेल सैडलरने अपने एक पत्रमे उन्हे लिखा था—"I suppose no living man has refused more honours and titles than you have"

अर्थात्—"जितनी उपाधियाँ और सम्मानसूचक पद आपने अस्वीकृत किये है, उतने शायद ही किसी अन्य व्यक्तिने किए होगे।"

इन्ही सैडलर साहबने स्टॉकको लिखा था—"You have made the 'Manchester Guardian' a university."—"आपने अपने पत्र 'मैनचेस्टर गार्जियन' को एक विश्वविद्यालय-सा बना दिया है।" भला जिसका पत्र ही विश्वविद्यालयका काम कर रहा हो उसके लिए किसी विश्वविद्यालयकी डिग्रीका क्या महत्त्व हो सकता है? दर असल मैनचेस्टर-यूनिवर्सिटीने स्कॉटको एल-एल० डी० की उपाधि देकर स्वय अपनेको गौरवान्वित किया था।*

स्कॉट सहकारी सम्पादकोके चुनावमे बडी सावधानीसे काम लेते थे। आक्सफोर्ड-यूनिवर्सिटीके सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थियोको, जिनमे लिखनेकी प्रतिभा होती थी, वे अपने यहाँ स्टाफमे रखते थे। स्कॉट कहा करते थे—"मेरे लिए समाचारपत्र जनताको केवल क्षणिक खबरे पहुँचाने अथवा

---

*इस सिलसिलेमें हमें यह बात दु:खके साथ लिखनी पडती है कि अपनेको गौरवान्वित करनेका एक उत्कृष्ट अवसर हिन्दू-विश्वविद्यालयने खो दिया। पूज्य द्विवेदीजीको डी० लिट्०की उपाधि देकर यूनिवर्सिटी अपना सम्मान ही करती।—लेखक

राजनैतिक विषयोपर भली-बुरी टिप्पणियाँ लिखनेका साधनमात्र नही है। यदि ऐसा होता तो पत्रकारकला मेरे लिए कोई रुचिकर चीज न रहती और मैं उसे कभीका छोड़ बैठता।"

स्कॉटकी आकाक्षा थी कि उनके पत्रके पाठकोको देशके योग्य-से-योग्य लेखको और विचारकोके विचार पढनेको मिलें और इसीके लिए वे निरन्तर प्रयत्न किया करते थे। विलायतमे शायद ही कोई ऐसा सुप्रसिद्ध लेखक रहा हो, जिससे स्कॉटने अपने पत्रके लिए लेख न लिखाए हो। और कितने ही तो ऐसे थे, जो खास तौरसे 'मैनचेस्टर गार्जियन' के लिए ही लिखते थे। स्वाधीनचेता लेखकोके लिए 'मैनचेस्टर गार्जियन' मे लिखना स्वाभाविक और आसान भी था क्योकि स्कॉट स्वतन्त्रताके प्रेमी थे और अपने लेखकोको विचारोकी पूर्ण स्वतन्त्रता देते थे। 'मैनचेस्टर गार्जियन' की इतनी शान और धाक थी कि उसमे अपना नाम छपा हुआ देखकर लेखकोको एक प्रकारका गौरव प्रतीत होता था। एक सुप्रसिद्ध लेखक जब आयरलैण्डके कुछ ज़िलोकी यात्रापर जा रहे थे, उस समय उन्हे अपना विशेष सवाददाता बनाते हुए स्कॉटने लिखा था—"कृपया इस कार्यको आरामके साथ और खूब अच्छे ढगपर कीजिए। कोई मुज़ायका नही, अगर इस काममे तीन-चार हफ्ते खर्च हो जायँ। आयरलैण्ड-के निवासियोको, सहानुभूतिपूर्वक और उनके हृदयतक पहुँचकर समझने-की कोशिश कीजिए। उनके जीवनका अध्ययन करके लिखिये और इस खूबीसे लिखिये कि आयरलैण्ड-निवासियोके जीवन-क्रम सम्बन्धी लेखोसे राजनैतिक शिक्षा खुद-बखुद ही निकले। हाँ, एक बात निश्चित है, वह यह कि आप जो कुछ भी लिखें, पूर्ण स्वाधीनतापूर्वक और अपने ढग पर।"

यही कारण था कि 'रिव्यू आव रिव्यूज' के सम्पादक मि० डब्ल्यू० टी० स्टेड तथा मि० ब्रेल्सफोर्ड जैसे स्वाधीन प्रकृतिके आदमी 'मैनचेस्टर गार्जियन' के लिए लिखते थे। स्टेड साहब तो इस पत्रके मुख्य सवाददाता बनकर हेग-कान्फरेन्समे गये थे।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, अपने सहकारियोके चुनावमे स्कॉट वडी सावधानीसे काम लेते थे। चाहे कोई खाली जगह महीनो तक न भरे, चाहे शेष आदमी काम करते-करते पिसे; पर जबतक योग्य आदमी न मिलता, वे स्थान खाली पडा रहने देते थे। वे कहते—"नियुक्ति करते समय हमे होशियारीसे काम लेना चाहिए। नियुक्त होनेपर किसी आदमी को निकालना मुश्किल हो जाता है।"

गार्जियनमे सहकारी सम्पादकका एक स्थान खाली हुआ। अर्जियाँ मँगाई गईं। स्कॉट उन्हे पढनेके लिए बैठे। एक सिफारिशी चिट्ठी पढ रहे थे, प्रत्येक वाक्यको गम्भीरतापूर्वक पढते जाते थे और कभी-कभी उसपर टिप्पणी भी करते जाते थे। अन्तमे एक वाक्य आया—"And he is a brilliant conversationalist." अर्थात्—"और ये सज्जन वातचीत करनेमे भी वडे निपुण है।" स्कॉटने कहा—"I think we have enough of them already." अर्थात्—"वातचीत करनेवाले तो हमारे कार्यालयमे पहलेसे ही वहुत काफी मौजूद है।"

स्कॉट इस वातको अच्छी तरह जानते थे कि दुनियामे कोई आदमी पूर्ण या सर्वज्ञ नही है और न हो ही सकता है। हम यदि एक चीजमें कमजोर है तो दूसरा उसीमें मजवूत है। सस्थाओकी सफलताका रहस्य इस सिद्धान्तमे है कि सस्थापक ऐसे व्यक्तियोका सग्रह करे, जो एक-दूसरेकी त्रुटियोके पूरक हो। स्कॉट इस रहस्यको भलीभाँति समझते थे, इसलिए उन्होने अपने सम्पादकीय स्टॉफमे ऐसे सुयोग्य व्यक्तियोका सग्रह किया था, जो किसी-किसी वातमे स्वय स्कॉटसे कही अधिक योग्य थे। एक सहकारीमे उनसे कही अधिक मौलिकता थी, दूसरा वुद्धिमे उनसे तीक्ष्ण था और तीसरेमे प्रवन्धशक्ति और उद्योगका माद्दा अधिक था। स्कॉटने अपनी सव आकाक्षाओको, अपने सब अभिमान तथा गौरवको, 'मैनचेस्टर गार्जियन' के निर्माणमे खपा दिया था; पर उन्होने यह कभी खयाल न

किया कि मैं ही अकेला 'मैनचेस्टर गार्जियन' का निर्माता हूँ। वे इस बातको खूब जानते थे कि उसके निर्माणमें सहयोगियोके मस्तिष्क तथा परिश्रमका काफी हिस्सा है। समाचार-पत्रोको उन्होंने रुपये कमानेकी मशीन या व्यापार कभी नही समझा। वे समाचार-पत्रोको सार्वजनिक सस्था मानते थे।

स्कॉटने समाचार-पत्रोके लिए जो उच्च आदर्श रखा था, वह उनके निम्न-लिखित शब्दोसे, जो उन्होंने अपने एक भाषणमें कहे थे, प्रकट होता है

"Fundamentally it (journalism) implies honesty, cleanness, courage, fairness, a sense of duty to the reader and the community. The newspaper is of necessity something of a monopoly, and its first duty is to shun the temptations of a monopoly. Its primary office is the gathering of news At the peril of its soul it must see that the supply is not tainted. Neither in what it gives, nor in what it does not give, nor in the mode of presentation, must the unclouded face of truth suffer wrong. Comment is free, but facts are sacred. Propaganda, so called, by this means is hateful. The voice of opponents, not less than that of friends, has a right to be heard Comment is also justly subject to a self-imposed restraint. It is well to be frank. it is even better to be fair."

अर्थात्—"जर्नलिज्म (अखबारनवीसी) के मूल सिद्धात ये हैं—ईमानदारी, सफाई, साहस, न्यायप्रियता और पाठक तथा समाजके प्रति अपना जो कर्तव्य है, उसे समझना। समाचारपत्र प्राय. एक आदमी या एक संस्थाकी

सम्पत्ति होते है, उनपर किसी-न-किसीका एकाधिकार होता है और एकाधिकारवालोके मार्गमें कितने ही प्रलोभन होते है। एकाधिकारके इन प्रलोभनोको घृणाकी दृष्टिसे देखना, उनसे दूर रहना, समाचारपत्रका मुख्य कर्तव्य है। अखबारोका खास काम खबरोका इकट्ठा करना है। पत्रकारका कर्तव्य है कि वह अपने जीवनको खतरेमे डालकर भी इस बातका खयाल रखे कि कही खबरें इकट्ठा करनेमें असत्यताकी मिलावट तो नही की जा रही। जो चीजे छपती है, उनमे, अथवा जो रोकी जाती है, उनमें—समाचारोके छापने या न छापनेमे—कही सत्यपर परदा तो नही डाला जा रहा। घटनाओकी रिपोर्ट ज्यो-की-त्यो होनी चाहिए, उनमे मिलावट करनेका अधिकार किसीको नही। हाँ, टीका-टिप्पणीकी स्वतन्त्रता सबको है। अपने पक्षकी खबरोको छपाकर, विपक्षकी दबाकर, अथवा नोन-मिर्च मिलाकर समाचारोको प्रकाशित करना अनुचित है—प्रचारका यह ढग घृणापूर्ण है। अपने मित्रोकी ही नही, अपने विपक्षियोकी भी आवाजको यह अधिकार मिलना चाहिए कि वह जनता तक पहुँचे। और न्यायका यह तकाजा है कि टीका-टिप्पणी करनेमे पत्रकार अपने ऊपर सयम रखे। स्पष्टवादिता बहुत अच्छी चीज है; पर न्यायप्रियता उससे भी बढकर है।"

सन् १९२६ मे आक्सफोर्ड-यूनिवर्सिटीके एक अधिकारीको, जो अध्यापन-कार्य छोडकर उनके पत्रमे काम करना चाहते थे, मि० स्कॉटने लिखा था—"मि० वेल्डविनने मेरे उन शब्दोको, जो मैने पत्रकारके कर्तव्योके विषयमे लिखे थे, एक भाषणमे उद्धृत किया था।* अगर वे मेरे हाथ लग गये तो मै तुम्हे भेज दूँगा। दरअसल बात यह है कि 'मैनचेस्टर गार्जियन' मुनाफेके खयालसे नही, बल्कि समाज-सेवाके भावसे चलाया जा रहा है। मैने शायद आपसे कहा था कि जबसे पत्र हमारे

---

* मि० स्काटके ये शब्द हमने ऊपर दे दिये है।—लेखक

अधिकारमें आया है—यानी २० वर्षसे—हमने एक पैसा भी मुनाफेका नही लिया और यद्यपि आजकल हमारे पत्रमे काफी लाभ हो रहा है, मुनाफे-की यह तमाम रकम या तो पत्रको अधिक उन्नत बनानेमे लगा दी जाती है, अथवा रिज़र्व फण्डमें जमा कर दी जाती है, जिससे भविष्यमें पत्रको किसीका पराधीन न बनना पडे। मै अपने इस कार्यके लिए कोई विशेष श्रेय नही चाहता। मैने ये बाते आपको इसलिए लिख दी हैं कि यदि आप अपना शिक्षा-सम्बन्धी काम छोडकर, जो आपको भविष्यके लिए काफी वैभवपूर्ण तथा तेजस्वितायुक्त होगा, पत्र-सम्पादनकी लाइनमे आना ही चाहे तो आपको इस बातका ज्ञान चाहिए कि आप जिस पत्रमे आना चाहते है, उसका ध्येय क्या है और किन आदर्शोंकी पूर्तिके लिए आपको काम करना होगा।"

स्कॉटने अपने ५८ वर्षीय सम्पादकीय जीवनमे (सन् १८७१ से १९२९ तक) इन आदर्शोंके साथ कितना महान् कार्य किया, दुनिया इसकी साक्षी है। एक ऐसे पत्रको, जिसका प्रभाव केवल एक नगर-भर (मैनचेस्टर) में था, उन्होने ससारके समाचारपत्रोमें एक खास शक्ति बना दिया।

स्कॉटने स्त्रियोके मताधिकारके आन्दोलनमे, राजनीतिमे लिबरल सिद्धान्तोके प्रचारके लिए, ब्रिटेनकी वैदेशिक नीतिके निर्धारणमें और आयरलैण्डके मसलेको हल करनेमे जो कार्य किया, उसका वर्णन करनेके लिए एक अलग ही लेख लिखना होगा। दक्षिण अफ्रिकाके बोअर-युद्धके दिनोमे 'मैनचेस्टर गार्जियन' ने जिस निर्भीकताके साथ न्यायका पक्ष लिया, उसकी जितनी प्रशसा की जाय थोडी होगी। उस समय बोअरोके पक्षमे कुछ भी कहना खतरेसे खाली न था। स्कॉटकी इस निष्पक्षताके कारण उनके पत्रकी लोकप्रियताको भी ज़बरदस्त धक्का लगा था, पर इसका उन्होने कुछ भी खयाल नही किया। जनता उनसे तथा उनके पत्रसे इतनी अधिक नाराज़ हो गई थी कि पुलिसको उनके घर तथा आफिसकी खास

तौरसे रक्षा करनी पडती थी। एक कारटून किसीने छपाया था, जिसमें बोअर प्रेसिडेन्ट क्रूगरको स्कॉटको रिश्वत देते हुए दिखलाया गया था ! यही नही, स्कॉटके अनेक मित्र भी उनसे अत्यन्त रुष्ट हो गये थे। एक महाशयने तो इसी कारण उनसे तथा 'मैनचेस्टर गार्जियन'से बिलकुल सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। बोअर-युद्धके दिनोमे स्कॉटने जिस निष्पक्ष दृढतासे काम लिया, उसके लिए वे चिरस्मरणीय रहेगे।

महात्माजी भी स्कॉटकी न्यायप्रियताके प्रशसक रहे है। पिछली बार जब महात्माजी गोलमेज परिषद्में गये, उस समय वे स्कॉटसे मिलनेके लिए भी गये थे। उस भेटका जिक्र करते हुए श्री महादेव देसाईने 'इग्लैण्डमे महात्माजी' नामक पुस्तकमें लिखा था—"पत्रकारोके महारथी मि० स्कॉटकी मुलाकात तो स्वय गान्धीजीके शब्दोमे एक तीर्थ-यात्राकी तरह थी।..इस समय उनकी अवस्था ८५ वर्षकी है, किन्तु हमने उन्हे ओवरकोट लेनेके लिए नसेनीपरसे जिस दृढता और स्थिरताके साथ चढते-उतरते देखा, उससे ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनमें अब भी उत्साह बीस वर्षके नवयुवक-जैसा है..ज्योही वृद्ध स्कॉट उनका स्वागत करनेके लिए आगे बढे, गान्धीजीने उनसे कहा—'यह तो केवल तीर्थ-यात्रा है। गलत-फहमी और विपरीत प्रचारके विरुद्ध आपके पत्रने अपूर्व काम किया है और मैंने सोचा कि और कुछ नही तो केवल कृतज्ञता-प्रदर्शनके लिए ही मुझे आपसे मिलना चाहिए।"

स्कॉट आफिसमें शामके ६ बजे पहुँचा करते थे। बड़ी दृढता-पूर्वक अपने कमरेकी सीढियाँ चढते हुए जब वे बाएँ हाथ से दरवाज़ेके किवाडपर ज़ोरके साथ धक्का देकर उसे हटाते तो आफिसके कार्यकर्ताओको पता लग जाता कि प्रधान-सम्पादक महोदय आ गये है ! पहले अपने पाससे निकालकर वे नौकरको खानेका थोड़ा-सा सामान देते, जो वे घरसे लाते थे और फिर शामको निकलनेवाले अखबारोको पढते। सबसे महत्व-

पूर्ण कार्य था उनके लिए अग्रलेख लिखना। वे कहा करते थे कि पत्रका मुख्य उद्देश्य यही चीज है। अपने सहकारियोसे बातचीत करके वे यह आदेश देते थे कि मुख्य लेख किस विषयपर लिखा जायगा और जिन लेखक महोदयको यह लेख लिखना होता था, उनके लिए बिलकुल निश्चिन्ततासे एकान्तमे बैठनेका प्रबन्ध कर दिया जाता था, जिससे कोई उनके कार्यमे बाधा न डाल सके। जब स्कॉट स्वय अग्रलेख लिखते थे तो उस समय चाहे कोई भी आवे, उनसे मिलने नही पाता था। कभी कटिगकी जिल्द मँगाते तो कभी इस कमरेसे उस कमरेमे अपने किसी सहयोगीसे परामर्श लेने जाते, फिर नोट लिखकर अग्रलेख लिखने बैठ जाते। लिखते तो वे स्याहीसे थे; पर सशोधन पेंसिलसे करते थे। कोई गलत चीज लिख गई, झट मेजके खानेमें से रबर निकाली, उसे मिटाया और पेंसिलसे सशोधित शब्द या वाक्य लिखा और बडी तेजीके साथ रबरको फिर खानेमे बन्द कर दिया। मुख्य लेख खतम करनेके बाद वे चिट्ठियाँ लिखते। ज्यादातर तो वे चिट्ठियाँ अपने हाथसे ही लिखते थे और यह नियम उन्होने अपनी वृद्धावस्था तक जारी रखा। जब उनके दाहिने हाथमे चोट लग गई तो उन्होने बाएँ हाथसे लिखनेका प्रयत्न किया, पर वह चला नही।

चिट्ठी लिखनेकी कलाको वे अत्यन्त महत्व देते थे और जितना महत्व वे मुख्य लेख अथवा आलोचनाको देते थे, उतना ही पत्र-लेखनको भी। मौजूँ शब्द तलाश करके रखनेमे तो वे पारंगत थे। पत्र लिखकर वे अपने किसी साथीको सुनाते और उसकी सम्मति माँगते। शतरजका कोई खिलाड़ी जिस सावधानीसे अपने विरोधीकी अगली चालोका खयाल करके चाल चलता है, पत्र लिखते समय स्कॉट भी वैसी ही सावधानीसे काम लेते थे। पत्र लिखनेमें उनका सदा एक मुख्य उद्देश्य होता था। एक बार उनके एक साथीने पूछा—"आपने पत्रके उस मुख्य पैराका तो जवाब ही नही दिया!" स्कॉटने मुस्कराकर उत्तर दिया—"उसका उत्तर न

देना ही सर्वोत्तम उत्तर है। वे महोदय, जिन्हे चिट्ठी भेजी गई है, यह समझ जायँगे।"

लम्बे पत्रोको स्कॉट नापसन्द करते थे। मतलबकी बात सक्षेपमे लिखना उन्हे प्रिय था। कभी कोई लम्बी चिट्ठी आती तो कहते—"लो, एक खरीता अमुक महाशयका आ पहुँचा, जरा इसे पढकर देखो। क्या मुझे खुद जवाब लिखना चाहिए ?" स्कॉटने यह नियम बना लिया था कि वे आवश्यक पत्रोका तुरन्त ही और खुद ही जवाब देते थे। हा, ऊटपटाँग चिट्ठियोका उत्तर वे नही देते थे।

स्कॉट निरन्तर अपनी दृष्टि प्रतिभाशाली नवयुवक लेखकोपर रखते थे। वे सदा इस बातका प्रयत्न किया करते थे कि जबतक किसी दूसरे सम्पादककी निगाह किसी प्रतिभाशाली नवयुवक लेखकपर पडे, उसके पहले ही उसे अपने पत्रके लिए ठीक कर लिया जाय। किफायतशारीके खयालसे भी यह बात अच्छी थी और स्कॉट बडे किफायतशार थे। वे सोचते थे कि प्रारम्भमे नवयुवक लेखकोको पारिश्रमिक कम देना पडेगा और पीछे दूसरे पत्रोमे लेख छपनेपर उनके पुरस्कारका रेट बढ जायगा। यदि किसी नवीन लेखककी कोई अच्छी रचना छपती तो वे तुरन्त अपने सहकारी सम्पादकोको आदेश देते कि उसे प्रोत्साहन दिया जाय।

युद्धके दिनोमे विलायती पत्रोमे एक कुप्रथा चल पडी थी। वह यह कि बडे-बडे उपन्यासकारोको काफी रुपया देकर ऐसे प्रश्नोपर भी, जिन्हे वे खाक-धूल नही जानते थे, उनकी सम्मतियाँ तथा लेख लेकर छापे जाते थे। स्कॉट इस दम्भपूर्ण कार्रवाहीसे नफरत करते थे। एक बार किसीने स्कॉटसे कहा—"अमुक उपन्यासकारको प्रति लेखपर ४० पौण्ड मिलता है।" स्कॉटने बडे तपाकसे जवाब दिया—"जनाब, चालीस पौण्ड तो उन हजरतकी भी कीमत न होगी।"

स्कॉट लेखककी प्रसिद्धिका खयाल न करके लेखोकी उत्तमता या निकृष्टतापर ही ध्यान देते थे। एक बार एक सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवीने

'युद्धके बादका यूरोप' इस विषयपर अपने विचार लिख भेजे और स्कॉटसे कहा कि बहुत-थोडा-सा नाममात्रका पुरस्कार देकर वे उसे 'मैनचेस्टर गार्जियन' में छाप दे। स्कॉटको लेखमाला ठीक नही जँची और उन्होंने उसे वापस कर दिया। उन महान् साहित्यिक महोदयने कुछ दिन बाद लिखा—"वही लेखमाला जिमे आपने अस्वीकृत किया था, एक अन्य सम्पादकने एक सौ पौण्डमें स्वीकृत कर ली है।"

बडे आदमियोको अनुचित महत्व देते हुए समाचारपत्रोमे जो पैराग्राफ छपा करते है, उन्हे स्कॉट बहुत नापसन्द करते थे। एक बार उन्हीके पत्रमें एक पैरा छपा, जिसमें लिखा था—"माननीय. . . .महाशयकी आँतके फोडेका आपरेशन सुप्रसिद्ध डाक्टर सर फ्रेडरिक ट्रीव्स द्वारा किया गया।"

इसपर टिप्पणी करते हुए स्कॉटने अपने सहकारी सम्पादकको लिख भेजा कि इस खबरकी बिल्कुल ज़रूरत न थी, क्योकि—

(क) पहली बात तो यह है कि "माननीय अमुक महाशय" नगण्य महाशय हैं।

(ख) दूसरे, सभी बडे-बडे महाशयोको आजकल आँतके फोडेकी बीमारी हो रही है।

(ग) तीसरे, सुप्रसिद्ध डाक्टर सर फ्रेडरिक ही सभीका आपरेशन करते हैं।

स्कॉट पत्रकी ग्राहक-सख्या, विज्ञापन, प्रचार, अथवा सर्क्यूलेशन को उतना महत्त्व नही देते थे, जितना पत्रके प्रभावको। वे ग्राहक-सख्यामें वृद्धि अवश्य चाहते थे, जिससे उनके विचार अधिकाधिक आदमियो तक पहुँचें। पत्रका प्रचार भी उन्हे इष्ट था, क्योकि प्रचार बढनेसे विज्ञापन अधिक मिलता है, उससे पत्रकी स्थिति ठीक होती है और परिणाम-स्वरूप पत्रकी शक्ति भी बढती है। पर वे विज्ञापनदाताओकी खुशामद नही करते थे और बिना कारण उन्हे असन्तुष्ट भी नही करते थे। एक बार किसी

अनुभवहीन नवयुवकने स्कॉटसे कहा—"अमुक विषयपर पत्रमे लेख छपना कठिन होगा, क्योकि उसमे विज्ञापनदाताओके दबावमे आना पडेगा।" स्कॉटने इसका जिक्र करते हुए अपने एक अनुभवी सहकारीसे कहा—"जब वह नवयुवक विज्ञापनदाताओके दबावमे आनेकी बात कह रहा था, मेरे मनमे यह भावना उत्पन्न हुई कि उसे ठोकर मारकर सीढियो के नीचे गिरा दूँ।"

सबसे बडा गुण स्कॉटमे चित्तकी स्थिरता और दृढता थी। साठ वर्षकी उम्रमे उनपर पत्नी-वियोगका भयकर दु ख पडा, उसके दो वर्ष बाद उनका ज्येष्ठ पुत्र, जिससे उन्होने बडी-बड़ी आशाएँ बाँध रखी थी और जो उनके कामको आगे चलकर सम्हालनेवाला था, स्वर्गवासी हुआ; पर स्कॉटने अपने कर्तव्य-पालनमे जरा भी शिथिलता नही आने दी। वे कहते थे कि वह आदमी कायर है, जो दुर्घटनाओसे कर्तव्यच्युत हो जाता है। ८४ वर्षकी उम्रमे भी वे साइकिलपर अपने आफिस जाया करते थे। अपने कष्टो और दु खोकी चर्चा किसीसे न करते। 'साईं निज मनकी व्यथा, मन ही राखो गोय'—स्कॉट इस उपदेशके अनुयायी थे। वे पक्के आशावादी थे। कवितामे उन्हे कालरिजकी निम्नलिखित पक्तियाँ बहुत प्रिय थी—

> And winter slumbering in the open air
> Wears on his smiling face a dream of spring.
>
> —Coleridge.

> मुक्त वायु में सुप्त शिशिरके सस्मित अधरोंपर अविकार
> है सुखस्वप्न खेलता भावी नव वसन्तऋतुका सुकुमार
>
> —मिलिन्द

१ जनवरी सन् १९३२ को स्कॉट स्वर्गवासी हुए। जिन्होने अपने ५८ वर्षके दीर्घव्यापी सम्पादकीय जीवनमे पत्रकार-कलाके उच्च आदर्शोको

सामने रखकर अपने कर्तव्यका पालन किया, न बड़े आदमियोकी खुशामद की और न छोटोकी उपेक्षा, जो जनताकी खुशी या नाराजगीका खयाल न करते हुए अपनी अन्तरात्माके आदेशके अनुसार अपने विचार प्रकट करते रहे; थोडी-सी व्यापारिकता और सासारिकताके द्वारा जो, जिस दिन चाहते, महल खड़े कर लेते और लार्डकी उपाधिसे विभूषित होकर बुढापेमें चैनकी वशी बजाते, पर जिन्होंने सासारिक वैभवको अपनी स्वाधीनताके सामने नगण्य समझा, और अपनी योग्यता, दृढता और न्यायप्रियताके कारण ससारके बुद्धिमान व्यक्तियोके लिए आदरणीय बन गये, यहाँ तक कि महात्मा गाँधी जैसे जगतवद्य महापुरुष उनके दर्शनको तीर्थ-यात्राके समान समझने लगे, वे सम्पादकाचार्य सी० पी० स्कॉट हम लोगोके लिए स्मरणीय है, अभिनन्दनीय है, अनुकरणीय है।

अगस्त १९३५]

: १४ :

एच० डब्ल्यू० नेविनसन

भगवान वेदव्यासने महाभारतमे जिन चरित्रोका चित्रण किया है, उनमें हमे बलरामका चरित्र बहुत पसन्द है। बलराममे एक उत्साहप्रद फक्कडपन है, एक निराला व्यक्तित्व है और वह अजीबोगरीब गुण भी, जो महाभारतके अन्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध व्यक्तियोमे नही पाया जाता—यानी जिसे वे अपनी अन्तरात्माके अनुसार न्याययुक्त अथवा सत्य समझते है, उसपर डटे रहनेकी उनमे असाधारण क्षमता है। इस विषयमें वे भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यको मीलो पीछे छोड जाते है। उद्योगपर्वके दूसरे अध्याय-मे जब पाण्डवोकी मन्त्रणा-सभा बैठी थी, उसमे उन्होने स्पष्ट रूपसे कह दिया था कि युधिष्ठिरने अपने दोषसे राज्य खोया है। वे जुआ खेलने गये ही क्यो? इसलिए लडाई करके दुर्योधनसे राज्य माँगना अन्याय है। शान्तिसे, नम्रतापूर्वक ही, उससे व्यवहार करना चाहिए—

'अयुद्धमाकांक्षत कौरवाणां
साम्नैव दुर्योधनमाह्वयध्वम्।'

इसके बाद जब दुर्योधन और अर्जुन श्रीकृष्ण और बलरामको अपने-अपने पक्षमे लेनेके लिए द्वारिका गये, उस समय श्रीकृष्ण भगवान्ने तो समझौता कर लिया कि एक ओर मै नि शस्त्र रहूँगा और दूसरी ओर मेरी दस हजार नारायणी सेना रहेगी, पर बलराम अपनी बातपर डटे रहे। उन्होने साफ कह दिया कि मैं दोनो पक्षोमे किसीकी ओर नही जा सकता। उन्होने अपने छोटे भाई कृष्णको भी बहुत समझाया कि तुम भी किसी ओर मत हो, पर कृष्णने उनकी बात नही मानी! अन्तमें

बलरामने यही तय किया कि इन लोगोको छोड़कर सरस्वती-तीर्थपर जाकर रहूँगा। उनके वचन ये थे—"नष्ट होते हुए कौरवोकी मैं उपेक्षा नही कर सकता।"—

'न हि शक्ष्यामि कौरव्यान्नश्यमानानुपेक्षितुम्।'

और बलरामके चरित्रका सबसे अधिक उज्ज्वल पहलू तब दीख पडता है, जब वे महाभारतके अन्तमें भीम और दुर्योधन दोनोंके गदा-युद्धको देखनेके लिए गये हैं। दोनो ही बलरामके शिष्य थे। भीषण युद्ध हुआ। उस समय भीमने बेईमानी की। उन्होने दुर्योधनकी जाँघपर गदा मारी और यह बात गदा-युद्धके नियमोके सर्वथा विरुद्ध थी, क्योंकि इस युद्धमें नाभिके ऊपर ही आघात करनेका नियम है। दुर्योधनके जबरदस्त चोट लगी और वे कातर आवाजके साथ ज़मीनपर लेट गये। अन्य लोग, जिनमें श्रीकृष्ण भगवान् भी थे, इस अन्यायको देखते रहे, पर बलरामसे यह न देखा गया। वे क्रोधसे जल उठे और हल उठाकर भीमपर पिल पडे। बडी मुश्किलसे श्रीकृष्णने उन्हें शान्त किया। उस समय बलरामने जो शब्द कहे थे, वे चिरस्मरणीय हैं। उन्होने कहा था—"हे कृष्ण, केवल दुर्योधन ही नही गिरा है, जो विषम होते हुए भी मेरे समान योद्धा था, पर मेरा भी पतन हुआ है, क्योकि दुर्योधन यहाँ अकेला था और मेरा आश्रित था। आश्रितकी दुर्बलतासे आश्रयकी भी निन्दा होती है।"—

"ना चैव पतितः कृष्ण
केवलं मत्समोऽसमः
आश्रितस्य तु दौर्बल्यात्
आश्रय. परिभर्त्स्यते।"

(शल्यपर्व)

अभी उस दिन हमें हेनरी डब्ल्यू० नेविनसनका आत्मचरित (Fire of Life by Henry W. Nevinson) पढते हुए कई बार बलरामका ख्याल आ गया। अन्यायका विरोध करनेके लिए अपनी जान लड़ा

देनेवाला अगर कोई पत्रकार इगलैण्डमे है तो वह नेविनसन है। कमजोरो और अन्याय-पीडितोका पक्ष लेनेमे उसे मजा आता है। हथेलीपर जान लिये घूमना किसे कहते है, यह बात अगर कोई पत्रकार सीखना चाहे तो नेविनसनसे सीख सकता है। जब कवीन्द्र रवीन्द्र सन् १९२१मे नेविनसनसे मिले थे तो उन्होने अपने १० अप्रैलके पत्रमें मि० ऐण्ड्रूजको लिखा था—

"इगलैण्ड आनेपर पहले-पहल जिनसे मेरी मुलाकात हुई, उनमें नेविनसनका नाम उल्लेखनीय है। उनसे मिलकर मेरा यह विश्वास हो गया कि जिस भूमिने इस पुरुष-पुगवको जन्म दिया है, उस देशमे मानव-आत्मा अवश्य जीती-जागती विद्यमान है। किसी देशके विषयमे यदि हम फैसला करना चाहे तो हमे उसके सर्वश्रेष्ठ निवासियोको मद्देनजर रखना चाहिए और मै यह बात बिना किसी सकोचके कह सकता हूँ कि अगरेज़ोमे जो सर्वोत्तम है, वे मानव-समाजके सबसे बढिया नमूने है।"

मि० नेविनसन इस समय ८० वर्षके है, पर उनके आत्म-चरितमे केवल ७० वर्ष तकका हाल है। आइये, इस वीर पत्रकारके विचित्र सस्मरणोका कुछ परिचय हम लोग भी पा ले। सन् १८९६की बात है। नेविनसन उस वक्त ३९ वर्षके युवक थे। उस समय ग्रीक लोगोने टर्कीके अत्याचारोके विरुद्ध बगावतका झण्डा खडा किया था। चूँकि नेविनसन एक बार ग्रीसकी यात्रा कर चुके थे और उसकी प्राचीन सभ्यताके कारण ग्रीसके प्रति आपके हृदयमे अत्यन्त सम्मान भी था, आपने यह निश्चय किया कि अगरेज़ स्वय-सेवकोकी एक टुकडी बनाई जानी चाहिए, जो ग्रीस पहुँचकर उनकी मदद करे। आप बाइरन-सोसाइटीके अधिकारियोके पास गये, पर वहाँ पता लगा कि किसीने पहले ऐसा प्रस्ताव नही किया था। फिर आप ग्रीक राजदूतके पास गये, पर उन महाशयने भी उन्हें धन्यवाद देकर नम्रता-पूर्वक टरका दिया! इसके बाद ५ मार्चको क्वीन्स हॉलमे एक मीटिंग हुई। उसमें कितने ही प्रसिद्ध-प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ बोलनेवाले थे। जब टर्कीकी निन्दाका प्रस्ताव, जैसा कि हुआ करता है, सर्वसम्मतिसे

पास हो चुका तो आप अपनी कुर्सीपर उठ खड़े हुए और लगे लेक्चर देने— "यह मौखिक सहानुभूति तो बहुत हो चुकी, अब हमें कुछ क्रियात्मक सहानुभूति दिखलानी चाहिए। हमें स्वयं-सेवकोंकी एक फौज बनाकर ग्रीसको भेजनी चाहिए। कोरमकोर प्रस्तावोंसे कुछ नहीं होना-जाना।"

इतना कहना था कि तमाम श्रोतागण बड़ी नाराज़ीके साथ नेविनसनका विरोध करने लगे और उन्हें बोलनेसे रोकने लगे, पर नेविनसन रुकनेवाले आदमी नहीं थे, दनादन बोलते ही गये! चारों ओर शोरगुल होने लगा। अन्तमें प्रबन्धकोंने आपको कुर्सीपरसे पकड़कर नीचे घसीट लिया! मीटिंगके एक प्रतिष्ठित राजनीतिज्ञने नेविनसनसे कहा कि जो बात तुम्हें कहनी है, उसे लिखकर दो। आपने यही किया, नोट लिख-कर उनके पास भेज दिया। उन्होंने दूसरे सज्जनको दिया, पर उसपर कार्रवाई किसीने कुछ भी न की! आपने सोचा कि और कोई ग्रीस जाय या नहीं, मैं तो ज़रूर जाऊँगा और इस घटनाके दस दिन बाद आप ग्रीसके लिए रवाना हो गये!

चलनेके एक दिन पहले एक सज्जन आपको नेशनल लिबरल क्लबमें ले गये और वहाँ आपका परिचय 'डेली क्रानिकल'के सम्पादक मि० एच० डब्ल्यू० मैसिंगहमसे कराया गया। आधा मिनट भी न होने पाया था कि मि० मैसिंगहमने कहा—"क्या आप ग्रीससे हमारे पत्रके लिए संवाद भेज सकेंगे?" नेविनसनने कहा—"अवश्य।" बस, उस एक मिनटमें नेविनसनके जीवनका कार्यक्रम निश्चित हो गया। सन् १८९७से लेकर पिछले महायुद्ध तक जब-जब मौका मिला, आपने अनेक युद्ध-क्षेत्रोंमें जाकर संवाददाताका काम किया है। इस बार आपने ग्रीस-यात्रामें जिन कठिनाइयोंका सामना किया, उसे पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कई जगह आपको गोलियोंकी बौछारके बीचसे निकलना पड़ा। कानके पाससे सनसनाती गोलियाँ निकल जाती थीं और आप भयके भूतको दबानेकी बहुत कोशिश करते थे, पर भय मस्तिष्कसे निकलता ही न था! यह

लड़ाई तीस दिनमे खतम हो गई। इस बीच नेविनसनने कितने ही बार अपने प्राण सकटमे डाले। लडाई खतम होनेके बाद आपने अपने परिचित ग्रीक अफसरोको एक भोज दिया था।

जून सन् १८९७मे 'डेली क्रानिकल'के सपादकने नेविनसनको तार भेजा—'क्रीट जाकर वहाँके ईसाइयोसे मिलो और उनसे पूछकर लिखो कि उनकी आकाक्षाएँ क्या-क्या है ?" एक दुभाषियेको लेकर आप चल पड़े। हर वक्त जान जोखोमे थी। तुर्क लोगोकी गोलीका शिकार होनेका भय बराबर लगा रहता था, पर नेविनसन एक अप्रसिद्ध पहाडी रास्तेसे निकल गये और ठीक-ठिकाने जा पहुँचे। वहाँ लोगोसे मिलकर उन्होने विद्रोहियोसे, जो टर्कीके खिलाफ लड रहे थे, उनकी शर्तें पूछी। दूसरे दिन जब वे चलने लगे तो एक इटालियन सेनापतिने उनसे कहा—"आप जा तो रहे है, पर आपकी जिन्दगीका भरोसा नही है। क्रीट-निवासी आपका खात्मा कर देंगे और तुर्क लोग फाँसीपर लटका देंगे।" इसपर टिप्पणी करते हुए नेविनसन लिखते है—"मैंने मनमे सोचा कि एक ही साथ मे दो मौतोका शिकार होनेसे तो रहा, इसलिए यही बेहतर है कि खतरेमे पडा जाय और घोडेपर सवार होकर चल पडा।" जब नेविनसन और उनका साथी दुभाषिया 'न्यूट्रल जोन'से निकल रहे थे तो दोनो ओरकी निष्पक्ष(!)गोलियाँ उनके आस-पाससे निकल जाती थी।

लौटनेपर मैसिंगहमने उन्हे अपने पत्रके स्टाफमे बुला लिया और अग्रलेख लिखनेके लिए कहा। उन दिनोका बडा मनोरजक वर्णन नेविनसनने किया है। आत्मविश्वासकी उनमे कमी थी और यह सोचते थे कि दूसरोके कहनेपर लीडिंग आर्टिकल कैसे लिखा जायगा! पर जब लिखने बैठे तो मजेमे लिख डाला! कुछ दिनो बाद वह इस पत्रके साहित्य-विभागके सम्पादक बना दिये गए। उन दिनो बर्नर्ड शा आपके पत्रके लिए आलोचनाएँ लिखा करते थे। एक दिन आपने बर्नर्डशाको गायनाचार्य वेगनरके विषयमें चार-पाँच किताबे और गान-विद्या-

विषयक कुछ ग्रन्थ भेजे और डेढ कालममे सबकी सयुक्त आलोचनाके लिए लिखा। बर्नर्ड शाने जवाब दिया—"मै यह काम हर्गिज नही करूँगा और करूँगा तो अपनी शर्तोपर और गोकि मेरे दिलमें आपके एडीटरकी काफी इज्जत है, फिर भी जनाब, किसीके भरोसे न रहियेगा। आपकी इस हिमाकतकी रिपोर्ट लेखक-सघसे की जायगी और जो नतीजा होगा, सो देख लेना।"

नेविनसनने इस पत्रका उत्तर दिया—

"प्रिय महाशय,

ऐडीटर साहबने मुझसे कहा है कि मै आपको यह लिख दूँ कि वे उस लेखके लिए पाँच पौण्डसे एक कौडी भी ज्यादा नही देनेके। आप ज्यादा माँगेंगे तो आपको बता बता दी जायगी। आपका...."

बर्नर्ड शाने इसका उत्तर दिया—

"प्रिय महाशय,

आप अपने एडीटर साहबको इत्तला दे दीजिये कि इतने रुपयेपर लेख लिखनेके बजाय मै यह कही पसन्द करूँगा कि आप, वे और 'क्रानिकल' के सम्पादकीय विभागके सब आदमी जहन्नुम रसीद हो और वहाँ नरकाग्निमे उबाले जायँ।

आपका...."

इसके उत्तरमें नेविनसनने लिख भेजा—"तब आप हमारी किताबे वापस भेज दीजिए, जिससे हम किसी अन्य आलोचकसे लेख लिखा सके, जो आर्थिक दृष्टिसे आपकी अपेक्षा कम भारी-भरकम हो।" पर बर्नर्ड शाने, जैसी कि आशा थी, लेख लिख भेजा।

नेविनसनको अपने पत्रके सवाददाताकी हैसियतसे स्पेन और आयरलैण्ड भी जाना पडा था। आप आइरिश लोगोकी एक मीटिंगमे गये। ब्रिटिश पुलिस वहाँ मीटिंगके निकट ही तैनात थी—बन्दूक और डण्डे लिये हुए। व्याख्याता महोदयने खडे होकर कहा ही था—"यदि आज

खून-खराबी हुई तो उसकी सारी जिम्मेदारी पुलिसपर होगी" कि पुलिस टूट पडी और जो सामने आया, डडेसे उसका सिर तोड़ डाला। नेविनसन लिखते है—"उस वक्त मै सड़कके ठीक बीचोबीच बिल्कुल शान्त भावसे खडा रहा और मेरा सिर साफ बच गया। तबसे जब कभी मुझे पुलिस और जनताकी मुठभेडोका सामना करना पडा है, मैने इसी चालाकीसे काम लिया है और बराबर सफल हुआ हूँ।"

८ सितम्बर सन् १८९९को नेविनसन बोअर-युद्धमे सवाददाताका काम करनेके लिए रवाना हो गये और केपटाउन पहुँचे। लड़ाई उस वक़्त तक शुरू नही हुई थी। किनारेपर जहाज पहुँचते ही आपने यह तय किया कि जल्दी-से-जल्दी ब्लोमफानटीन और प्रिटोरिया पहुँचना चाहिए। इसलिए आप दूसरे ही दिन प्रात कालके समय छिपकर जहाज़से चल दिये और कारू तथा आरेंज नदीको पार करते हुए दूसरे दिन रातके वक्त ब्लोमफानटीन पहुँचे। वहाँ आप खास-खास आदमियोसे मिले। प्रिटोरियामे आप प्रेसिडेट क्रूगरके भवनपर भी मिलनेके लिए गये; लेकिन वहाँ जवाब मिला कि प्रेसिडेट नही मिल सकते, क्योकि प्रार्थना कर रहे है। इसके बाद स्टेट-सेक्रेटरी रीज तथा जनरल स्मट्ससे भी मिले। तत्पश्चात् आप ५ अक्तूबरको लेडीस्मिथ वापस चले गये। जब बोअर लोगोने लेडीस्मिथके चारो ओर घेरा डाल लिया तो उसमें आप भी घिर गये। उन दिनोका वर्णन आपने अपनी पुस्तक 'लेडीस्मिथ' ('Lady Smith') में किया है। इस बीचमे आप बीमार पड गये और डाक्टरोने कह दिया कि तुम्हारे बचनेकी आशा नही है। बीमारी थी मलेरिया और पीलियाकी, पर आप चेत गये। कभी-कभी आपको अत्यन्त भयकर परिस्थितिमें और एक अपरिचित देशमें नदी-नाले और पहाडी रास्ते तय करने पडे, पर आपने हिम्मत कभी नही हारी। घोडे मर गये, खाना कम पड़ गया, रास्ता जंगली, जगह-जगह लाशे पडी हुई और तीन सौ मीलका सफ़र! पर महाप्राण नेविनसनके लिए वह सब मानो बच्चोका खेल था।

बोअर-युद्धसे लौटनेके बाद आपको तीन वर्ष तक 'डेली क्रानिकल'के स्टाफमे काम करना पडा। आपके पुराने परिचित सम्पादक मि० मैसिंगहम तब तक इस पत्रको छोड चुके थे और नये सम्पादक उतने उदार विचारोके नही थे। उन तीन वर्षोंका जो सक्षिप्त वर्णन आपने आत्मचरितमे किया है, उससे पता लगता है कि एक स्वाभिमानी और स्वतन्त्र विचारोके पत्रकारको एक ऐसे पत्रके स्टाफपर, जिससे उसके विचार न मिलते हो, काम करनेमे कितनी मानसिक वेदना होती है। जिन पत्रकारोकी आत्मा रबरकी तरह लचीली होती है और जो अपने मनको समझा लेते है—"भई, हमें तो अपनी रोटी-दालसे काम, पत्रकी नीति कुछ भी क्यो न हो", उनका मार्ग तो सरल होता है, पर जो पत्रकार अपना निजी व्यक्तित्व रखते है, उनकी जान आफतमें रहती है। नेविनसन लिखते है—"चुप रहना मेरे लिए मुश्किल था। मेरे लिए अपनी जबानको रोकनेके मानी थे मृत्यु। अगर मै चुप रहता तो मेरी सारी सजीवता ही नष्ट हो जाती। आलसी बन मुर्दा हो जानेके मानी थे डबल मौत।"

इस सकट कालमें १९ जून, सन् १९०१को एक घटना ऐसी हुई, जिसमें नेविनसनको अपनी जिन्दादिली दिखानेका एक मौका हाथ आ गया। उस दिन क्वीन्स-हॉलमे शान्तिके पक्षमे एक मीटिंग होनेवाली थी। इस मीटिंगका उद्देश्य था कि बोअर लोगोसे सुलह कर ली जाय। लायड जार्ज इस मीटिंगमे बोलने वाले थे। साधारण जनता इस मीटिंगके सख्त खिलाफ थी। बडी मुश्किलसे नेविनसेन धक्कम-धक्कोके बीचमेसे गुजर-कर क्वीन्स-हॉलमे पहुँच पाये। लायड जार्जका अत्यन्त प्रभावशाली भाषण हुआ। भाषणके समाप्त होते ही नेविनसनने सोचा कि चलो, जल्दीसे निकल चलें और अपने पत्र 'क्रानिकल'के आफिसमे पहुँचकर इस मीटिंगकी रिपोर्ट लिखे, लेकिन हॉलसे बाहर निकलना आसान काम न था। हॉलके चारो ओर क्रुद्ध जनता विद्यमान थी। हालके पीछेके रास्ते-पर पहुँचते ही पुलिसवालोने नेविनसनसे

कहा—"क्या ज़िन्दगी भारी पडी है? जनता तुम्हे जानसे मार डालेगी।"

नेविनसनने कहा—"कुछ भी क्यो न हो, मुझे तो अपने पत्रके आफिस-पर पहुँचना ही है।"

एक पुलिसवालेने कहा—"अच्छा, एक तरकीब हम करेगे। हम यह बहाना करेगे कि तुम इस मीटिगमे ऊधम मचाते थे, इसलिए बाहर निकाल दिये गए हो और हम झूठमूठको तुम्हे पीटेंगे, जिससे जनता इस धोखेमे आ जाय कि यह भी हमारे ही मतका है और बोअर लोगोका विरोधी है।"

नेविनसन लिखते है—"मै इस बातपर राजी हो गया और मीटिंगसे बाहर निकाले जानेका बहाना करने लगा। पुलिसवाले मुझे दिखावटी तौरपर पीटने लगे—थोडा नही बहुत—और मेरा सिर इधर-से-उधर टकराने लगा। कान्स्टेबल लोगोने डडे भी जमाये और मुझे ऐसा भ्रम होने लगा कि इस नाटकके बहाने वे अपने राजनैतिक विश्वासोका प्रदर्शन भी मेरे सिरपर कर रहे है! उनकी चोटोकी खाईसे बचकर जो मै निकला तो अत्यन्त क्रुद्ध जनताकी खन्दकमें आ गिरा! भला वे क्यो इस झूठमूठके नाटकसे धोखेमे आने लगे! कविवर ब्राउनिंगने ठीक ही लिखा है कि ब्रिटिश लोगोको चकमा नही दिया जा सकता। जिस तरह शिकारी कुत्ते लोमडीपर टूट पडते है, उसी तरह वे सब मुझपर टूट पडे। नतीजा यह हुआ कि मेरा कालर खुल गया, कोट टुकडे-टुकडे हो गया और कमीज़ फट गई। चिल्ला-चिल्लाकर वे लोग मुझसे कह रहे थे—'तुम दुश्मन बोअर लोगोके पक्षपाती हो।' गोया कोई नई खबर मुझे सुना रहे हो, जिसका मुझे पता न हो! एक ख़ैरियत थी, वह यह कि जनता इतनी ठसाठस खडी थी कि मुझपर दो-तीन आदमी ही एक साथ चोट कर सकते थे। थोडी दूरपर एक मोटरबस खडी थी। उन चोटोके बीचमें वह फासला मुझे अनन्त-सा प्रतीत हुआ। ज्यो-त्यो करके मै बस तक पहुँचा। उसकी लोहेकी छडियोको मैने हाथसे पकड़ा ही था कि ऊपर बैठी हुई

औरते चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगी—'लो, यह आया एक वोअरोका समर्थक', 'देखो वह दूसरा आया !' मानो उनकी निगाह किसी गन्दे खटमलपर पड गई हो। फिर क्या था ! उन्होने अपने छातोकी मूठोसे मेरे सिरपर चोट करना शुरु किया। उन दिनो छातोके नीचे लोहेकी ठोस गोलीसी रहती थी, इसलिए सिर भिन्ना गया। इन औरतोने मेरे मुँहपर थूका भी और वसका डडा मेरे पजेसे छुडाकर गिरानेकी कोशिश भी की ! उस दिनसे मुझे इस वातमे कोई शक नही रहा कि स्त्रियोमें राजनैतिक उत्साह कितना अधिक है और उस उत्साहके प्रकट करनेके अधिकारको वे कितने वैधानिक तरीकेपर काममे ला सकती है ! खूनमें लथपथ और फटे कपडे पहने मैं अपने आफिसमें पहुँचा। एडीटर साहवने क्रोध और घृणाके साथ पूछा—'जनाव, उस मीटिंगमे वोअर लोगोके समर्थककी हैसियतसे गये होगे !' मैंने जवाव दिया—'वेशक ! और मैंने एक सवक भी सीख लिया है। इव्सनने अपने नाटकमे एक जगह लिखा है कि सत्य और न्यायका पक्ष लेकर कही जाना हो तो अपनी सर्वोत्तम पतलून पहनके मत जाना। यह वात आज मेरी समझमे आ गई है।"

एडीटर साहवकी मनोवृत्ति और नेविनसनके दृढ विश्वासोमे जमीन-आस्मानका अन्तर था और अधिक दिन तक गगा मदारका यह साथ रह नही सकता था। सन् १९०२में नेविनसनने पत्रके सचालकसे कहा—"मुझे एक वार अफ्रिका फिर जाने दीजिए, क्योकि सन्धि होनेवाली है और मैं आपके पत्रके सवाददाताकी हैसियतसे वहाँ जाऊँगा।" सचालक महोदय राजी हो गये और नेविनसन फिर अफ्रिकाके लिए रवाना हुए। इस वारकी यात्रामे उनकी भेट प्रधान-सेनापति किचनरसे भी हुई।

नेविनसनने जिन-जिन युद्धोमें सवाददाताका काम किया और जिन-जिन खतरोमे वे पडे, उन सवका वृतान्त सक्षेपमे देनेके लिए भी यहाँ स्थान नही है। सन् १९०३में आप सैलोनिका गये थे। तुर्क लोगोने वल्गेरियाके निवासियोपर जो जुल्म किये थे, उनकी जाँच की थी। सुप्रसिद्ध ब्रिटिश

पत्रकार ब्रेल्सफोर्ड उस समय आपके साथ थे। जिन दिनो रूसमे जारशाहीके जुल्मोका दौरदौरा था, उस समय दो बार आप रूस गये थे। चीन-जापान-युद्धमे जानेकी आपने वहुत कोशिश की, पर अवसर ही नही मिला। पिछले महायुद्धमे भी आपने सवाददाताका काम किया था। हथेलीपर जान लिए घूमनेमे नेविनसनको मजा आता है। न्यूयार्ककी हार्पर्स कम्पनीने जव आपसे कहा—"हम एक हजार पौण्ड आपको देगे, अगर आप हमारे लिए कोई विचित्र यात्रा करे" तो आप फौरन् राजी हो गये और आपने पोर्चुगीज वेस्ट सेण्ट्रल अफ्रिकाकी, जहाँ गुलामीका व्यापार होता था, यात्रा करनेकी ठानी। आप अफ्रिका पहुँचे। कितने ही आदमियोने आपको दोस्ताना तरीकेपर सलाह दी कि आप जानसे मार डाले जायँगे, पर आप भला क्यो डरने लगे! जॉच करके इस गुलामी-प्रथाकी वह पोल खोली कि प्रथा आखिर वन्द ही कर दी गई! इस सिलसिलेमे एक वडी मनोरजक घटना नेविनसनने लिखी है।

जव अफ्रिकासे लौटनेपर आपने गुलामी-प्रथाके विरुद्ध आन्दोलन किया तो एक वार आपको वैदेशिक विभागके एक उच्च अफसरसे मिलनेके लिए जाना पडा। अफसरने मिलते ही कहा—"अखबारोमे पोर्चुगीज़ अफ्रिकाकी गुलामीके वारेमे जो कष्ट-प्रद लेख निकल रहे है, वे क्या जनावके ही लिखे हुए है? और जो कडी रिपोर्ट निकली है, क्या उसके रचयिता आप ही है?" नेविनसनने जवाव दिया—"जी हाँ, मुझे इस वातसे प्रसन्नता है कि वे लेख आपको कष्ट-प्रद प्रतीत हुए और रही रिपोर्टकी वात, सो वह तो काफी कडी नही है।" हाकिमाना शानमे वडी घृणाके साथ उस अफसरने कहा—"क्या आप यह चाहते है कि धनधान्य-समृद्ध वे टापू वीरान वना दिये जायँ?" नेविनसनने कहा—"जो अत्याचार मैने अपनी आँखोसे वहाँ देखे है, उनके मुकावलेमे यही वेहतर होगा कि ये टापू वीरान वना दिये जायँ?" इसपर अफसरके दिमागका पारा और भी चढ गया और उसने कहा—"क्या आप यह चाहते है कि दुनियामे

जहाँ कही भी गुलामी हो, वहाँ इगलैण्ड पुलिसका काम करे ?" नेविनसनने भी बिल्कुल अफसराना ढगपर जवाब दिया—"The answer is in the affirmative"—"इस प्रश्नका उत्तर स्वीकारात्मक है।"

रूसी जारशाहीके जुल्मोके विषयमे रिपोर्ट करनेके लिए दो बार आप रूस गये। पहली बारकी यात्रामें आपको टाल्सटायके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। नेविनसन लिखते है, "टाल्सटायने उस समय मुझसे कहा था—"तुम एक नवयुवक हो (यह बात सन् १९०५की है और मै उस वक्त पचास वर्षका था) और मै बुड्ढा हो चुका, लेकिन ज्यो-ज्यो तुम्हारी उम्र बढती जायगी और दिन-पर-दिन बीतते जायँगे, तुम्हे अपनेमें कोई फर्क न मालूम पडेगा, पर किसी दिन अकस्मात् तुम्हे यह सुनाई पडेगा कि लोग तुम्हे 'बूढा आदमी' बतला रहे है! इतिहासमे युगकी बात भी ऐसी ही है। दिन-पर-दिन बीतते जाते है और कोई बडा फर्क नही मालूम होता, पर एक दिन अकस्मात् ऐसा प्रतीत होता है कि युग बीत चुका, खतम हो चुका। रूसमें जो आन्दोलन तुम देख रहे हो, वह कोई विद्रोह नही है और न कोई क्रान्ति है, वह तो एक युगका खात्मा है और जो युग खत्म हो रहा है, वह साम्राज्योका युग है। भला, रूसमे और फिनलैण्ड, पोलैण्ड तथा काकेशसमें क्या हार्दिक सम्बन्ध है ? आस्ट्रिया-का हगरी, बोहीमिया, स्टीरिया या टाइलोरसे क्या हार्दिक प्रेम है ? और इग्लैण्डका आयर्लैण्ड, कनाडा, आस्ट्रेलिया अथवा भारतसे क्या हार्दिक सम्बन्ध है ? साधारण जनता इस राजनैतिक सम्बन्ध या साम्राज्यवादके खोखलेपनको समझती जाती है और अन्तमें साधारण जनताकी बात ही अधिक तर्कयुक्त सिद्ध होती है। इसलिए मै समझता हूँ कि साम्राज्योके युगका अब अन्त हो रहा है। लोग मुझसे कहते है कि यदि रूसी साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया तो जापानी हमारे मुल्कपर चढ बैठेंगे और हम लोगोका नाश कर देगे, लेकिन जापानी जनता भी समझदार है और

जब वे यहाँ आकर देखेंगे कि रूसी साम्राज्यके टूट जानेपर हम लोग कितने प्रसन्न हैं तो वे भी अपने घर लौटकर हमारे आदर्शका अनुकरण करेंगे।"
टाल्सटायकी ४१ वर्ष पहले की हुई यह भविष्यवाणी विचारणीय है।

दूसरी बार जब नेविनसन रूसको जाने लगे तो उनके मित्रोंने और विरोधियोंने भी आपको अनेक बार सावधान किया कि वहाँ मत जाओ, क्योंकि वहाँ पहुँचते ही तुम्हारी बोटी-बोटी उड़ा दी जायगी। बात यह थी कि रूसमे उन दिनों ज़ारशाहीका जमाना था। डूमा (पार्लमिण्ट) बर्खास्त कर दी गई थी। उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करनेके लिए इंग्लैण्डके उदार दलवालोंने घोषणा-पत्र निकाला था और यह तय पाया गया था कि एक डेपूटेशनके हाथ सहानुभूतियुक्त पत्र रूसको भेजा जाय। मि० ब्रेल्सफोर्डको पासपोर्ट नही मिला, इसलिए वे तो जा नही सके, आखिर यह काम नेविनसनने अपने ऊपर ही लिया। रूससे खबरें आ रही थी कि जहाँ नेविनसनने रूसी भूमिपर पैर रक्खा कि राजभक्त रूसी सैनिक उनके टुकड़े-टुकड़े कर देंगे।

नेविनसन लिखते है—"उस वक्त अपने शरीरको टुकड़े-टुकड़े होनेसे बचानेके लिए मैने दो तरकीबें की। अगर भोले-भाले रूसी लोगोमें थोड़ी भी अकल होती तो वे इन तरकीबोंको फौरन् ताड़ जाते। पहली तरकीब तो यह थी कि मै उस रूसी सीमापर गया ही नही, जहाँ ज़ारके भक्त सिपाही बर्छी और भाले लिये मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मै हैमबर्ग, कोपनहैगन, स्टाकहोम और हैलिंगफोर्स होकर चुपचाप सेन्टपीटर्सबर्ग पहुँच गया। दूसरी तरकीब मैंने यह की कि घोषणा-पत्रको मैने अपनी कमीजके साथ सिलवा लिया था और मज़ेकी बात यह थी कि इसके बाद भी कोई अधेड उम्रका बुर्जुआ नागरिक जितना मोटा लगता है, उससे ज्यादा मोटा भी मै नही जँचता था।"

सन् १९०७मे आप एक नवीन पत्र 'नेशन'मे काम करने लगे। आपके पुराने मित्र मि० मैसिंगहम इस पत्रके सम्पादक नियुक्त हुए थे।

ब्रेल्सफोर्ड भी इसी पत्रमे काम करते थे । १९०७के अक्तूबरमें आप भारतवर्ष पधारे और यहाँके खास-खास नेताओंसे मिले । श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा श्री अरविन्द घोषसे भी आप मिले थे । कालेज-स्क्वायरकी एक मीटिंगमे, जिसमे श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जीका भाषण हुआ था, आप शामिल हुए थे और उसमें आप बोलें भी थे । इस कारण आपको ऐंग्लो इण्डियन पत्रोके कटाक्ष सहने पडे । आपने उसका जिक्र करते हुए लिखा है—"ऐसा प्रतीत होता है कि ऐंग्लो-इण्डियन-पत्र गालियाँ कम्पोज कराके रख छोडते हैं और मौका लगते ही झट उनका प्रयोग अपने विरोधियोपर करने लगते है ।" दूसरे दिन प्रात कालके समय आप गवर्नरके यहाँ चाय पीनेके लिए गये । खैरियत यह थी कि तबतक 'स्टेट्समैन और 'इगलिश मैन' तथा भारतीय पत्रोके अक गवर्नर साहबके पास पहुँचे नही थे । ज्योही ये अक पहुँचे, गवर्नर साहबका रुख बदल गया । शायद इस बातसे वे और भी नाराज हो गये कि नेविनसन उसी रातको अरविन्द घोषसे भी मिले थे और इसकी खबर खुफिया पुलिसने उनके कानो तक पहुँचा दी थी । विलायत लौटकर आपने एक पुस्तक लिखी थी, जिसका नाम था, 'भारतवर्षमे नवीन भावना' ('The New Spirit in India') ।

स्त्रियोके मताधिकारके आन्दोलनमे जितना जबरदस्त हाथ नेविनसनका रहा, उतना शायद ही किसी दूसरे पत्रकारका रहा होगा । इसके लिए आपको तेरह वर्ष तक निरन्तर उद्योग करना पडा । देश भरमे व्याख्यान देने पडे । जो जुलूस औरतोके मताधिकार प्राप्त करनेके लिए निकलते थे, उनमें आप बराबर शामिल होते थे । एक मीटिंग औरतोकी थी और इसमे लायड जार्ज बोलनेवाले थे । कुछ ऐसी औरते भी इस मीटिंगमे शामिल हुई थी, जो जेलखानेकी हवा खा आई थी । जब लायड जार्ज व्याख्यान दे रहे थे, इन महिलाओने अपने ऊपरके कपडे उतार फेंके और जेलके कपडोमे, जो नीचे थे, खडी

हो गई ! लायड जार्ज शान्तिपूर्वक भाषण देते रहे। इतनेमें एक जगहसे आवाज़ आई—'Deeds, not words'—'हमें ठोस काम चाहिए, शुष्क शब्द नही।' बस, फिर ऐसा होहल्ला मचा कि कुछ पूछिये नही। मीटिंगके प्रबन्धकोने औरतोको पकड-पकडकर निकाल बाहर फेकना शुरू किया। भला, नेविनसन कैसे चुप रह सकते थे ! आप उठ खडे हुए और बोले—"मि० लायड जार्ज, क्या इस बार फिर 'बेरहमी'से कारंवाही की जायगी ?"

बात यह हुई थी कि अपनी एक पहली मीटिंगमें लायड जार्ज प्रबन्धकोको आज्ञा दे चुके थे—"Fling them out ruthlessly."—"इन औरतोको बेरहमीसे निकाल बाहर करो।" नेविनसन अपनी जगहपर खडे-खडे बार-बार यही सवाल दुहराते रहे। आखिर लायड जार्जका ध्यान इधर आकर्षित हुआ और वे बोले—"Oh Mr. Nevinson, I wonder at a man of your education behaving like this"—"ओह मि० नेविनसन, आपकी तरहका सुशिक्षित आदमी भी ऐसी हरकत कर सकता है ?"

इस घटनाका जिक्र करते हुए नेविनसन लिखते है—"शिक्षा हो या अशिक्षा, मै तबतक चिल्लाता ही रहा, जबतक मीटिंगके प्रबन्धकोने मुझे घेर नही लिया और पकडकर हॉलके बाहर घसीटने न लगे। 'टेलीग्राफ'के रिपोर्टरने इस झगडेकी रिपोर्टमे लिखा था—'नेविनसननें कन्धेसे धक्का देकर एक प्रबन्धकको धराशायी कर दिया।' मुझे याद नही कि मैंने यह वीरतापूर्ण कार्य किया था या नही, पर मै आशा करता हूँ कि यह बात सत्य थी। जब प्रबन्धक मुझे पकड रहे थे, मै छुडाकर प्लैटफार्मकी ओर भागा और वे लोग मेरे पीछे-पीछे ! इससे गुलगपाडा और भी बढ गया। आखिर उन्होने मुझे पकड लिया और गर्दनपर ऐसे जोरसे घूंसा जमाया कि मै सुन्न पड गया, फिर बेहोशीमें मुझे घसीटकर बाहर फेंक दिया। मै बिल्कुल हाँफ उठा था। ज्योही

सम्हलकर बैठा तो देखता क्या हूँ कि कितनी ही औरतें, जो मेरी तरह निकाल बाहर फेंकी गई थी, वहाँ पडी हुई है। एक बात देखकर मुझे बडी हँसी आई कि ये औरतें उठकर पहला काम यह करती थी कि सिरपर अपनी टोपी (अगर टोपी सही-सलामत बच रही तो!) ठीक तौरपर रखती थी, चाहे उनके कितनी ही भयकर चोट क्यो न लगी हो और चाहे उनके कपडे कितने ही क्यो न फट गये हो!

"घर पहुँचते ही मुझे अपने सम्पादक ए० जी० गार्डनरका एक रुक्का मिला—'आप अपनी नौकरीसे मुअत्तिल किये जाते है।' मैं साइकिलपर सम्पादक महोदयके पास पहुँचा और कहा—'मैंने यही किया, जो वहाँ उपस्थित किसी भी भले आदमीको करना चाहिए था।' अपने पक्षके समर्थनमे मैंने जो यह तर्क किया, वह जरा गैरमौजूं था, क्योकि हमारे सम्पादक महोदय उस मीटिगमे लायड जार्जके पीछे ही विराजमान थे! सम्पादकने कहा—'यह मामला डाइरेक्टर लोगोके सामने उपस्थित किया जायगा, तवतक आप कबड्डी खेलिये।' जब ब्रेल्सफोर्ड प्रभृति हमारे साथी-सगियोने यह बात सुनी तो उन्होने धमकी दी कि अगर नेविनसनके खिलाफ कोई कार्रवाई की गई तो हम भी इस्तीफा दे देंगे।' आखिर मामला यो ही रफा-दफा कर दिया गया।"

पीछे जब जेलमे औरतोको जबरदस्ती ठूंस-ठूंसकर खाना खिलाया गया तो आपने 'मेनचेस्टर गार्जियन'मे इस अत्याचारका घोर विरोध किया। जब आपके पत्र 'डेली न्यूज़'में ही सम्पादकने एक अग्रलेख इस प्रथाके पक्षमें लिखा तो आपने अपनी नौकरीसे त्याग-पत्र दे दिया और आपके साथ ब्रेल्सफोर्डने भी नौकरी छोड दी। नौकरीसे इस्तीफा देदेनेसे नेविनसनको घोर आर्थिक सकटका सामना करना पडा, पर अपने सिद्धान्तोकी रक्षाके लिए नेविनसनने क्या-क्या नही किया? वे गरीब पत्रकार ही, जिन्होने कभी इस पथका अनुसरण किया

है, नेविनसनकी कठिनाइयोकी कल्पना कर सकते है। फरवरी सन् १९१८मे जब स्त्रियोको मताधिकार मिल गया तब स्त्रियोकी एक मीटिंग हुई (२८ अप्रैल, १९१८), जिसमे नेविनसनको धन्य-वाद दिया गया और २८० पौण्डकी एक थैली भी भेट की गई। उस दिनको नेविनसन अपने जीवनके स्मरणीय दिवसोमे गिनते है। आपने लिखा है—"क्या ही अच्छा होता, यदि उस मनोहर उत्सवसे समाप्त होनेके बाद ही मेरे जीवनकी भी समाप्ति हो जाती! पर मृत्युके लिए उपयुक्त अवसर थोडे ही आदमी चुन सकते है।"

नेविनसनने आयरलैण्डके निवासियोकी स्वतन्त्रताके लिए भी भरपूर उद्योग किया था और कई वर्ष उसमे लगा दिये थे। सर रोजर केसमेण्टको, जिन्होने युद्धके दिनोमे ब्रिटेनके विरुद्ध बगावत की थी, फाँसीसे बचानेके लिए नेविनसनने बहुत प्रयत्न किया, पर इसमे वे सफल नही हुए। सुप्रसिद्ध देशभक्त मेकस्विनीकी लाश जब इग्लैण्डसे आयरलैण्ड ले जाई गई थी तब आप भी उसके साथ थे।

नेविनसनके चरित्रमे यह खूबी है कि आप अच्छे आदमियोसे मित्रता स्थापित करनेमे सफल हुए है। सुप्रसिद्ध अराजकवादी प्रिंस क्रोपाटकिनसे आपका घनिष्ठ सम्बन्ध था और उनके कार्यमे आपने सहायता भी दी थी। एडवर्ड कारपेण्टरसे तो आपकी खासी अच्छी दोस्ती थी। टाल्सटाय, रस्किन, कार्लाइल, सी० पी० स्काट, ए० ई० (जार्ज रसेल), माननीय मि० गोखले तथा अन्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध व्यक्तियोके आपने दर्शन किये थे और उनसे परिचय प्राप्त किया था। स्थानाभावसे हम उन महापुरुषोके संस्मरणोका यहाँ जिक्र नही कर सकते, जिनका वर्णन नेविनसनने अपने ग्रन्थमे किया है।

खास-खास ऐतिहासिक मौकोपर उपस्थित होना तो मानो नेविनसनके भाग्यमे ही बदा था। जिस दिन जर्मनीमे गत महायुद्धकी घोषणा हुई

थी, उस दिन आप बर्लिनमे मौजूद थे और ब्रिटिश राजदूतके साथ ही वहाँसे रवाना हुए थे। युद्धमे सवाददाता बनकर आप गये भी थे और अनेक स्थलोपर आपने अपने जीवनको भी खतरेमे डाला था। सबसे अधिक ध्यान देने-योग्य बात यह है कि आपने मानव-समाज-सेवाके भावको देशभक्तिसे कही ऊँचा समझा है। नेविनसन इस बातको अच्छी तरह जानते है कि जब हमारा अपना देश गलत मार्गपर जा रहा हो, उस समय सबसे बडी देश-सेवा यही है कि स्वदेशकी उस भूलके विरुद्ध विद्रोह किया जाय।

नेविनसनका जीवन-चरित पढते हुए एक बातका ख्याल हमें बार-बार आया है, वह यह कि नेविनसन सरीखे निर्भीक पत्रकार किसी स्वाधीन देशमे ही जन्म ले सकते है। इस अभागे देशमे, जहाँ पत्रकारोको हृदयहीन पूँजीपति मालिक, सदा सशक विरोधी सरकार और गुणग्राहकता-विहीन जनताके बीचमे काम करना पडता हो, नेविनसनके गुणोका विकसित होना सम्भव नही। नेविनसनका वीरतापूर्ण अक्खडपन जितना चित्ताकर्षक है, उतनी ही उनकी सहज विनम्रता हृदयहारिणी है। नेविनसन महोदय अच्छे कवि भी है, पर आप लिखते है—"जब कभी मेरी कविताओके विषयमें कोई आलोचना—प्रशसा या निन्दा—करता है तो मेरे मनमे वही भाव उत्पन्न होते है, जो किसी परदेमें रहनेवाली स्त्रीके परदा उठा देनेपर।"

सबसे बडी प्रशसा आप किस चीजको समझते है, सो भी सुन लीजिए। सन् १९२६में आप पैलेस्टाइन गये हुए थे। उस समय वही आपकी इकहत्तरवी वर्षगाँठ हुई। जेरूसलमकी तीर्थ-यात्रा करके मोटरके रास्ते बगदादको रवाना हुए। पाँच मोटरे थी, जिनमे दो मेल कम्पनीकी थी। बीचमें पानी आ गया। दिन-रात आपको भीगते हुए सफर करना पडा। डाकसे लदी मोटरोके पहिये कीचडमे घुस जाते थे। उतरकर उन्हे निकालानेमे नेविनसन सत्तर वर्षके होते हुए भी खूब मदद देते थ। जब

आप वगदाद पहुचे तो सारा शरीर कीचड़से लथपथ था और ऐसा प्रतीत होता था मानो आप कीचडकी मूर्ति वन गये हो। मोटरोके पाँच नवयुवक ड्राइवरोने, जो अगरेज थे और युद्धके वाद यही वस गये थे, अपनी मेल कम्पनीके हेडक्वार्टरपर जाकर कहा—"Look here! Whatever happens, we must keep Old Bill as a digger on the Staff."—'देखिये साहव, चाहे कुछ हो, हमें हर हालतमे इस बुड्ढेको अपने यहाँ खुदाईके कामपर नौकर रख ही लेना चाहिए।' इसपर टिप्पणी करते हुए नेविनसनने लिखा है—'अपने लम्वे और विविध अनुभवपूर्ण जीवनमे मुझे जो तारीफे मिली है, उनमें इस प्रशसाको मै सर्वोत्कृष्ट मानता हूँ।'

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुरका यह कथन सर्वथा सत्य है कि जवतक इग्लैण्डमे नेविनसन सरीखे व्यक्ति विद्यमान है तवतक उसकी आत्मा सजीव है। एक क्षुद्र पत्रकारकी हैसियतसे हम भी नेविनसनको अपने एक कवि-वन्धुके इन शव्दोके साथ प्रणाम करते है—

"न होने देते हरण कदापि स्वत्व दीनो के पूज्य महान,
सहन होता है तनिक न तुम्हें देवियो का रंचक अपमान;
कहीं यदि होता है अन्याय, त्रसित होती मानव-सन्तान,
अड़ा देते हो अपनी देह, लड़ा देते हो अपनी जान।"

: १५ :

आचार्यवर गीडीज़

[आज जाति-जाति, देश-देश और मानव-मानवके बीच भेदकी जो गहरी खाई विद्यमान है उसे पाटकर विश्वमें एकताका सन्देश फैलानेवालो को हम 'सेतुबन्धके इंजीनियर' (Bridge Builder) कह सकते हैं और आचार्य गीडीज उन्हीं इंजीनियरोमें अग्रगन्य थे।

सन् १९१३में नागरिकता और नगर-निर्माणकी जो अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी बेलजियममें हुई थी उसके मूलमें आचार्य गीडीजकी यही ऐक्य भावना थी। उन्होंने उक्त प्रदर्शिनीका सामान भारतवर्षको जहाज द्वारा भिजवाया था, पर दुर्भाग्यवश जर्मन जहाज ऐमडन द्वारा वह समुद्रमें डुबा दिया गया। पर प्रोफेसर गीडीजने हिम्मत नहीं हारी और अपने मित्रोंकी सहायतासे फिरसे उसी प्रकारकी प्रदर्शिनी तैयार की और वह भारतवर्ष भेजी गई। यह बात उल्लेखनीय है कि भारतवर्षमें नगर निर्माणकी वैज्ञानिक आयोजनाओंका प्रारम्भ इसी प्रदर्शिनीके बादसे हुआ है। उनकी विश्वऐक्यकी स्कीमका आधार घर था और घरो, मुहल्लो और नगरोंके संघसे प्रारम्भ करके वे उसे जनपदो और प्रान्तो तक ले जाना चाहते थे और तत्पश्चात् उसे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय रूप देनेके पक्षपाती थे। वे जनताका राष्ट्र-संघ चाहते थे, न कि सरकारोका।

जनपदीय जांच और सगठनके वे प्रवर्तक तथा प्रबल पक्षपातीं थे। वे कहते थे, "जनपदीय होनेके मानी यह थोड़े ही है कि जहां आपका जन्म हुआ हो, जिन्दगी-भर आप वहाँ रहें और वहीं मरें। उसका अर्थ यह

है कि अपने जन्मस्थान तथा आसपासका आप विधिवत् अध्ययन करें, पूरे-पूरे विवरणके साथ तथा सभी दृष्टिकोणोंसे। कलाको पुनर्जीवन प्रदान करनेका यही उपाय है।"

जो महानुभाव आज हिन्दी-जगत्के जनपदीय आन्दोलनका विरोध कर रहे हैं उन्हें आचार्य गीडीजके जीवन-चरितका अध्ययन करना चाहिए। अपने ऐडिनवराके Outlook Tower की तरहका एक 'दूरदर्शी बुर्ज' बम्बईके लिए भी बनाना चाहते थे जिसमें ये विभाग रखनेका उनका विचार था : बम्बई नगर, पश्चिमी भारत, भारत, एशिया, यूरेशिया और अखिल जगत्। इन सबके निरन्तर प्रगतिशील सम्बन्धोंको जनताके सामने प्रकट करना ही उनका लक्ष्य था।

जनपदीय अन्दोलनोंके विरोधियोंका कथन है कि इससे जनपदीय बोलियाँ जागृत होकर उठ बैठेंगी और फिर इनसे खड़ी बोलीको खतरा होगा। इस शंकाके उत्तरमें स्वयं आचार्य गीडीजके निम्नलिखित शब्द उद्धृत करना पर्याप्त है :

"बिलाशक जिन्दा रहनेमें खतरा है। जीवित रहना निस्सन्देह भयंकर है। सबसे अधिक सुरक्षित स्थान तो क़ब्र है, जहाँ निर्भयतापूर्वक लेटा जा सकता है।"

आचार्य गीडीजका दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक था। उनका सम्पूर्ण जीवन उनके व्यापक दृष्टिकोणका प्रमाण था। विद्यार्थी अवस्थामें वे यूरोपके भिन्न-भिन्न देशोंमें शिक्षा पानेके लिये घूमे थे और तत्पश्चात् भारतवर्षमें तथा पूर्वीय देशोंमें उन्होंने दस वर्ष व्यतीत किये थे। अमरीका भी अनेक बार गये थे।

उनका विस्तृत जीवनचरित The Interpreter Geddes (By Amelia Defries) लन्दनसे प्रकाशित हुआ था। उसकी भूमिका कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने लिखी थी। उनका एक अत्युत्तम स्केच ए० जी० गार्डिनर Pillars of Society नामक पुस्तकमें दिया

हैं। नवम्बर सन् १९३६के 'माडर्न रिव्यू'में उनके सुपुत्र आर्थर गीडीजका लेख भी पठनीय है। साथके रेखा-चित्रका आधार यही तीन चीजें हैं।]

घर बैठे तीर्थराजका आगमन। इन्दौरका हिन्दी साहित्य-सम्मेलन। महात्मा गाधीजी तथा प्रोफेसर गीडीजके सयुक्त दर्शन। यह शुभ घटना सन् १९१८की है। सम्मेलनके साथ पत्रो तथा पुस्तकोकी एक प्रदर्शिनी भी हुई थी और साहित्य-विभागके मन्त्री होनेके नाते उसका प्रबन्ध हमारे हाथोमे ही था। जिस दिन प्रदर्शिनीका उद्घाटन हुआ था उसी दिन उस भवनमें हमने दो ऋषियोके—भविष्यके दो निर्माताओके—एक साथ ही दर्शन किये। प्रोफेसर गीडीज एक विस्तृत प्लेटफार्मपर टँगे हुए नकशोको बडे उत्साह-पूर्वक महात्माजीको दिखला रहे थे। वे चित्र सम्भवत इन्दौरके नव-निर्माणके थे। उन दोनो द्रष्टाओके उस स्मरणीय मिलनका दृश्य अब भी हमारी आँखोके सामने है।

महात्मा गाधीजी तथा प्रोफेसर गीडीज दोनो नामोको एक साथ देखकर भले ही किसीको आश्चर्य हो, पर बात वास्तवमे यह है कि भावी ससारके निर्माणमे इन दोनो महापुरुषोका उल्लेखयोग्य भाग होगा। यदि निकटसे देखा जाय तो प्रोफेसर गीडीज भी सच्चे महात्मा थे और यदि कभी यह जगत रहने-लायक बनेगा, कभी इस रेगिस्तानमे उपवन लगेंगे, स्वार्थमय वालूकी जगह आदर्शवादिताकी हरियाली दीख पडेगी तो इस परिवर्त्तनके लिए हम प्रोफेसर गीडीजके उतने ही ऋणी होगें जितने अन्य किसी महापुरुषके। यदि हम कही शिक्षा-विभागके अधिकारी होते तो उच्च कक्षाओमे ससारके सर्वश्रेष्ठ महापुरुषोके जीवनचरित पाठ्य पुस्तकोके रूपमे अवश्य रखते। जिन महापुरुषोके द्वारा भावी ससारकी रचना होगी उन स्वप्नदर्शी तथा व्यवहारकुशल व्यक्तियोके वृत्तान्त पढानेके वजाय हम लोग अपने विद्यार्थियोको बिलकुल निरर्थक और ऊलजलूल किताबे पढाकर उनका और अपना वक्त वर्बाद कर रहे हैं। हमारे विश्व-विद्यालयोकी ऊसर भूमिमे करील-रूपी प्रोफेसर दृष्टिगोचर

होते हैं, जिनका व्यक्तित्व टेटीकी तरह टुटिहर (क्षुद्र) और जिनका ज्ञान बालूकी तरह शुष्क होता है। हमारे विश्वविद्यालयोंने एक नवीन जातिका निर्माण कर दिया है, जो साधारण जनता तथा उसके कार्य-कर्त्ताओंको अछूत समझकर अलग ही अपना फ़ालतू जीवन व्यतीत करती है। प्रोफेसर गीडीज़ उस प्रकारके प्रोफेसर नहीं थे। वास्तवमें उनका दृष्टिकोण प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालयोंके कुलपतियोंकी तरह था और उनका जीवन भी वैसा ही निस्स्वार्थ था। योग्य-से-योग्य शिष्योंके निर्माणमें ही वे अपना गौरव मानते थे और इस प्रकार आधुनिक युगमें आचार्य-शिष्य-परम्पराको उन्होंने हमारी आँखोंके सामने उपस्थित कर दिया था। ज्ञान-विज्ञानकी कितनी ही शाखाओंके वे विशेषज्ञ थे और आज उन शाखाओंके आचार्योंमें जिन लोगोंकी गणना होती है वे या तो गुरुवर गीडीज़के शिष्य रह चुके हैं या उनके विचारोंसे पूर्णरूपसे प्रभावित। वनस्पति शास्त्रके वे माने-हुए आचार्य थे, नगर-निर्माण-कलाके प्रथम प्रवर्तक, गार्डन सिटीज़ (उद्यान नगर)की कल्पना उन्हींके उर्वर मस्तिष्क द्वारा प्रसूत हुई थी, जनपदीय भूगोलकी शिक्षाका प्रारम्भ उन्हींके द्वारा हुआ था, जीव-विज्ञान, प्रजनन-शास्त्र और सैक्स (यौन-शास्त्र) आदि विषयोंपर उनके ग्रन्थ महत्वपूर्ण माने जाते हैं। समाज-शास्त्रके तो वे विश्व-विख्यात आचार्य थे ही।

सबसे अधिक उल्लेखनीय बात आचार्य गीडीज़के विषयमें यह थी कि वे शुष्क ज्ञानके घोर विरोधी थे। सञ्चित ज्ञानको जनताकी सेवामें अर्पित करना, यही उनके जीवनका उद्देश्य था। घूरेपर फूल उगा देना, दलदलको उपवनके रूपमें परिवर्तित कर देना और गन्दी गलियोंको स्वस्थ वीथियोंमें बदल देना, उस व्यवहार-कुशल स्वप्नदर्शी वैज्ञानिकके बाएँ हाथका खेल था!

प्रोफेसर गीडीज़का जन्म सन् १८५३में स्काटलैण्डमें हुआ था। उनके पिता रायल हाइलैन्डर सेनामें कप्तान थे और वे अपनी सच्चाई,

उदारता, भलमनसाहत तथा दयालु स्वभावके लिए चारो ओर विख्यात थे। उन्होने खासी अच्छी उम्र पाई थी। परिश्रम-शीलता प्रोफेसर गीडीजको अपने पिताजीसे पैतृक सम्पत्तिके रूपमे मिली थी। सत्तर-बहत्तर वर्षकी उम्रमें वे जितना काम कर सकते थे उतना बीस-पच्चीस वर्षके युवकोके लिए भी कठिन है। एक बार आप कही भाषण दे चुके थे कि श्रोताओमेंसे किसीने मिस डेफ़ीस से, जिन्होने आचार्यकी जीवनी लिखी है, कहा

"या तो प्रोफेसर गीडीजका ज्ञान बिल्कुल उथला है या फिर उन्होने रटनेकी शक्तिशाली मशीनका आविष्कार कर लिया है। कोई आदमी इतने भिन्न-भिन्न विषयोपर इतना अधिक कैसे जान सकता है ?"

जब यह बात प्रोफेसर साहबसे कही गई तो वे बोले, "तुम समझती हो कि मै कोई प्रतिभाशाली महापुरुष हूँ। जनाब, बिल्कुल नही। बात असली यह है कि मै अधिकाश आदमियोसे अधिक मेहनत कर सकता हूँ और शरीरसे हट्टा-कट्टा तन्दुरुस्त हूँ। गोवशमे जैसे बूढा किन्तु सबल साँड हुआ करता है वैसे ही मैं भी एक शक्तिशाली वशका वृषभ हूँ। हाँ, और कुछ नही।"

सर चिमनलाल सीतलवाडने, जो उन दिनो बम्बई विश्वविद्यालयके वाइसचान्सलर थे जब गीडीज साहब बम्बईमे समाज-शास्त्रके अध्यापक थे, उनके विषयमे लिखा था

"उनकी पोशाक, रग-ढग और आत्म-विस्मृतिको देखकर कोई इस बातका अन्दाज भी नही कर सकता कि प्रोफेसर गीडीज कितने गम्भीर विद्वान् और कितने काबिल आदमी है। लेकिन यदि आपको उनको निकटसे जाननेका सौभाग्य प्राप्त हो तो आप यह देखकर आश्चर्य करेंगे कि इस छोटेसे मस्तिष्कमें इतना विशाल और इतने भिन्न-भिन्न विषयोका ज्ञान कहाँसे समा गया। अन्यत्र ऐसी गम्भीर विद्वता दुर्लभ ही समझिये।

साथ ही उनमे सहृदयता और हास्यरसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति भी अद्‌भुत मात्रामे विद्यमान है और उनकी परिश्रमशीलताका क्या कहना ! उसे देखकर ताज्जुब होता है। मैंने बम्बई विश्व-विद्यालयमे प्रात कालसे रात तक काम करते हुए उन्हे देखा है और मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ है कि इस उम्रपर वे इतना काम कर कैसे सकते है।"

आचार्य गीडीज मे शिष्य-भावना खूब विद्यमान थी और वे अपनी युवावस्थामे यूरोपके भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयोमे ज्ञान-सचय करते हुए घूमते फिरे थे। उन्होंने अपना यह नियम वना लिया था कि वर्षभरमे वे तीन महीनेंसे अधिक अध्यापन-कार्य नही करेंगे। शेष नौ महीने वे इधर-से-उधर घूमनेमे, स्थान-स्थानसे ज्ञान तथा अनुभवका सचय करनेमे, बिताते थे। यदि आजसे सैकडो वर्ष पहले उनका जन्म भारतमे हुआ होता तो वे नालन्दा और तक्षशिलाकी शिक्षा समाप्त कर आचार्य कुमारजीवके साथ चीनकी पैदल यात्रा करते। अर्थ-सचयकी ओर उनका ध्यान बिल्कुल ही नही था और यह बडे सौभाग्यकी बात थी कि उन्हे बडी सन्तोषशील पत्नी मिली थी, जिन्होने अपने सन्यासी वृत्तिवाले पतिदेवकी सनकोपर कभी उद्विग्नता प्रकट नही की। यही नही, बल्कि पतिदेवके शिष्योको पुत्र-पुत्रीवत् मानकर, उनकी भी सहायता करती रही।

आज हमारे विश्वविद्यालय जैसे निर्जीव बने हुए है उन्हे देखकर प्रोफेसर गीडीजको हार्दिक वेदना होती थी। वे चाहते थे कि ये यूनीवर्सिटियाँ जिस जनपद या क्षेत्रमें विद्यमान हो वहाँके जीवनमे उनका पूरा-पूरा प्रवेश हो, बल्कि यो कहिए कि उक्त जनपद या क्षेत्रकी वे जान वन जावे, उनकी आत्माका रूप धारण करले, विश्वविद्यालयोके साधारण जनताके सम्पर्कमें आनेका जो आन्दोलन हुआ है उसके सूत्रपात करनेवालोमे आचार्य गीडीज अग्रगन्य थे।

जनपदीय जाँच तथा जनपदीय सगठनकी भावना उन्हीके मस्तिष्ककी

उपज थी, वही उनके पिता थे। उनके कार्यक्षेत्रका केन्द्र यदि किसी क्षुद्र नगरका मुहल्ला या गली थी तो उसकी परिधिमे सम्पूर्ण ससार आ जाता था। अपना घर, गली, नगर, जनपद प्रान्त तथा देश और फिर ससार और इन सबकी सेवाओका सामजस्यपूर्ण समन्वय, यही आचार्य गीडीजके जीवनकी फिलासफी थी, यही उनका दर्शनशास्त्र था।

प्रोफेसर गीडीजके शिक्षा-सम्बन्धी विचार बिल्कुल क्रान्तिकारी थे। शिक्षाका अर्थ वे बतलाते थे आसपासकी स्थितिके प्रति जागरुकता। अपने लडकोको भी उन्होने इसी पद्धतिसे पढ़ाया था। हृदय, मस्तिष्क और हाथोकी शिक्षाको ही वे वास्तविक शिक्षा मानते थे। उनकी शिक्षापद्धतिका मूल सूत्र था "Look and see, find out and do" "देखो-भालो, पता लगाओ और काम करो।"

यदि उनके उपदेशोका सार एक वाक्यमें लिखा जा सके तो वह यह होगा

"Do something. Don't write about it Be a citizen first, a scholar, if time permits."

अर्थात्—"कुछ काम करो। उसके बारेमें लिखो मत। पहले नागरिक बनो, उसके बाद यदि वक्त बचे तो विद्वान् बन सकते हो।"

उनके लडके स्वर्गीय एलेस डेयर गीडीजके विषयमे फौजी अधिकारियोने लिखा था—"तमाम ब्रिटिश फौजमे उसकी बराबरीका अन्वेषक (Observer) कोई नही था।" एलेस डेयर युद्धमे मारे गये थे। उन्होने ग्रामीण विद्यालयमें, पब्लिक स्कूलमें और विश्वविद्यालयमे शिक्षा पाई थी, कलाके विद्यार्थी रहे थे, उद्यानमे मालीका काम उन्होने सीखा था, बाजारमे साग-तरकारी और फल-फलैरी उन्होने बेची थी, गाय-बैल चराये थे, हल हाँके थे, जहाजपर रसोई बनानेका काम किया था, आर्कटिक-की यात्रामे नकशे बनानेका काम किया था। वे अच्छे ऐक्टर थे और नाच-गा भी सकते थे। जहाजकी नौकरी करते हुए पैसे बचाकर उन्होने

एक साइकिल खरीदी थी और उसपर सवार होकर इगलैण्ड, नीदरलैण्ड तथा फ्रासकी यात्रा की थी। फ्रेंच तथा जर्मन तो वे धाराप्रवाह बोल सकते थे। फ्रेमिग भाषाके अच्छे जानकार थे और गैलिकमे भी आपकी गति थी। प्रोफेसर गीडीजके मतानुसार युवकोको किस प्रकार शिक्षा दी जानी चाहिए, इसके उदाहरण आपके उक्त सुपुत्र थे।

प्रोफेसर गीडीज ध्यान और चिन्तनको बहुत महत्व देते थे। अगर रातको दो-तीन या चार बजे नीद खुल जाती तो सवेरे सात या साढे सात बजे तक, जबकि कार्य प्रारम्भ करते थे, वे चिन्तन किया करते थे। प्रात कालके ब्राह्म मुहूर्तोको वे कभी नष्ट नही होने देते थे। जिस प्रकार कोई वीणा बजानेवाला प्रात कालमे अपना अभ्यास करता है उसी प्रकार वे भी मस्तिष्कका यह अभ्यास किया करते थे। उनका यह दृढ विश्वास था कि ठोस काम करनेके लिए गम्भीर चिन्तनकी अत्यन्त आवश्यकता है और वह एकान्तमे ही किया जा सकता है। वे कीर्तिलोलुप बिल्कुल नही थे और विज्ञापनकी दुनियासे दूर भागनेवालोमे से थे। एक कार्यके समाप्त होनेके बाद दूसरेको प्रारम्भ करनेके लिए वे उत्सुक रहते थे। उन्होने एक बार कहा था

"जिस प्रकार बच्चोको एक खेल खेलनेके बाद दूसरा खेल खेलनेमे मजा आता है उसी प्रकार हम लोगोकी रुचि नवीन अनुसन्धान (नवीन कार्य)के प्रति रहती है। एकान्त कोठरीका, तपोवनका, स्वाध्याय-मन्दिर और प्रयोगशालाका, यही तो उपयोग है। लन्दनवाले राजनीति, पूंजी, मजदूर इत्यादिके विषयमे बहुत कुछ बकवाद तो किया करते है, लेकिन पार्लमेन्टकी तमाम कार्रवाई प्राय निरर्थक और निष्फल होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि पार्लमिन्टके मेम्बरोके पास कोई एकान्त स्थल या स्वाध्यायभवन नही है, जहाँ शान्तिपूर्वक बैठकर वे कुछ चिन्तन कर सके, कोई नवीन विचार जनताके सम्मुख ला सके। लेकिन अब वक्त आ पहुँचा है जब पुराने जमानेके मठोकी तरहके मठ समाजविज्ञानके साधकोके

लिए बनाने होंगे जहाँपर बैठकर वे कुछ साधना, कुछ तपस्या कर सकें। सामाजिक प्रश्नोको हल करनेके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।"

इस प्रकार एकान्तमे बैठकर जो विचार वे करते थे उनको वे लिख लेते थे और उनके विचारोके ढेर-के-ढेर इकट्ठे हो गये थे, जिनसे बीसियों सन्दूकचे भरे पडे थे। विश्वविद्यालयोके विषयमे वे एक पुस्तक लिखना चाहते थे और उसके बारेमें चालीस वर्षसे मसाला इकट्ठा कर रहे थे। विचारोको ही वे अपनी सबसे बडी पूंजी मानते थे, पर उनको पेटेन्ट करानेके (उनपर अपना सर्वाधिकार रक्षित करनेके) वे सर्वथा विरोधी थे। विचारोको बेचना वे अपनी सन्तान बेचनेके समान ही पापमय कर्म समझते थे। उनका यह कहना था कि यदि विचारोको विधिवत् विषयानुसार छाँटकर रक्खा जाय, पत्रोके कटिंग काट-काटकर उन्हे ढगके साथ चिपका दिया जाय और यह सब मसाला किसी एक स्थानपर सुरक्षित रहे तो लेखको, शिक्षको, व्याख्यान दाताओके लिए वह सग्रहालय बडा उपयोगी सिद्ध होगा। क्या ही अच्छा हो यदि हिन्दी जगत्की कोई सस्था प्रोफेसर गीडीजके इस विचारको कार्यरूपमे परिणत कर दे।

प्रोफेसर गीडीजके बातचीत करनेका ढग अद्भुत था। मेंडककी तरह एक विषयसे दूसरेपर कूदना उनके लिए बडा आसान था, पर इससे उनके श्रोता लोग बडे चक्करमे पड जाते थे। यद्यपि वे कोई अप्रासगिक बात नही करते थे और जिन विषयोपर उनका प्रवचन होता था वे मूलमे परस्पर सम्बद्ध भी होते थे, पर अल्पज्ञ श्रोताओके लिए यह दिमागी कसरत थकानेवाली हो जाती थी। दूसरोको स्फूर्ति और प्रोत्साहन देना तो मानो उन्हीके हिस्सेमे आया था। एक लेखकने लिखा था, "गीडीजके कार्यका प्रभाव सबसे अधिक इस बातमे है कि उन्होने न जाने कितने व्यक्तियोको कार्य करनेके लिए प्रोत्साहित किया है। उनसे पहले पहल बातचीत करनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो आकाशसे वज्रपात हुआ। उनका सम्भाषण पहले तो धक्का देता है और फिर उनके धाराप्रवाह विचारोमे इतनी तेजी

और ताजगी होती है कि सुननेवाला बह जाता है। आपके विचारोको—आपके सिद्धान्तोको—वे आपकी आँखोके सामने ही खण्ड-खण्ड कर डालेंगे और फिर उनपर अपने विचारोका खोल चढाकर इस ढगसे उपस्थित करेंगे कि वे बिल्कुल नवीन सिद्धान्त प्रतीत होने लगे। अपने विचारोकी इस कायापलटसे स्वय आपको आश्चर्य हुए विना न रहेगा।"

उनकी जीवनचरित लेखिकाने उनके कई प्रवचनोका साराश उद्धृत किया है, जिससे उनकी अद्भुत सम्भाषण-शक्तिका अनुमान हो सकता है।

एक बार बातचीत करते हुए उन्होने कहा था

"हमारी वर्त्तमान शिक्षा-पद्धति बडी खर्चीली है। यह पद्धति विद्यार्थियोकी स्वतन्त्र भावनाओको कुचल डालती है, विचारोको दबोच देती है और उसके परिणाम होते हैं प्रमाद, रोग तथा मृत्यु। लोग खेती करते हैं। क्या ही अच्छा हो यदि हम विचारोकी खेती करे, विचारोको मौका दें। छोटे-छोटे बच्चोका मस्तिष्क विचारोसे परिपूर्ण रहता है। उगनेका यदि हम कुशल मालीकी तरह यथोचित काट-छाँट करके उनको अवाछनीय दिशामे जानेसे रोके, पर साथ ही स्वाधीन विचार-प्रवृतिको बराबर प्रोत्साहन देते रहे तो शिक्षा-जगत्मे कैसी क्रान्ति हो जाय।"

यह सुनकर लेखिकाने कहा, "सुना है कि अब्राहम लिंकनको कुछ शिक्षा नही मिली थी।"

इसपर प्रोफेसर गीडीज बोले, "यह बिल्कुल बेतुकी बात है। लिंकनने जीवनके विद्यालयमे शिक्षा प्राप्त की थी। कार्यके स्कूलमे, स्थानके मदरसेमे, सर्वसाधारण-रूपी पाठशालामें लिंकनने देखा था कि स्थानका प्रभाव कार्यपर पडता है, सर्वसाधारणपर कार्य तथा स्थान दोनोका प्रभाव पडता है और सर्वसाधारणके द्वारा स्थान तथा कार्य दोनो ही प्रभावित होते हैं। सभवत लिंकनने कमलोको रामभरोसे पुष्पित होते देखा था। कौन कहता है कि लिंकनने शिक्षा नही प्राप्त की थी। गलत बात है। कार्य करते-करते लिंकनने बहुत कुछ सीखा था। अपने कर्तव्यका

उन्होंने विधिवत् पालन किया था, अपना फर्ज बडी खूबीसे निवाहा था। जानती हो, सफलता किसे कहते हैं! अपने प्रिय कार्यको यथासम्भव अनुकूल परिस्थितिमें करना और इस प्रकार अपने जीवनको काव्य बना लेना।"

प्रोफेसर गीडीज कट्टर आदमी नहीं थे और न वे अपने विचारोको दूसरोपर लादना चाहते थे। उन्होने एक बार कहा था

"अपने विचारोको दूसरोपर जबरदस्ती मत लादो। स्थानीय परिस्थितियो और स्थानीय विचारोका ख्याल रखो। सब लोगोकी आत्माओको अपने बनाये हुए बक्सो या सन्दूकोमे बन्द मत करो। जहाँ तुम सबसे अधिक प्रभावशाली ढगपर काम कर सको, वहीं करो। कार्यकर्ताओको मेरी यही सलाह है।"

निस्सन्देह भिन्न-भिन्न स्थानोमें अपनी रुचिका कार्य करते हुए उन्होने अपने जीवनको काव्य बना लिया था। कभी वे स्काटलैण्डमे एडिनबराके Outlook tower का निर्माण करते थे, तो कभी पैलिस्टाइनमे वहाँके विश्वविद्यालयका ढाँचा तैयार करते थे, कभी बम्बई-विश्वविद्यालयमे समाज-शास्त्रका अध्यापन करते थे तो कभी इन्दौरके नव-निर्माणपर ग्रन्थ तैयार करते थे! आज अमरीकामे भाषण दे रहे हैं तो कल फ्रासमें एक अन्तर्राष्ट्रीय विद्यालयकी नीव डाल रहे है। कभी शान्तिनिकेतनके नक्शोमे लगे हुए है तो कभी उस्मानिया यूनीवर्सिटीके निर्माण-चित्रमें व्यस्त है। आज किसी वैज्ञानिकके साथ कोई ग्रन्थ लिख रहे है तो कल अपने किसी शिष्यको किसी महत्वपूर्ण ग्रन्थके लिए प्रेरणा दे रहे है। एक जगह जमकर वे नही बैठते थे। जहाँ-जहाँ उत्तम विचार मिलते थे वहाँ-वहाँसे वे उन्हे निस्सकोच ग्रहण कर लेते थे। वे विचारोकी चोरीको चोरी नही मानते थे। मजाक-मजाकमे वे कहा करते थे, "मेरा पेशा चोरी है। अपने साथियोके विचारोको मै उडा लिया करता हूँ। कभी इस विश्वविद्यालयसे कोई विचार लेता हूँ तो कभी उससे कोई दूसरा।

दिल्लगी यह है कि मेरे साथी-सगियोको इस चोरीका पता भी नही लग पाता। विचारोपर किसीकी वपौती थोडे ही है। उनपर तो सबका अधिकार है। असली साम्यवाद यही है।"

यद्यपि वे जनपदीय सगठनके प्रवर्तक थे तथापि उनका दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक था। आचार्य जगदीशचन्द्र वसुका उन्होने जीवन-चरित लिखा था। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरने उनके जीवनचरितकी भूमिका लिखते हुए लिखा था.

"जब भारतवर्षमे मेरा परिचय प्रोफेसर पैट्रिक गीडीजसे हुआ तो मुझे सबसे अधिक आकर्षित उनकी वैज्ञानिक सफलताओने नही किया, बल्कि उनकी व्यक्तित्वकी सम्पूर्णताने, क्योकि उनका व्यक्तित्व उनके विज्ञानसे कही ऊँचा था। जिस किसी विषयका उन्होने अध्ययन किया वह उनकी मानवताके साथ सजीव रूपसे घुल-मिल गया। प्रोफेसर गीडीज़मे वैज्ञानिकोकी निश्चयात्मक बुद्धि है और ऋषियो या सिद्धो जैसी दूरदर्शिता और साथ ही कलाकारोकी वह शक्ति, जिससे वे अपने विचारोको साक्षात्-रूप भी दे सकते है। वे मानव-समाजके प्रेमी है और उसीसे उन्हे मानव सत्यको पहचाननेकी अन्तर्दृष्टि मिली है और साथ ही वह कल्पना-शक्ति भी प्राप्त हुई है जिसके द्वारा वे जीवनके कृत्रिम रूपोको ही नही, उसके असीम रहस्योको भी वास्तविक रूपमे देख सकते है।"

प्रोफेसर गीडीज इस बातको भलीभाँति समझ गये थे कि ससारका प्रत्येक प्राणी अपनी विशेषता रखता है, अपना व्यक्तित्व रखता है। वे सबको यथोचित अवसर और सुविधाएँ प्रदान करनेके पक्षमे थे। प्रत्येक जनपद उनके लिए अलग स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखता था। ज्ञान और विज्ञानकी समस्त शाखाओको एक ही स्थानमे केन्द्रित करनेके वे प्रवल विरोधी थे। यदि वे भारतवर्षमे शिक्षा-विभागके अधिकारी बना दिये जाते तो न जाने कतने प्रकारके विश्वविद्यालय वे स्थापित कर देते। रूसी लेखक चेखवने लिखा था, "यदि प्रत्येक मनुष्य उस भूमिखडको, ज़मीनके

उस टुकडेको, जो उसे मिला हुआ है सुन्दर बना दे तो दुनिया कितनी मनोहर बन जाय।" प्रोफेसर गीडीजके जीवनका यही मूल-मन्त्र था।

केन्द्रीय-शासन तथा स्वेच्छाचारके मुकाबलेमे वे अपना जनपदीय सगठनका सिद्धान्त प्रतिष्ठित करते थे और राजनैतिक, शिक्षा-सम्बन्धी तथा सास्कृतिक झगडोका हल वे जनपदीय सगठनमे ही देखते थे।

यहाँ उनके सिद्धान्तोकी विवेचना करनेके लिए स्थान नही है, पर इतना तो अवश्य निश्चित ही है कि भावी ससारके निर्माणमे उनका भी गौरवपूर्ण हिस्सा रहेगा।

प्रयागमें गगा-जमुनाके सगमपर हमने स्नान किये हैं और ये पक्तियाँ लिखी जा रही है जमडार नदीके तटपर। जमडार मिलती है जामनेरसे, जामनेरका बेतवासे मिलन हुआ है और बेतवा जमनाकी सहायक नदी है। इस प्रकार सगममे जमडारका भी जल विद्यमान है। जिन विभिन्न विचार-धाराओके मिलनसे मानव-समाजका सगम होगा वे न सिर्फ मार्क्स-की होगी, न केवल महात्माजीकी। वे असख्य मस्तिष्कोसे उद्भूत होगी और उस सगममें स्काटलैण्डके उस तपस्वीकी प्रबल धारा भी होगी जो उस दिन इन्दौरमें महात्मा गाधीको नगर-निर्माणके नकशे दिखला रहा था। दो स्वप्न-दर्शियोका वह मिलन—उनके वे सयुक्त दर्शन! खेद है कि तब हमारे पास केमरा नही था, पर हर्ष है कि नयनोमे वह छवि अब भी विद्यमान है।

: १६ :

फक्कड़ थोरो

स्वाध्यायके विषयमे हमने एक नियम बना लिया है, वह यह कि केवल उन्ही ग्रन्थकारोकी रचनाऐ हम बार-बार पढते है, जो हमे अत्यन्त प्रिय है और उनकी सख्यामे वृद्धि हम यथासम्भव कम ही करते है। हमारे प्रिय ग्रन्थकारोमे तीन रूसी हैं—(१) प्रिंस क्रोपाटकिन, (२) तुर्गनेव, (३) टाल्सटाय, दो अमेरिकन—(४) एमर्सन, (५) थोरो; दो अगरेज—(६) एडवर्ड कार्पेन्टर, (७) ए० जी० गार्डिनर; और एक फरासीसी—(८) रोमॉ रोलॉ। इनमे भी न० १ और न० ४ हमे सबसे अधिक प्रिय हैं और यदि हमे किसी एकान्त स्थानमे केवल इन दो ग्रन्थकारोकी पुस्तकोके साथ रहनेका सौभाग्य प्राप्त हो तो हमें वह एकान्त अखरेगा नही। ए० जी० गार्डिनर हमे इसलिए पसन्द है कि वे छोटे-छोटे निबन्ध तथा स्केच लिखनेमे कुशल है। टाल्सटाय और रोमाँ रोलाँसे हमारा प्रेम नवीन ही है। पर यदि हमसे कोई पूछे कि यात्रा करनेके लिए अपना एक ही साथी चुन लो तो हम थोरोको ही चुनेंगे। उनके ग्रन्थ 'वाल्डेन'को हमने अनेक बार पढा है और उससे हमारे मनमे यह धारणा दृढतापूर्वक बैठ गई कि जितने अशोमें भारतीयता थोरोमे पाई जाती है, उतने अशोमे शायद ही किसी अन्य पाश्चात्य लेखकमे पाई जाती हो। वे केवल मन-वचनसे ही नही, बल्कि कर्मसे भी भारतीय थे। अपरिग्रही तो अव्वल नम्बरके थे। एक बार एक महिलाने उन्हे एक चटाई भेट की। आपने उससे कहा, "श्रीमतीजी, मेरे घरमे इतनी जगह नही है कि इस चटाईको रख सकूं और न मेरे पास इतना वक्त ही

हूँ कि इसे झाडकर साफ कर सकूँ।" और चटाई वापस कर दी। इस घटनाका ज़िक्र करते हुए अपनी पुस्तकमे आप लिखते है—

"It is best to avoid the beginnings of evil"—"बुराईकी जड प्रारम्भमे ही काट देनी चाहिए।"

आपकी डेस्कके ऊपर सफेद पत्थरके तीन टुकडे थे। आपने देखा कि उनके पोछनेमे समय लगता है, इसलिए आपने यह कहकर उन्हे खिडकीके बाहर फेक दिया कि अपने दिमागको झाड-पोछकर साफ करनेका काम-ही हमे कौन थोडा है, जो इस इल्लतको पाले!

थोरोका यह फक्कडपन हमे बहुत पसन्द है और उनके ग्रन्थोको पढते हुए ऐसे फक्कडपनके कितने ही दृष्टान्त हमे मिलते है। अपने लेखोमे उन्होने ऐसी-ऐसी चुटकियाँ ली है कि उन्हे पढकर तबीयत फडक उठती है।

थोरो कभी डिनर-पार्टी या भोजोमे शामिल नही होते थे। वे कहते थे—"They make their pride in making their dinner cost much, I make my pride in making my dinner cost little." अर्थात्—"वे इस बातमें अभिमान करते है कि उनके भोजनमे कितना अधिक व्यय होता है, और मुझे इस बातका घमड है कि मेरे भोजनमे कितना कम खर्च होता है।" सिगरेट आपने जिन्दगीभर नही पी। एक जगह लिखा है—"मैंने कमलके डठल सुलगाकर पिये थे और सो भी तब, जब मै बालक था। उनसे बदतर और कोई भी चीज मैंने कभी नही पी।"

अन्यत्र आपने लिखा है—"मेरा विश्वास है कि बुद्धिमान आदमियोके लिए एक ही पेय पदार्थ सर्वोत्तम है, यानी शुद्ध जल। शराब उतनी बढिया चीज़ नही है जितना पानी, और गरम काफी पीकर प्रभातकी अथवा गरम चाय पीकर सन्ध्याकी आशाओको चकनाचूर करनेके विषयमे कुछ भी कहनेकी आवश्यकता नही। जब कभी मै काफी या चायके प्रलोभनमें फँस गया हूँ, उस समय वस्तुत मेरा पतन ही हुआ है।"

थोरो मांस खानेके भी विरुद्ध थे। उन्होंने लिखा है

"I believe that every man who has ever been earnest to preserve his higher or poetic faculties in the best condition has been particularly inclined to abstain from animal food, and from much food of any kind."

अर्थात्—"मेरा यह विश्वास है, जो व्यक्ति अपने उच्च विचारोंको अथवा काव्यप्रेरणाको सर्वोत्तम दशामें रखना चाहता है, उसके हृदयमें मांस-भक्षण छोड़नेकी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, बल्कि उसे अपने हर प्रकारके भोजनमें कमी करनी पड़ती है।"

ब्रह्मचर्यके विषयमें थोरोके विचार पठनीय हैं। उन्होंने अपने 'हायर लाज' (Higher Laws) नामक निबन्धमें लिखा है :

"उत्पादनशक्ति, जबकि हम दुश्चरित्र होते हैं, हमको कमजोर और गन्दा बना देती है, पर वही उत्पादन-शक्ति, जबकि हम ब्रह्मचारी होते हैं, हमें ताकत देती है और स्फूर्ति प्रदान करती है। ब्रह्मचर्यका अर्थ है मनुष्यका पुष्पित होना, और जिसे हम प्रतिभा, वीरता, या पवित्रता इत्यादिके नामसे पुकारते हैं, वह ब्रह्मचर्य रूपी पुष्पके फलमात्र हैं, जो कि पुष्पके बाद आते हैं। जब पवित्रताका स्रोत खुला होता है, तब मनुष्य तुरन्त ईश्वरकी ओर प्रभावित होने लगता है। पवित्रता हमें प्रेरणा एवं स्फूर्ति देती है। वही धन्य है, जिसको नित्यप्रति यह अनुभव होता जाय कि उसमें पशुता रोज़-ब-रोज़ मर रही है और देवत्व स्थापित होता जा रहा है।"

"ब्रह्मचर्य अथवा सतीत्व है क्या चीज़ ? मनुष्यको कैसे पता लगे कि वह ब्रह्मचारी है ? उसे इसका कुछ ज्ञान ही न होगा। हमने भी इस गुणका नाम तो सुना है, पर उसे ठीक-ठीक व्यक्त नहीं कर सकते। हाँ, एक अफवाह हमने सुनी है, और उसे हम यहाँ लिखे देते हैं। परिश्रम करनेसे बुद्धिमत्ता आती है और पवित्रता भी और आलस्यसे अज्ञान

और विषयासक्ति । विद्यार्थीकी विषय-परायणताका मूल है उसके मस्तिष्कके आलस्यमें। गन्दा आदमी हमेशा आलसी ही हुआ करता है—जो चूल्हेके नजदीक आलससे तापा करता है, जो सूर्योदय तक सोता रहता है और जो बिना थके सोता है। यदि तुम गन्दगीसे और दुनिया भरके पापोसे बचना चाहते हो तो खूब दृढता-पूर्वक काम करो, चाहे तुम्हारा काम अस्तबल साफ करना ही क्यों न हो। प्रकृतिपर विजय प्राप्त करना कठिन है, पर उसपर विजय प्राप्त करनी ही चाहिए।"

सर्वथा निर्द्वन्द रहना ही थोरोके जीवनका उद्देश्य था '

"I would say to my fellows, once for all, as long as possible live free and uncommitted. It makes but little difference whether you are committed to a farm or a country jail."

अर्थात्—"अपने सहयोगियोसे मैं एक बात निश्चयपूर्वक कह देना चाहता हूँ, वह यह कि जहाँ तक सम्भव हो, बिल्कुल स्वतन्त्र और बन्धनमुक्त रहो। किसी खेतपर बँध जाने अथवा किसी जेलके बन्धनमें पड जानेमें कोई अन्तर नही।"

एक जगह आप लिखते है—"पहले मुझे इस बातकी फिक्र रहती थी कि ईमानदारीके साथ अपनी जीविका निर्वाह करते हुए भी इतना समय कैसे बचा पाऊँ, जिससे अपने प्रिय कार्योंको कर सकूँ, पर उन दिनो मैं एक लम्बा सन्दूक रेलकी सडकके नजदीक रखा हुआ देखा करता था, जिसमे मजदूर लोग रातको अपने हथियार रख करके ताला बन्द कर दिया करते थे। उससे मेरे मनमें एक खयाल आया कि यदि किसी आदमीको आर्थिक सकट हो तो उसे तीन डालरमे इसी तरहका एक सन्दूक खरीद लेना चाहिए और उसमें हवाके आने-जानेके लिए छेद कर लेने चाहिए। पानी बरसनेपर वह आदमी उसमें घुसकर और भीतरसे ढक्कन देकर मजेमें अपनी रात बिता सकता है। इस प्रकार उसकी आत्मा स्वतन्त्र

रहेगी और वह स्वाधीनतापूर्वक अपने प्रिय विषयका अनुशीलन भी कर सकेगा। न किराएका झझट है और न मालिक मकानके तकाजोका। कितने ही आदमी दरअसल, इससे वडे सन्दूकोमे रहते है और किराया देते-देते मरते हैं।"

थोरोपर भारतीय ग्रन्थोका काफी प्रभाव पडा था। आप लिखते हैं ·

'In the morning I bathe my intellect in the stupendous and cosmogonal philosophy of the Bhagvat Gita, since whose composition years of the gods have elapsed, and in comparision with which over modern world and its literature seem puny and trivial; and I doubt if that philosophy is not to be referred to a previous state of existence, so remote is its sublimity from our conceptions"

अर्थात्—प्रात कालमे मैं भगवद्गीताकी महान और विश्वकी उत्पत्ति-से सम्बन्ध रखनेवाले दर्शनशास्त्रमे अपनी बुद्धि द्वारा स्नान करता हूँ। गीताको वने अनेक दैवी वर्ष व्यतीत हो गये और उसकी तुलनामे हमारा वर्तमान ससार तथा उसका साहित्य बिल्कुल क्षुद्र तथा तुच्छ प्रतीत होता है और कभी-कभी तो मुझे यह शक होने लगता है कि गीताकी फिलासफी मानव-जीवनके वर्तमान अस्तित्वसे पहलेकी है, क्योकि हमारे विचारोके धरातलसे वह इतनी ऊँची नजर आती है।"

प्रात कालका वर्णन करते हुए आप लिखते हैं—"The Vedas say, 'all intelligence awake with the morning.'" अर्थात्—"वेद कहते है कि तमाम बुद्धियाँ प्रात कालके साथ जाग्रत होती है।" फिर आप लिखते हैं—"हरिवश पुराणमे लिखा है कि पक्षियोके बिना मकान वैसा ही है, जैसे भोजन बिना मसालोका, पर मेरा मकान

ऐसा नही था, क्योकि मेरे निकट तो बहुत-सी चिडियाँ रहती थी, यद्यपि मैंने एक भी चिडियाको पकडकर पिंजडेमें बन्द नही किया था, बल्कि यो कहना उचित होगा कि मैंने चिडियोंके निकट एक पिंजडा बनाया था और उसमें मैं स्वय बन्द हो गया था।"

अपने निवास-स्थानका जिक्र करते हुए आप लिखते हैं—"वहाँ भी अपने अन्य निवास-स्थानोकी तरह मैं एक ऐसे अतिथिकी प्रतीक्षा करता था, जो कभी नही आता। विष्णुपुराणमे एक जगह लिखा है—'गृहस्थका कर्त्तव्य है कि वह सन्ध्या-समय कम-से-कम उतनी देर तक अतिथिकी प्रतीक्षा अवश्य करे, जितनी देरमें एक गाय दुही जाती है।' पर मैं तो उतने समय तक अपने अतिथिकी प्रतीक्षा करता रहता था, जितनेमे गायोके झुड-के-झुड दुहे जा सकते थे और इस प्रकार आतिथ्य-धर्मका पालन करता रहता था, पर जाडेके दिनोमें नगरसे कोई भी अतिथि मेरे निवास-स्थानपर आता ही न था।"

हितोपदेश, शकुन्तला, महाभारत तथा कबीरका जिक्र भी आपके ग्रथोमे आया है। दरअसल हिन्दू, चीनी तथा फारसी धर्म-ग्रथोमे जितना अच्छा आपका परिचय था, उतना बाइबिलसे नही और अपनी पुस्तक "A week on concord and Merrimacc rivers" मे आपने यह बात स्वीकार भी की है। मनुस्मृतिकी प्रशसामें तो आपने अपनी उपर्युक्त पुस्तकके कितने ही पृष्ठ भर दिये हैं। थोरोके ग्रथोमें सदुपदेशोके रत्न छिटके हुए पडे है। उदाहरणार्थ

"मालूम होता है कि मर्दुमशुमारी करनेवालोने बडी भूल की है। इस देशमे मर्द आदमी है कितने ? हजार वर्गमीलमे कितने मर्द होगे ? इधर-से-उधर ढुलकनेवाले सिद्धान्तहीन आदमियोकी गणना मैं मर्दोंमें नही करता।"

"जो आदमी अपने सैकडो साथियोकी अपेक्षा सत्यके अधिक निकट है, उसीका बहुमत है, क्योकि एक वोट तो उसका ज्यादा है ही!"

"यदि तुम किसी आदमीको विश्वास दिलाना चाहते हो कि वह गलत रास्ते पर है तो उसका उपाय यही है कि तुम स्वय ठीक मार्गका अनुसरण करो, पर उसे विश्वास दिलानेकी चिन्ता मत करो। आदमी जो चीज देखते है, उसीपर विश्वास करते है, उन्हे देखने दो।"

थोरोके ग्रथोमे उनकी विचित्र बुद्धिके इतने अधिक दृष्टान्त मिलते है कि उनमेसे चुनाव करना मुश्किल हो जाता है। विभिन्न विषयोपर उनके कुछ विचार यहाँ उद्धृत किये जाते है, जिनसे पाठक उनकी मनोवृत्तिका अनुमान कर सकते है :

"आदमियोका यह खयाल है कि हमारे राष्ट्रके लिए व्यापारकी जरूरत है, बर्फ बाहर भेजनेकी आवश्यकता है, तार द्वारा बातचीत करना जरूरी है और कम-से-कम तीस मील फी घटेकी चालसे तो यात्रा भी करनी चाहिए, पर इस प्रश्नपर कोई ध्यान नही देता कि हमे मनुष्योकी तरह रहना चाहिए या जगली बन्दरोकी तरह। लोग कहते है कि अगर हम स्लीपर न बनावे, रेलकी लाइन न डाले और दिनरात इसके लिए परिश्रम करनेके बजाय अपनी जिन्दगी बनानेमे ही समय व्यतीत करते रहे तो भला फिर रेलवे लाइन कौन बनावेगा? और अगर रेलवे लाइन न बनी तो फिर हम समयके भीतर स्वर्ग कैसे पहुँच सकेगे? इन भले आदमियोसे कोई यह पूछे कि अगर हम घर बैठकर अपना काम करे तो फिर रेलकी जरूरत ही किसे पडेगी? हम रेलोपर थोडे ही चढते है, रेले हमपर चढती है। कभी आपने यह भी खयाल किया है कि रेलवे लाइन-के नीचे जो Sleeper (स्लीपर, दूसरे अर्थमे सोनेवाले) बिछे हुए है, वे कौन है? उनमेसे कोई आइरिश है तो कोई अमरीकन। रेले उनपर बिछी हुई है और मृतशरीर मिट्टीसे ढके हुए है, जिनपर मजेसे गाडियाँ चलती है। वे बडे Sound Sleepers (मजबूत स्लीपर, दूसरे अर्थमे घोर निद्रामे सोनेवाले) है, इतना विश्वास मै आपको दिला सकता हूँ, और कितने ही आदमी इन रेलोसे कट जाते है। इस प्रकार कुछ

आदमियोको तो रेल-गाडियोमे चढनेका सौभाग्य प्राप्त होता है और कितनो ही पर रेलगाडी खुद चढ जाती है।"

अखवारो और अखवार पढनेवालोपर थोरोने वडे मजेकी चुटकियाँ ली है

"भोजनके वाद आदमी आध घटे भी न सोता होगा कि सोनेमे उठकर तुरन्त ही पूछता है, 'अरे भई, क्या खवर है ?' मानो सारा ससार उसकी चौकीदारी कर रहा हो और इस चिन्तामें व्यस्त हो कि ये हजरत ज्योही सोकर उठे, उन्हे खवर सुनाई जानी चाहिए। रात वीत जानेके वाद खवर उतनी ही जरूरी समझी जाती है, जितना जरूरी कलेवा। 'अरे भाई, कोई ताजी खवर सुनाओ। दुनियाके किसी हिस्सेमें किसी आदमीको कुछ हुआ हो तो उसका समाचार वतलाओ।' और काफी या चाय पीते हुए पढता है कि किसी आदमीकी आँखे अमुक नदीके किनारे किसी धूर्तने निकाल ली। इन भलेमानसको कौन वतलावे कि हजरत, आप तो अन्धकारमे रहते है और आपके दो आँखें तो क्या, आँखका एक टुकडा भी सही-सलामत नही है। रही मेरी वात, सो मेरा काम तो डाकखानेके विना वडी आसानीसे चल सकता है। मै तो समझता हूँ कि डाकखाने द्वारा जो समाचार आते है, उनमे महत्वपूर्ण वहुत ही कम होते है। यदि आलोचककी दृष्टिसे कहूँ, तो मुझे कहना पडेगा कि जिन्दगी भरमें जितनी चिट्ठियाँ मुझे मिली है, उनमे सिर्फ एक या दो ऐसी थी जिनका मूल्य उनपर लगे पोस्टजके वरावर था। एक पेनीमे जो चिट्ठी जाती है, उसमे लोग वस एक पेनीके मूल्यके विचार भेजते रहते है, और यह सारी दिल्लगी गम्भीरतापूर्वक की जाती है। मै तो निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि मैंने किसी अखवारमे कोई स्मरणीय खवर नही पढी।

"यदि हमने किसी अखवारमें पढ लिया कि कोई आदमी लूट लिया गया, मार डाला गया अथवा किसी दुर्घटनासे मर गया, या यो कहिए कि कोई मकान जल गया, कोई नाव टूट गई, जहाज फट गया, कोई गाय

रेलकी पटरीपर कट गई, कोई पागल कुत्ता मार डाला गया, तो इस प्रकार-की खबरोका एक दृष्टान्त ही काफी है। इनके वार-वार पढनेकी क्या जरूरत है ? यदि किसी चीजका मूल सिद्धान्त आपको ज्ञात हो जाय तो फिर उसके लाखो दृष्टान्त या उदाहरण लेकर आप क्या करेंगे ?"

इस सिलसिलेमे एक बात याद आती है। थोरोके पिता पेंसिल वनानेका व्यवसाय करते थे, पर थोरोने पहले अध्यापन-कार्य अपने लिए चुना, किन्तु वह उन्हे पसन्द नही आया। फिर आपने पेंसिल बनाना सीखा। प्रयोग करके आपने एक ऐसी पेंसिल वनाई जो लन्दनकी सर्वोत्तम पेंसिलोका मुकावला करती थी। वोस्टनकी प्रदर्शिनीमे उसकी बडी प्रशसा हुई और थोरोके मित्रोने समझा कि वस, अव थोरोके भाग्य खुल गये। पेंसिलोंके व्यापारसे उनके धनाढ्य वननेमे देर न लगेगी। थोरोसे जव कहा गया कि इस व्यापारको बढाओ, तो उन्होंने उत्तर दिया—"Why should I? I would not do again what I have done once." अर्थात्—"मै अब पेंसिल क्यो वनाऊँ ? जो काम मैंने एक वार कर दिखलाया, उसे वार-वार क्यो करूँ ?" पेंसिलके कामको छोड-छाडकर आपने मस्तीके साथ इधर-उधर वन-उपवनोकी सैर करनी शुरू की। प्रकृति-निरीक्षण ही उनका पेशा था।

समाचार-पत्रोके विषयमे थोरोने लिखा था—"किसी फिलासफरके लिए तमाम समाचार जो पत्रोमे छपा करते है, विल्कुल गप है और जो लोग उन्हे पढते या उनका सम्पादन करते है, तो सव चाय पी-पीकर गप्पे मारनेवाली बुड्ढी स्त्रियाँ है। कितनी ही खवरे तो ऐसी है कि कोई वुद्धिमान आदमी उन्हे साल-भर पहले—वल्कि वारह वर्ष पहले ही—लिखकर रख सकता है . इगलैण्डसे इधर कई शताब्दियोसे कोई महत्वपूर्ण खबर नही आई। पिछली खवर १६४९मे आई थी, जो वहाँकी क्रान्तिकी थी।"

परोपकारके विषयमे थोरोने लिखा था—"As for doing good, that is one of the professions which are full." अर्थात्—"परोपकार एक ऐसा पेशा है, जिसमें बहुतसे आदमी घुस पड़े है।"

थोरो कहता है—"अपने निश्चित पथपर चले चलो। इसमें किसीका भला हो जाय तो अच्छी बात है। अगर मुझे पता लग जाय कि कोई भला आदमी मेरे घरपर जान-बूझकर मेरे साथ भलाई करनेके लिए आ रहा है तो मै उससे उसी तरह भाग जाऊँगा, जैसे अफ्रीकन जगलोकी गर्म हवासे, जो मुँह, आँख, नाक, कानको धूलसे भर देती है और दम घोटकर प्राण ले लेती है। मै यह नही कहता कि दूसरेकी भलाई करो। अगर मुझे उपदेश देना पडे तो यही कहूँगा कि तुम खुद भले बनो। मान लीजिए कि सूर्यके सिरपर परोपकार करनेका खफ्त सवार हो, तो वह अपने निश्चित पथको छोडकर हर एक झोपडीपर घूमता फिरेगा, हर एक पागलको स्फूर्ति देगा, मासको पकावेगा और कोने-कोनेके अन्धकारको दूर करेगा। पर इसके बजाय वह करता क्या है? वह अपने प्रकाशको बढाता हुआ निश्चित पथपर चलता रहता है और पृथिवी-भरकी भलाई करता है, बल्कि यो कहना चाहिए कि पृथिवी उसके चारो ओर घूमती हुई उससे अपनी भलाई करा लेती है। एक पौराणिक कथा है। एक बार सूर्यके मित्र फेटनने एक दिन-भरके लिए उनका रथ उधार ले लिया था। वे हजरत रथको निश्चित पथसे इधर-उधर ले गये। नतीजा यह हुआ कि स्वर्गके निम्न-भागके कितने ही मकान जल गये, पृथिवीतल झुलस गया, झरने सूख गये और सहाराका रेगिस्तान बन गया। तब वृहस्पतिने यह दुर्घटना देख फेटनपर वज्र प्रहार किया और उन्हे सूर्यके रथसे जमीनपर ला पटका। इससे सूर्य भगवानने साल-भर मातमपुर्सी की और साल-भर तक उदय नही हुए।"

थोरोके फक्कडपनके बीसियो उदाहरण दिये जा सकते है, पर उनके

इस फक्कड़पनके पीछे एक फिलासफी थी, एक नीति थी। थोरो मानवजीवनकी महत्ताको खूब समझता था। आश्चर्य तो इस बातका है कि अमेरिका-जैसे देशमे थोरो उत्पन्न कैसे हुए, अथवा एमर्सनकी भाँति थोरोको भी "परमात्माकी एक भौगोलिक भूल" मानना पडेगा। थोरो एक स्वाधीनचेता पुरुषपुगव थे। उनका सन्देश उत्साह और आशाका सन्देश है। एक जगह आपने लिखा है

"लोग कहते है कि ब्रिटिश साम्राज्य बडी भारी और बडी प्रतिष्ठित चीज है और सयुक्त-राज्य अमरीका भी प्रथम कोटिकी शक्तियोमे माना जाता है, पर हम लोग इस बातपर विश्वास न करेंगे कि प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क-रूपी समुद्रमे विचारोकी ऐसी लहर उठा और गिरा करती है कि यदि कही वह उसे धारण कर सके तो ब्रिटिश-साम्राज्य उसके विचार-सागरमे लकडीके टुकडेकी तरह तैरता फिरेगा।"

थोरोके भक्त महात्माजीने (यह बात शायद बहुतसे लोगोको न मालूम होगी कि महात्माजी थोरोकी रचनाओको बहुत पसन्द करते है) उपर्युक्त वाक्यकी सत्यता किस प्रकार प्रमाणित की, यह बतलानेकी आवश्यकता नही।

जैसा कि हम कह चुके है, थोरो टहलनेका बडा शौकीन था। पर कौन टहल सकता है, इस विषयमे थोरोने बडे पतेकी बात लिखी है— "अगर तुम माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री-बच्चे और मित्र सबको छोडनेके लिए और फिर कभी उन्हे न देखनेके लिए तैयार हो, अगर तुमने अपना कर्ज चुका दिया है और अपनी वसीयत लिख दी है, अपने सब झगडोका फैसला कर दिया है और बिलकुल स्वतन्त्र हो, तब समझना चाहिए कि तुममे टहलनेकी योग्यता है"।

थोरोसे एक बार कुछ आदमियोने कहा—"क्या आप कृपा कर हमारे साथ टहलनेके लिए चलेगे?" थोरोने जवाब दिया—"कह

नही सकता। मेरे लिए भ्रमण सबसे अधिक महत्वपूर्ण चीज है और भ्रमणका समय मेरे पास इतना फालतू नही है कि मै दूसरोको अपने साथ ले सकूं।"

समाचारपत्रोके विषयमे आपने एक चिट्ठीमें लिखा था·

"Blessed aie they who never read a newspaper, for they shall see Nature, and through her God"—"धन्य है वे, जो कभी समाचारपत्र नही पढते, क्योंकि उन्हे प्रकृतिके दर्शन होंगे और प्रकृतिके द्वारा ईश्वरके।"

अपने एक मित्रको पत्र लिखते हुए आपने लिखा था—"मैंने कभी आपसे यह वायदा नही किया था कि मै आपको चिट्ठी लिखूंगा, इसलिए जब अब लिख रहा हूँ तो इसके मानी यह है कि मै अपने वादेसे अधिक ही कर रहा हूँ।"

थोरोका कहना था कि आजकल छ दिन काम होता है और एक दिन रविवारकी छुट्टी, यह क्रम बदल देना चाहिए। छ दिन छुट्टी होनी चाहिए और एक दिन काम।

मुर्गेके विषयमे थोरोने बडी मौलिक बात कही है। आपके शब्द सुन लीजिए—"यदि हम अपने प्रत्येक खेतपर, जो हमे अपने क्षितिजके भीतर दीख पडता है, प्रात कालके समय मुर्गेकी आवाज नही सुनते तो समझ लेना चाहिए कि हमारी फिलासफी और विचारशैली पुरानी पड गई। मुर्गेकी आवाज प्राय हमे यह याद दिलाती है कि हमारी कार्य-प्रवृत्तियोमे जग लग गया है और हमारी विचारशैली दकियानूसी हो गई है। मुर्गेकी बोलीसे जो भाव जाग्रत होते है, उन्हे हम नवीन बाइबिल कह सकते है—वर्तमान क्षणके उपयुक्त बाइबिल। मुर्गेकी बोलीसे प्रकट होता है कि प्रकृति कितनी तन्दुरुस्त और हृष्टपुष्ट है। मुर्गेकी आवाजमे सबसे बडी विशेषता यह है कि उसमें कोई शिकायतका माद्दा नही।

ऐसे गायक तो बहुत मिल सकते है, जो हमे अपने गानसे रुला दे, या हँसा दें, पर कहाँ है वे गायक, जो अपनी ध्वनिसे हमारे हृदयमे प्रात कालके पवित्र आनन्दका उद्रेक कर दे ?"

उल्लुओके विषयमे भी आपके विचार पठनीय है—"जब कि दूसरी चिडियाँ शान्त रहती है, खूसट बोलना शुरू कर देते है, मानो औरतें स्यापा कर रही हो ! उनकी आवाजमे खास तौरसे दु खकी ध्वनि प्रतीत होती है ।. .ऐसा मालूम होता है कि मानो ये पतित आत्माएँ है, जिन्होने अपने पूर्वजन्ममे रात्रिके अन्धकार मे पाप-कार्य किये थे और अब खूसटोका जन्म लेकर ये उन पापोका प्रायश्चित्त कर रही है । तालाबके एक किनारेसे मानो एक खूसट बोलता है—"ओ-ओ ! हम पैदा न होते !" दूसरा उधरसे कहता है—"ओ-ओ ! हम पैदा न होते !"

लेखकोके लिए थोरोने अत्यन्त महत्वपूर्ण उपदेश दिया है—

"Moreover I, on my side, require of every writer, first or last, a simple and sincere account of his own life, and not, merely what he has heard of other men's lives, some such account as he would send to his kindred, from a distant land, for if he has lived sincerely, it must have been a distant land to me."

अर्थात्—"इसके सिवा मै प्रत्येक लेखकसे यह आशा करता हूँ कि वह अपने जीवनका सीधा-सादा सच्चा वृत्तान्त लिखे, न कि सिर्फ वे बातें, जो दूसरे आदमियोके जीवनके विषयमे उसने सुन रखी है । जैसे वह अपने किसी कुटुम्बीको किसी दूरस्थ स्थानसे चिठ्ठी भेज रहा हो, वैसा ही वृत्तान्त उसे लिखना चाहिए । और यदि आदमीने सचाईके साथ जिन्दगी व्यतीत की है तो मेरे लिए उसका जीवन वृत्तान्त वैसा ही मनोरजक होगा, जैसा किसी दूरदेशका हाल ।"

थोरोका कथन था, "The artist and his work are not to be separated" अर्थात्—"कलाकार और उसका कार्य अलग-अलग नही किये जा सकते।"

थोरो "आत्मान विद्धि" (खुदको पहचानो) फिलासफीका कायल था। इस वातको उसने वार-वार अपने ग्रन्थोमे लिखा है। थोरोने दो-ढाई वर्ष वनके निकट 'वाल्डन' नामक तालावके किनारे विताये थे। अपने इस प्रयोगके विषयमे उन्होने इसी नामकी पुस्तकमे लिखा है—"मैने अपने प्रयोगसे कम-से-कम एक वात सीखी, वह यह कि यदि आदमी दृढ विश्वासके साथ अपने स्वप्नोकी दिशामे आगे वढता रहे और जिस जीवनकी उसने कल्पना कर रखी है, तदनुसार रहनेका प्रयत्न करता रहे तो उसे आशातीत सफलता मिलेगी, कितनी ही चीजोको वह पीछे छोडता हुआ वढ जायगा और अभी जो सीमाएँ अदृश्य है, उन्हे वह पार कर जायगा। नवीन, विश्वव्यापी और अधिक स्वतन्त्रतायुक्त नियम उसके हृदयमे और उसके चारो ओर स्थापित होने शुरू हो जायगे। पुराने नियमोका उसके लिए विस्तार हो जायगा, अथवा वे उसके पक्षमे घटित होने लगेगे। और उसे उच्च कोटिके मनुष्योकी भाति जीवन-निर्वाह करनेकी स्वाधीनता मिल जायगी। ज्यो-ज्यो वह अपने जीवनको अधिकाधिक सादा वनाता जायगा त्यो-त्यो ससारके नियम और विधानोकी उलझने उसके लिये सुलझती जायँगी। तव उसके लिए एकान्त एकान्त न रहेगा, गरीवी गरीवी न रहेगी, निर्वलता निर्वलता न रहेगी। यदि तुमने हवाई किले वनाए है तो कोई परवाह नही। किले तो हवामे ही वनने चाहिए, अव नीचेसे उनकी नीव रखना शुरू कर दो।"

इस युगमें जबकि अधिकांश आदमियोके सिरपर जीवनको 'सफल' वनानेकी धुन सवार है, जब जल्दी-से-जल्दी धनवान वननेकी आकाक्षाने लाखो आदमियोकी नीद हराम कर दी है, जब लोग वर्षोका काम महीनेमें, और महीनोका घटोमें कर डालनेकी फिक्रमें है, थोरो जैसे फक्कड

आदमीका जीवन एक खास सन्देश रखता है। जब दुनियामें अपने चारो ओर असत्य तेलीके बैल दीख पड़ रहे हैं, उस समय थोरोकी तरहके अपनी मस्त चालसे विचरण करने वाले निर्द्वन्द वृषभके जीवन-क्रमको पढकर ईर्ष्या होती है। एक अपरिग्रही आदमी अपने जीवनको कितना आनन्दमय तथा स्फूर्तिप्रद बना सकता है, थोरोका जीवन इसका एक उज्ज्वल दृष्टात है।

जुलाई १९३५]

: १७ :

अमर कलाकार 'ए० ई०'

"दूसरोकी भाँति मेरा भी यही विश्वास है कि यह अखिल विश्व आत्माओके असख्य समूहोसे व्याप्त है। वे इस ब्रह्माण्डमे निवास करती है और फिर उस अज्ञेय सर्वव्यापी ब्रह्ममे लीन हो जाती है। हम लोगोने अपनी कल्पनामें अपनेको क्षुद्रता, अन्धकार तथा अज्ञानसे घेर लिया है और अब हमे अपनी कल्पना द्वारा ज्योतिमे वापस आना है। मुमकिन है कि मै अपने दार्शनिक सिद्धान्तोका दुरुपयोग करता होऊँ और सम्भवत ऐसे लाखो उत्तमतर मार्ग होगे, जिनका मुझे ज्ञान नही है, पर जिनके द्वारा सिद्धान्तोका सदुपयोग हो सकता है। किन्तु मैंने जो कुछ लिखा है, वह उस भावनाके समयमे लिखा है जबकि मेरी अन्तरात्मा थोडे समयके लिए ज्योतिसे प्रकाशित हो गई थी। मुझमें इतनी शक्ति नही है कि मै कोई महान् अग्नि प्रज्वलित कर सकूं। मै तो प्रकाशकी एक क्षीण रेखा ही दे सकता हूँ, लेकिन उसीसे अपने मार्गको ज्योतिर्मय बनाना, वकौल भारतीयोके मेरा धर्म है। भारतीयोका यह विश्वास है कि हर-एकके लिए एक विशेष कर्तव्य होता है और भले ही वह कर्तव्य महान न दीख पडे, उस व्यक्तिके लिए वही सर्वोत्तम है। 'परधर्मो भयावह'—इसका अर्थ यही है कि मै यदि किसी दूसरेके कर्तव्यको महान समझकर अपना कर्तव्य छोड दूं और दूसरेका कर्तव्य करने लगूं तो मै अपने जीवनके लक्ष्यको खो वैठूंगा। मै उन लोगोको, जिनका मार्ग मुझसे भिन्न है, दोष नही देता। प्रत्येक व्यक्तिकी स्वाधीनतामे मेरा दृढ विश्वास है और यदि मै किसी दूसरेकी निन्दा करने लगूं तो इसके

मानी यह हुए कि मै उन्हे स्वाधीनता नही देना चाहता और इस प्रकार मै उनके प्रति अन्याय करता हूँ। प्रकाशके सहस्रो मार्ग हैं, जिन पर दूसरे लोग यात्रा कर रहे है.. ।"

यह है आयर्लेण्डके सुप्रसिद्ध साहित्यिक स्वर्गीय जार्ज रसेल (उपनाम 'ए० ई०') के एक पत्रका अश। इससे उस रहस्यवादी महान् कलाकार और कर्मयोगी पुरुषकी मनोवृत्तिपर काफी प्रकाश पडता है। यह पत्र उनकी स्वभावगत विनम्रता, स्वाधीनता—प्रेम (केवल अपने लिए ही नही, दूसरोके लिए भी) और उनकी आध्यात्मिक भावनाका परिचायक है। एमर्सन, एडवर्ड कार्पेटर और एण्ड्रूज़की तरह 'ए० ई०' भी 'परमात्माकी एक भौगोलिक भूल' थे और उनका जन्म तो आयर्लेण्डके बजाय भारतमे होना चाहिए था।

'ए० ई०' वास्तवमे एक आदर्श साहित्य-सेवी थे। उनमे कई विशेषताओका एक अद्भुत सम्मेलन हुआ था। वे उच्चकोटिके रहस्यवादी कवि थे, कृषि-सम्बन्धी अर्थशास्त्रके अद्वितीय ज्ञाता और साथ-ही-साथ एक प्रतिभाशाली चित्रकार भी! सम्भाषण-कला और सम्पादन-कला इन दोनोके भी आचार्य थे और इनमें सबसे बडी बात यह थी कि उन्होनें कभी अपनी मानसिक स्वाधीनताको बेचा नही।

२९ मई सन् १९३४ को उन्होने अपने एक मित्रको चिठ्ठी लिखी थी, जिससे हम उनके आदर्शो तथा आकांक्षाओका अनुमान कर सकते है—

"आपने अपनी पुस्तकमे एक वात बडे मार्केकी लिखी है और वह मुझे सत्य, कल्याणकारी और बुद्धिमत्तापूर्ण जँची, यानी आपने कलाकारो और कवियोको यह आदेश दिया है कि वे स्वेच्छापूर्वक निर्धनताका व्रत ग्रहण कर लें। आयर्लण्डमे हम सभी गरीव है और इससे हममें से किसीका कुछ नुकसान नही हुआ। मेरे जीवनके सबसे अधिक आनन्ददायक दिन वे थे, जव मै ५० पौण्ड प्रतिवर्ष (५५-५६ रुपये महीने) से भी कम पर गुजर करता था और भोग-विलासकी किसी चीजको खरीदनेके लिए मेरे

पास पैसा ही नही था, पर निर्धनताके उन दिनोमे हम दिन-दिन भर और लम्बी रात तक पृथ्वी और स्वर्गके न जाने कितने विषयोपर वार्तालाप किया करते थे और जो कुछ पढते, उसका मनन करते रहते थे। अब भी मैं बडी किफायतशारीके साथ रहता हूँ। मेरी निश्चित आमदनी एक सौ पौण्ड प्रतिवर्ष (११० या ११५ रु० प्रतिमास) है।

"क्या इससे मेरा जीवन कुछ दुखी है? नही जनाव, बिल्कुल नही। कितने ही कलाकारोकी यह आकाँक्षा रहती है कि हमारे पास मोटरकार चढनेके लिए हो, बँगला रहनेके लिए और खूब पैसा मौज करने तथा मित्रोको पार्टियाँ देनेके लिए। नतीजा यह होता है कि वे अपनी प्रतिभाको दूसरेके हाथ दामोपर बेच देते है। उन्हे दरअसल निर्धनताका व्रत ग्रहण करना चाहिए। यह व्रत आन्तरिक व्रत है, अन्तरात्मासे सम्बन्ध रखता है। इसके मानी यह नही है कि यदि कोई धनाढ्य उनके लिए दस लाख रुपया छोड मरे तो उसे उन्हे अस्वीकार कर देना चाहिए, बल्कि इसका मतलब यही है कि यदि धन-वैभव उनकी आत्माके मार्गमे बाधक होता है तो उस धन-वैभवको तिलाजलि देनेके लिए उन्हे सदा तैयार रहना चाहिए। मेरे पिताजीने मेरे लिए एक अच्छी नौकरी तलाश कर दी थी, पर मैंने उसे छोड दिया, क्योकि वह नैतिक सिद्धान्तोके विरुद्ध थी और उसके बाद मुझे छ वर्ष तक ३३ रुपयेसे लेकर ६६ रु० महीने तकके वेतनपर अपनी गुजर करनी पडी और मैं उन दिनो के जीवनको अत्यन्त आनन्दप्रद मानता हूँ। यीट्स (आयरिश कवि) को बहुत दिनो तक गरीबीमे गुजर करनी पडी, पर उन्होने अपनी प्रतिभाको कभी बेचा नही। स्टीफेन्सने जिन दिनो अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ और प्रारम्भिक कविताएँ लिखी थी, उन दिनो उन्हे सिर्फ एक पौण्ड प्रति सप्ताहपर अपना जीवन निर्वाह करना पडता था निर्धन होना बिल्कुल आसान है। एमर्सनने कहा है कि जीवनकी आवश्यकताओकी जितनी कल्पना अधिकाश मनुष्य करते है, उससे वे कही कम है। दो चीजे खासतौर पर जरूरी है—

एक तो सम्भाषण करनेके अवसर और दूसरी एकान्त, जहाँ कि आदमी ध्यान कर सके और गम्भीर चिन्तन भी। इस एकाकी जगहपर भी जहाँ कोई नगर नही है, सिर्फ झोपडियाँ ही है, सम्भाषणके मौके मिल ही जाते है हाँ, आप कलाकारोको निर्धनताका उपदेश देते रहिये। स्वेच्छा-पूर्वक ग्रहण की हुई निर्धनता उस गरीबीसे, जो जबर्दस्ती सिरपर लाद दी जाती है—जैसा कि आपके देश अमरीकामे हो रहा है— कही अच्छी चीज है।"

'ए० ई०' का जन्म १० अप्रैल सन् १८६७ को हुआ था और मृत्यु १८ जुलाई सन् १९३५ को हुई। इस प्रकार वे ६८ वर्ष जीवित रहे। उनके जीवनकी क्रमवद्ध कहानी सुनाना इस लेखका उद्देश्य नही है। एक साधारण हिन्दी लेखककी दृष्टिसे हमें उनके जीवनके जो अश पसन्द आए और उनके जिन विचारोने हमे प्रभावित किया, उन्हीका हम यहाँ सक्षेपमें वर्णन करेगे।

पहली वात जो 'ए० ई०' के जीवन-चरितको और विचारोको पढते हुए तुरन्त ही पाठकके मनको सूझती है वह यह है कि उनपर भारतीय सस्कृतिका जवरदस्त प्रभाव पडा था। वे श्रीमद्भगवद्गीता और उपनिषदोके वडे प्रेमी थे और अपने एक पत्रमें उन्होने लिखा था—

"इन महान् ग्रन्थोमें इतनी गम्भीर दैवी बुद्धिमत्ता पाई जाती है कि मेरा विश्वास है कि इनके रचयिता अवश्य ही अपने सैकडो-सहस्रो पूर्व जन्मोकी उत्कट वासनाओ और घोर द्वन्द्वोको शान्तिपूर्वक स्मरण करनेकी शक्ति रखते होगे, नही तो वे इतने दृढ निश्चयपूर्वक न लिख सकते। जब आत्माको पूर्ण विश्वास हो जाता है तभी वह ऐसे निश्चय-पूर्वक लिख सकती है।"

'ए० ई०' का निम्नलिखित वाक्य कितना महत्वपूर्ण है·

"Race hatred is the cheapest and basest of all national passions, and it is the nature of hatred, as it

is the nature of love, to change us into the likeness of that which we contemplate. We grow nobly like what we adore and ignobly like what we hate."

अर्थात्—"राष्ट्रीय मनोविकारोमें जातीय विद्वेष सबसे सस्ता और सबसे अधम कोटिका विकार है और जिस प्रकार प्रेमका यह स्वभाव होता है कि जिससे हम प्रेम करते हैं, तदनुरूप ही बन जाते हैं, उसी प्रकार विद्वेषका भी यही स्वभाव है कि जिससे हम विद्वेष करते हैं वैसे ही बन जाते है। जिसकी हम पूजा करते है, उच्चतापूर्वक हम वैसे ही बन जाते है और जिससे हम घृणा करते है, नीचता-पूर्वक हम उसी जैसा बन जाते है।"

इसकी तुलना कीजिए श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके निम्न-लिखित श्लोकोसे ·

यत्र-यत्र मनोदेही धारयेत्सकलं धिया।
स्नेहाद् द्वेषाद्भयाद्वापि याति तत्तत्सरूपताम्।
कीटः पेशस्कृतं ध्यायन्कुड्यां तेन प्रवेशितः
याति तत्सात्म्यतां राजन्पूर्वरूपमसन्त्यजन्।

अर्थात्—"देहधारी जीव स्नेहसे, द्वेषसे अथवा भयसे जिस किसीमे भी सम्पूर्ण रूपसे अपने चित्तको लगा देता है, अन्तमे वह तद्रूप हो जाता है, जिस प्रकार भृगी कीट द्वारा अपने विलमे बन्द किया हुआ कीडा, भयसे उसीका ध्यान करते-करते अन्तमे अपने पूर्व रूपको छोडकर उसीके समान रूप वाला हो जाता है।"

वर्तमान साहित्यकी त्रुटियोका जिक्र करते हुए 'ए० ई०' ने अपनी पुस्तक ('National Being') 'राष्ट्रकी आत्मा' में लिखा था—"हमारे प्राचीन गायक और कवि जिस प्रकार के महान् आदर्शोका निर्माण किया करते थे, वैसा आधुनिक कवि नही कर रहे। प्राचीन आयरिश-

कवियोने कुचूलेन और ओस्करकी महिमा गाई थी, प्राचीन यूनानी लेखकोने हेक्टर और ट्रायका यशोगान किया था और प्राचीन भारतीयोने युधिष्ठिर, राम और अर्जुनकी कीर्तिका बखान करके जनताको उनके गुणोके अनुकरण करनेकी प्रेरणा की थी। हमारे आधुनिक साहित्यकी यह बडी भारी त्रुटि है कि उसमे इस प्रकारके महान् आदर्शोका अब निर्माण नही होता।.. हमारे कवि उस दैवी जत्थेसे स्वय भटक गये है और वे किसीको महान बननेकी स्फूर्ति नही देते और जब साधारण जनता अपने साहित्यमे सच्चे महत्त्वपूर्ण आदर्शकी ओर प्रेरित करनेवाले किसी स्तम्भका नामोनिशान नही पाती तो वह दूकानसे उठा कर दूकानदारको, शराबखाने से उठाकर शराबीको, कम्पनीसे उठाकर कम्पनी बनानेवाले डाइरेक्टरको और कचहरीसे उठाकर वकीलको अपना प्रतिनिधि चुन भेजती है।"

'ए० ई०' के सम्पूर्ण व्यक्तित्वपर प्रकाश डालना और उसके साथ न्याय करना आसान काम नही है। हमे अभी उनकी केवल चार रचनाएँ पढनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है—(१) National Being, (२) Interpreters (३) The Candle of Vision और (४) उनके लेखोका सग्रह 'लिविङ्ग टॉर्चं'। जैसा कि हम ऊपर कह चुके है, 'ए० ई०' रहस्यवादी कवि थे। इसलिए उनकी रहस्यवाद सम्बन्धी कविताओ तथा लेखोको समझनेके लिए आध्यात्मिक प्रवृत्तिकी ज़रूरत है और यह हमारी शक्तिसे बाहरकी चीज है। 'ए० ई०' के जीवनका जो पहलू हमें सबसे अधिक पसन्द है, वह यह है कि कल्पनाशीलता और व्यावहारिकताका उनमें विचित्र सम्मिश्रण था और वे सच्चे अर्थोमे सजीव साहित्यिक थे। वे कोरमकोर विचारक ही नही थे, कर्मयोगी भी थे। उन्होने अपनी मातृभूमि आयरलैण्डमे सैकडो कृषि-सम्बन्धी सहयोग-समितियाँ कायम की थी और गाँव-गाँवमें घूमे थे। गाँववालोके सामने उन्होने सैकडो ही व्याख्यान दिये थे।

'ए० ई०' के जीवनमे वह दिन वास्तवमे अत्यन्त महत्वपूर्ण था, जब उनको सर होरेस प्लकेट नामक सज्जनने अपने यहाँ कृषि-सम्बन्धी सहयोग समितियोके काम पर लगा लिया। प्लकेट साहब आयरिश कृषि-समिति (Irish Agricultural Organisation) के संस्थापक थे। उन्हे एक कल्पनाशील युवककी आवश्यकता थी। वे चाहते थे कि आयरलैण्डके निवासियोमे कृषिके प्रति आकर्षण पैदा हो जाय और इसका तरीका उनकी समझमे यह था कि आइरिश युवक अपने स्वदेशी साहित्यको पढे और ग्राम-गीत तथा ग्राम-साहित्यका अध्ययन करे। राजनीतिसे वे आयरिश युवकोको अभी अलग ही रखना चाहते थे। वस्तुत यह उनकी भूल थी, क्योकि मनुष्यके जीवनको हम भिन्न-भिन्न विभागोमे बाँट कर अलग-अलग नही कर सकते। 'ए० ई०' ने प्लकेट साहबके यहाँ काम करना प्रारम्भ किया। इससे उनको एक बडा भारी लाभ यह हुआ कि वे साधारण जनताके खूब सम्पर्कमे आये। नाना प्रकारके लोगोमे—पादरियोसे, व्यापारियोसे, किसानोसे, मजदूरोसे, गरीबोमे, अमीरोसे—उन्हे वाद-विवाद करना पडता था। इस प्रकार उनमे अपनी बातको स्पष्टतया समझानेकी योग्यता आ गई, जो आगे चलकर लेखक-जीवनमे उनके बहुत काम आई।

'ए० ई०' का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'राष्ट्रकी आत्मा' ('National Being') है। सुना है कि जब महात्मा गान्धीजी गोलमेज कान्फरेन्समे विलायत गये तो उन्होने इस ग्रन्थके लेखकसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की थी और मीरा बहनके हाथ तार भी भिजवाया था, पर उन दिनो 'ए० ई०' की धर्मपत्नी बीमार थी। इसलिए वे लन्दन आ नही सके। कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी 'ए० ई०' के इस ग्रन्थके बडे प्रशसक रहे थे। अमरीकामे यह ग्रन्थ इतना अधिक पसन्द किया गया था कि उसकी दस हजार प्रतियाँ वहाँ सरकार द्वारा बँटवाई गई थी। इस महत्वपूर्ण पुस्तकको हम स्वाध्यायके रूपमे वर्षोसे पढते रहे है और हमारा दृढ विश्वास

है कि यदि इसका अनुवाद प्रकाशित कर दिया जाय तो उससे साधारण जनताका ही नही, हिन्दी-लेखकोका भी बहुत हित हो सकता है और वर्तमान युगमे तो इसका अधिक-से-अधिक प्रचार अत्यन्त लाभदायक होगा। क्योकि यह सर्वोदयके विचारो से ओतप्रोत है।

अपने इस ग्रन्थमे 'ए० ई०' ने एक सुन्दर विचार आयरिश जनताके सामने रक्खा था, वह यह कि जिस तरह अन्य देशोमें सैनिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाती है, उसी तरह उसकी जगह आयरलैण्डमे समाज-सेवाके लिए प्रत्येक नवयुवकको दो वर्ष काम करना अनिवार्य कर देना चाहिए और इन नवयुवकोकी शक्तिका उपयोग सार्वजनिक भवनोके निर्माणमे, नगरोके सुन्दर बनानेमे, व्यर्थ पडी हुई भूमिके सदुपयोगमे, जगलोके लगानेमे तथा ऐसे ही जनोपयोगी कामोमे होना चाहिए। युद्धके बाद बलगेरियाके एक मन्त्रीने इस विचारको अपने देशमे कार्यरूपमे परिणत करनेका प्रयत्न किया था और लीग आव नेशन्सने इसकी रिपोर्ट भी अपने यहाँ छापी थी। कुछ समय पूर्व श्री जवाहरलालजी नेहरूने भी अपने एक भाषणमे साल भरके लिए समाज-सेवा अनिवार्य कर देनेकी चर्चा की थी।

ग्राम सस्कृतिकी रचना सम्बन्धी जो अध्याय इस ग्रन्थमे है, वे वास्तवमे अत्यन्त स्फूर्तिप्रद है। 'ए० ई०' निस्सदेह द्रष्टा महापुरुष थे। नागरिक सभ्यताके दुष्परिणामोको उन्होने खूब अच्छी तरह देख लिया था। उन्होने लिखा था—

"क्या भूमि हम सब लोगोकी माता नही है ? क्या हम सब मिट्टीके पुतले नही है ? क्या हम प्रकृतिसे अपना जीवन ग्रहण नही करते ? क्या हम बिना प्रकाश और ताजी हवाके जीवित रह सकते है ? अगर हमे पाँच मिनट भी हवा न मिले तो हमारी जिन्दगीका खात्मा हो जाय। नगरोमे दिन-प्रतिदिन हमारे जीवनमे विषका प्रवेश हो रहा है। अगर

कोई सौन्दर्य-प्रेमी मनुष्य लन्दनकी या किसी भी बडे नगरकी सडको पर से गुजरे और दस हजार आदमियोके चेहरे देखे तो उसे एक भी चेहरा सुन्दर नही दीख पडेगा। क्या यह महान विचार कि मनुष्य फिर भूमिके निकट अधिक कुदरती तरीकेपर रहने लगे, हमारे लिए स्फूर्तिप्रद नही है ? क्या मानव-समाजको इससे प्रेरणा नही मिलती ? क्या हरे-भरे वृक्षोकी छायामें, लहलहाते हुए खेतोके निकट, विना धुआँवाले स्वच्छ आकाशके नीचे सभ्यताके निर्माणका विचार मनोमोहक नही है ? कौन कहता है कि ग्रामीण सस्कृतिमे बौद्धिक जीवन न होगा ? जहाँ हमारे चारो ओर रहस्यमय प्राकृतिक शक्ति हो और कुदरत अपने करिश्मे दिखा रही हो, वहाँ यदि बौद्धिक जीवन न होगा तो और कहाँ होगा ? क्या छोटे-से बीजमे से महान् वृक्षकी उत्पत्ति हमारे मस्तिष्कके लिए उतनी ही स्फूर्तिप्रद नही, जितने स्कूलोमे पढाए जानेवाले विषय ? क्या प्रकृतिकी रहस्यमयी शक्तियोपर विचार करना अखबारोकी अकलमन्दियोसे अधिक मनोरञ्जक नही है ? हमारी सभ्यता वास्तवमे एक भयकर स्वप्न है। वर्तमान नगरोके चारो ओर मीलो लम्बी गरीबोकी जो गन्दी गलियाँ पाई जाती है, क्या उनसे अधिक हृदय-वेधक दृश्य कोई दूसरा हो सकता है ? शहरी बच्चोको पक्की सडकोके किनारे खेलते हुए देखकर हृदयको धक्का लगता है। जनताकी जीवन-शक्ति नष्ट होती जाती है और वे आस-पासकी चमकीली-भडकीली दूकानोसे उत्तेजक मादक द्रव्य लेकर पीते रहते है। मृत्युके पजेकी छाया मानो इन लोगोपर छाई हुई है और इन नगरोसे थोडी ही दूर पर बादल अपनी पुरानी छटा दिखला रहे है। कही बर्फ पड रही है, कही सूर्य चमक रहा है, शीतल मन्द सुगन्ध पवन बह रही है, हरे-हरे खेत लहलहा रहे है और वनोकी पत्ती-पत्ती एक-दूसरेसे मानो चुपके-चुपके काना-फूसी कर रही है ! पर इन शहरी गरीबोको ईश्वरके इस जादूका कुछ पता नही। वर्त्तमान युगकी सबसे बडी आवश्यकता है ग्रामीण सस्कृतिका निर्माण।"

फ्रैङ्क हैरिसने, जो मानवस्वभावके बहुत अच्छे ज्ञाता थे और रेखा-चित्रोके खीचनेमे विशेषज्ञ, अपने एक लेखमे लिखा था—

"अयर्लैण्डमे जो जीवित महापुरुष विद्यमान है उनमे 'ए० ई०'को मै सबसे अधिक बुद्धिमान मानता हूँ। वर्तमान ससारमे मै किसी ऐसे दूसरे व्यक्तिको नही जानता जिसके विचार इतने व्यापक हो और जो अपने निर्णयोमे सज्जनता, उदारता तथा प्रेमपूर्ण सद्भावनापर इतना जोर देता हो। मूर, बर्नर्ड शा, आस्कर वाइल्ड और 'ए० ई०' इन चारोमे 'ए० ई०'मे ही सबसे अधिक आयरिश भावना पाई जाती है। और आयर्लैण्डकी स्वाधीनताके लिये जिस उत्कट भावनाके साथ उन्होने लिखा है उतना अन्य किसीने नही। कविवर यीट्सकी अपेक्षा उन्होने कही अधिक इस बातको समझा है कि आयर्लैण्डके अपनी निजी आत्मा है, अपना निजी स्वभाव है।"

एक बार फ्रैङ्क हैरिसने आयर्लैण्डके बारेमे 'ए० ई०'से एक लेख मँगाया। उन्होने लिख भेजा। उस लेखको पढकर हैरिसकी तबीयत फडक गई और उन्होने बर्नर्ड शाको लिखा—"सम्पादकी करते-करते मुझे चालीस वर्ष बीत गये, पर इससे अधिक मौलिक और सत्यका उद्घाटन करनेवाला लेख मुझे आजतक नही मिला।" इसपर बर्नर्ड शा ने जवाब दिया—

"मुझे इस बातसे कुछ आश्चर्य नही हुआ कि फ्रैङ्क हैरिसकी सम्मतिमे 'ए० ई०'का आयर्लैण्ड-विषयक लेख उनके जीवनका सर्वोत्तम लेख है। पर 'ए० ई०' तो जो लेख भी लिखते है सर्वोत्तम ही लिखते है—('A. E.' s article always is the best.)।"